वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

TM-04

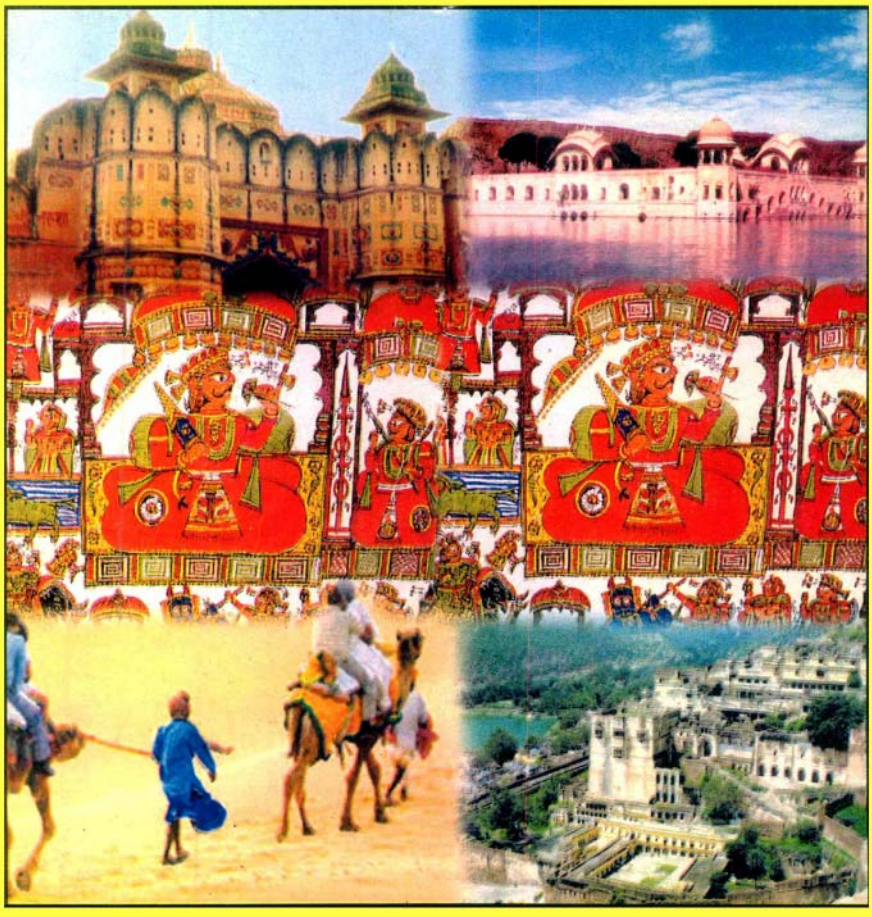

राजस्थान पर्यटन

खण्ड 1, 2 एवं 3

खण्ड -1	:	**पर्यटन की नई उभरती प्रवृत्तियां**	
इकाई - 01		राजस्थान का इतिहास	7–20
इकाई - 02		राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत	21–44
इकाई - 03		राजस्थान की ऐतिहासिक इमारतें	45–62
इकाई - 04		राजस्थान के संग्रहालय	63–76
खण्ड -2	:	**राजस्थान में पर्यटन**	
इकाई - 05		राजस्थान के पर्यटन उत्पाद	77–90
इकाई - 06		प्रदर्शनकारी कलाएं	91–104
इकाई - 07		लोक संगीत एवं नृत्य	105–116
खण्ड -3	:	**मिश्रित पर्यटन उत्पाद**	
इकाई -08		रहन -सहन, खान-पान एवं वेषभूषा	117–124
इकाई -09		मेले एवं त्यौहार	125–138
इकाई -10		राजस्थान की हस्तकलाएं	139–150
इकाई -11		साहसिक पर्यटन एवं मनोरंजन	151–165
इकाई -12		पधारो म्हारे देस...	166–178

पाठ्यक्रम अभिकल्पना समिति

डॉ .आर.वी. व्यास
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

डॉ. राजेश कुमार व्यास
पर्यटन विषय विशेषज्ञ,
जयपुर

प्रो. पी.के. शर्मा
आचार्य (प्रबन्ध) एवं
समन्वयक, पर्यटन अध्ययन,
निदेशक, वाणिज्य एवं प्रबन्ध अध्ययन विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. संदीप कुलश्रेष्ठ
समन्वयक, भारतीय पर्यटन एवं
यात्रा प्रबन्ध संस्थान
गोविन्दपुरी, ग्वालियर (म.प्र.)

पाठ्यक्रम लेखन

प्रो. राजेश कुमार व्यास
पर्यटन विषय विशेषज्ञ,
जयपुर

पाठ्यक्रम सम्पादन

श्री राम कुमार
पर्यटन विषय विशेषज्ञ,
55, न्यू आकाशवाणी कालोनी,कोटा

आवरण पृष्ठ सज्जा

डॉ. राजेश कुमार व्यास
पर्यटन विषय विशेषज्ञ,
जयपुर

सामग्री उत्पादन

प्रो. पी.के. शर्मा
निदेशक,
पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

श्री योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

प्रस्तावना

राजस्थान पर्यटन

राजस्थान पर्यटन नामक पाठ्यक्रम में पर्यटन विषय पर राजस्थान के संदर्भ में समसामयिक जानकारी दी गई है। इस पाठ्यक्रम में वर्णित सामाग्री पाँच खण्डों में विभक्त बीस इकाइयों में लिखी हुई है। इसका उद्देश्य राजस्थान में पर्यटन उत्पादों, नई प्रकृतियों एवं पर्यटन नीति व व्यवस्थाओं की जानकारी देना है।

प्रथम खण्ड - ऐतिहासिक परिदृशय में वर्णित चार इकाइयां राजस्थान के इतिहास, सांस्कृतिक विरासत, ऐतिहासिक इमारतें एवं संग्रहालयों की जानकारी प्रदान करती है।

द्वितीय खण्ड - राजस्थान के पर्यटन उत्पाद पर केन्द्रित है। इसमें वर्णित तीन इकाइयों में विभिन्न पर्यटन उत्पादों के साथ प्रदर्शनकारी कलाओं एवं लोक संगीत व नृत्यों का समावेश है।

तृतीय खण्ड - मिश्रित पर्यटन उत्पाद में प्रयुक्त पाँच इकाइयों में राजस्थानी रहन-सहन, खान-पान, वेश भूषा, मेले एवं त्यौहार,हस्तकलाएं, साहसिक पर्यटन एवं मनोरंजन के साथ पधारो म्हारे देश...की अवधारणा का वर्णन किया जाता है।

चतुर्थ खण्ड- पर्यटन की नई उभरती प्रवृतियों में वर्णित पाँच इकाइयों में भू-पर्यटन, धरोहर पर्यटन, ग्रामीण पर्यटन, धार्मिक पर्यटन एवं पारिस्थितिकी व वन्य जीवन पर्यटन का विश्लेषण किया गया है।

पंचम खण्ड - राजस्थान में पर्यटन के संदर्भ में तीन इकाइयों में क्रमश: राजकीय नीति, पर्यटन संगठन एवं पर्यटन व्यवस्थाओं पर आधारित है।

खण्ड - 1	**:**	**ऐतिहासिक परिदृशय**
इकाई -01		राजस्थान का इतिहास
इकाई -02		राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत
इकाई -03		राजस्थान की ऐतिहासिक इमारतें
इकाई -04		राजस्थान के संग्राहलय

खण्ड-1 : ऐतिहासिक परिदृश्य

इकाई - 1. राजस्थान का इतिहास

रूपरेखा :

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 इतिहास का अर्थ एवं परिभाषाएं

1.3 राजस्थान का इतिहास

1.3.1 प्रारंभिक ऐतिहासिक काल

1.3.2 राजपूत काल

1.3.3 मुगलकाल

1.4 स्वतंत्रता संग्राम और राजस्थान

1.4.1 1857 की क्रांति

1.4.2 राजनैतिक संगठनों का जन्म

1.4.3 भारत छोड़ो आंदोलन

1.5 किसान आंदोलन

1.5.1 बिजौलिया किसान आंदोलन

1.5.2 बेगू किसान आंदोलन

1.5.3 बूंदी किसान आंदोलन

1.5.4 भील आंदोलन

1.5.5 नीमराणा किसान आंदोलन

1.5.6 मारवाड़ किसान आंदोलन

1.6 आधुनिक राजस्थान का निर्माण

1.6.1 मत्सय संध

1.6.2 राजस्थान संघ

1.6.3 संयुक्त राजस्थान

1.6.4 वृहद राजस्थान

1.6.5 मत्सय का विलय

1.6.6 सिरोही का विलय

1.6.7 अजमेर का विलय

1.7 सारांश

1.0 उद्देश्य:

इस इकाई को पढने के बाद आप -

- इतिहास का अर्थ एवं परिभाषाएं जान सकेंगे।

- विभिन्न काल क्रमानुसार राजस्थान के इतिहास के बारे में जान सकेंगे।
- राजस्थान में हुए विभिन्न जन आंदोलनों एवं उनकी भूमिका को समझ सकेंगे।
- स्वतंत्रता पूर्व की विभिन्न रियायतों से अवगत हो सकेंगे।
- रियायतों के एकीकरण से हुए आधुनिक राजस्थान के निर्माण की कहानी को जान सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना:

इतिहास मूलत: अपने संबंध में जानने की प्रथम जिज्ञासा है। यह एक प्रकार का ज्ञान है। इतिहास दर्शन भी है, जो उदाहरणों द्वारा ज्ञान प्रदान करता है। इतिहास का उद्देश्य है- अतीत की यथार्थता को प्रकट करना, अतीत का उसी स्वरूप में पुनर्निमाण करना जैसा वह था, तथा अतीत के लिए ऐसे दर्पण की भाँति कार्य करना कि उसका सत्य प्रतिबिम्बत हो सके। इतिहास मनुष्य की प्रगति का स्वर्णिम महाकाव्य है, संकीर्णता और नियतिवाद का शत्रु है और राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के पोषण में सहायक है।

इतिहास के बारे में यह सब आरंभ से आप सुनते आ रहे होंगे। इतिहास के जरिए ही दरअसल अतीत को जाना जा सकता है। इस दृष्टि से ही इतिहास की आवश्यकता महसूस होती है। राजस्थान जिसे कभी इसे "रजवाड़ा" के नाम से भी पुकारा जाता था। राजपूतकाल मूगलकाल और रियासतो के एकीकरण के बाद हुए आधुनिक राजस्थान के निर्माण के इतिहास की कहानी अत्यन्त रोचक है। आइए, देखें इतिहास के झरोखे से राजस्थान को

1.2 इतिहास का अर्थ एवं प्रकृति:

शब्द व्युत्पति की दृष्टि से इतिहास का अंग्रेजी रूपान्तर एक ग्रीक शब्द HISTORICA से निकला है जिसका अर्थ है खोज, अन्वेषण व सूचना। आक्सफोर्ड संस्कृत अंग्रेजी शब्द को में सर मोनियर विलियम्स इतिहास शब्द को 'इति-ह-आस का संश्लिष्ट रूप बताते है। इसका अर्थ है निश्चित रूप से ऐसा हुआ है। इस आधार पर देखें तो इतिहास अतीत कालीन घटनाओं की चर्चा, आख्यान और परम्परागत लेखा है। अरब लोग इतिहास को तवारीख या तारीख नाम से पुकारते है जिसका अभिप्राय है तिथि जो अपूर्ण अर्थ देती है। शाब्दिक आख्या के अनुसार अतीत के जिन वृतान्तों को हम विश्वास के साथ प्रामाणिक कह सकें, उसे इतिहास की श्रेणी में रखा जा सकता है।

विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाओं द्वारा इतिहास के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है और प्रत्येक परिभाषा में अपने युग की इतिहास सबंधी धारणा को प्रतिबिम्बत किया गया है।

ट्रेवेलियन के अनुसार - "इतिहास अपने अपरिवर्तनीय अंश में एक कहानी है।"

यूरोप के प्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिज्ञ एडमंड बर्क का कथन है कि "इतिहास उदाहरणों के साथ-साथ तत्व ज्ञान का शिक्षण है।"

डी. डब्यू गैरोन्सकी के अनुसार, "इतिहास विगत मानवीय समाज का मानवतावादी और व्याख्यात्मक अध्ययन है, जिसका उद्देश्य वर्तमान के बारे में अन्तर्दृष्टि प्राप्त करना तथा अनुकूल भविष्य को प्रभावित करने की आशा जाग्रत करना है।

सिसरों के अनुसार " इतिहास उदाहरणों द्वारा दर्शन है।"

हेनरी पिरेन ने कहा है कि इतिहास अतीत में स्थित मानवीय समाज के विकास का व्याख्यात्मक विवरण है।

डब्लयू.एच.गोलग्रेथ इतिहास को अतीत का वह अंश मानते है जिसे हम जान पाये या जान पाते है।

प्रो. मैटलैण्ड के शब्दों में "मनुष्य ने क्या किया, क्या कहा और इन सबसे ऊपर उसने क्या सोचा वही इतिहास है।" यह एक विचार प्रक्रिया है जिसमें अतीत में जो कुछ हुआ उकसा काल्पनिक निर्माण और प्रस्तुतीकरण इतिहास का मुख्य व्यवसाय है।

प्रो. फिनले के अनुसार - ' 'इतिहास सबंधों में चिन्हित घटनाओं का कोई क्रम है। किसी सीमा तक अव्यवस्था को कम करते हुए वह नवीन तत्वों का प्रयोग करता है, जिनसे अतीत की घटनाएं उनके सही परिप्रेक्ष्य में जानी जा सके। "

इतिहास की इन परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट ही कहा जा सकता है कि इतिहास अतीत की विस्मृति को स्मृति में बदलने का उपक्रम हैं। इतिहास का संबंध समाज में रहने वाले व्यक्ति से ही नहीं बल्कि उस समाज से भी है जिसमें व्यक्ति जीवन व्यतीत करता है। इतिहास में व्यक्ति मुख्य है या समाज इस बात का निदान इस तथ्य में निहित है कि सामान्य रूप से इतिहास अनेक लोगों के व्यक्तिगत इतिहास को मिलाकर बनता है। इसमें से प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट होता है। समय के अनुसार व्यक्ति का बौद्धिक ज्ञान, कुशलता, भावना, शरीर और उसका सामाजिक वातावरण परिवर्तित होता है किन्तु इन परिवर्तनों के होते हुए भी उसके जीवन में एक निरन्तरता बनी रहती है। यही निरन्तरता इतिहास की आत्मा है। इतिहास की प्रवृति, दरअसल, उसके प्रचलित दर्शन तथा इतिहासकारों के अपने पूर्वाग्रहों और प्रशिक्षण से परिवर्तित होती रहती है। समग्रत: इतिहास अतीत की व्याख्या और उसे प्रस्तुत करने का मानवीय प्रयास है, आशिक तथ्यों के आधार पर अतीत के बारे में सार्थक वस्तु ढूंढने का प्रयास है।

राजस्थान के इतिहास को इतिहास की इन परिभाषओं के परिप्रेक्ष्य में ही समझाने का आगे प्रयास किया जाएगा।

1.3 राजस्थान का इतिहास:

परिभाषा की परिवर्तनशील प्रकृति से हर युग अपना नया अर्थ ग्रहण करता है। राजस्थान या राज्यस्थान शब्द कभी राजधानी के रूप में प्रयुक्त होता था ,जिसे जेम्स टॉड ने अपने ' एनाल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' नामक विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ में प्रदेशवाची बनाकर प्रस्तुत किया। टॉड का आशय रजवाड़ो की भूमि से ही था जिसमें अजमेर को छोडकर सर्वत्र देशी रियासतों का ही राज्य था। राजस्थान को कभी ' स्थानों का राजा ' अर्थात् श्रेष्ठ स्थान के रूप में भी जाना जाता था।

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों को प्राचीन ग्रंथों तथा शिलालेखों में अनेक नामों से अभिहित किया गया है। कई नाम इसकी भौगोलिक विशेषताओं के कारण है जबकि अनेक उन जातियों के नाम से जाने गए जिन्होनें समय-समय पर उन पर आधिपत्य जमाया। सर्वाधिक प्राचीन नामों में मरू, धन्व, जांगल, मत्सय, शूरसेन और साल्व है। मेरू और धन्व प्राय: समानार्थक शब्द है जो जोधपुर संभाग के लिए विशेषतौर पर काम में लिये जाते है। "जांगल' ' वह क्षेत्र था जिसमें खुले आकाश के नीचे शमी, केर, पीलू जैसे वृक्ष हो। आधुनिक बीकानेर का क्षेत्र इस नाम से जाना जाता था जहां "जांगलू ' नामक प्राचीन समृद्ध नगर था। ऐसा अनुमानित है कि यह प्रदेश कौरवों के पैतृक राज्य का ही एक अंग था। मत्सय की राजधानी महाभारत कालीन विराटनगर थी। राजा विराट इसके शासक थे और इसका क्षेत्र आधुनिक जयपुर, अलवर, तथा भरतपुर के भागों में रहा था। अलवर तथा भरतपुर के ब्रज से सटे क्षेत्र में ही शूरसेन रहते थे। सालों की अनेक शाखाएं- साल्वायवय, उदुम्बर, तिलखल ,युगन्धर ,भद्रकाल, ,भूलिंग तथा शरदण्ड थी। इनका विस्तार अंबाला के पास जगाधरी और गंगानगर में "भादरा" तक था। यूनानियों द्वारा पंजाब से खदेड़े जाने पर शिवि लोग चित्तौड़ के पास "नगरी" में आकर बसे। भादानको का स्थान भरतपुर में बयाना था। मालव भी पंजाब से खदेडे जाकर जयपुर में उनियारा के पास ककेटिक नगर में जमे और फिर मालवा में जा बसे थे जो उन्ही के नाम से ज्ञात है। इन्होंने शकों को पराजित किया तथा कृत संवत भी प्रारम्भ किया। यौद्येय हरियाणा में थे, पर बीकानेर के पंजाब से लगते भाग में फैले मुसलमान "जौइए" उन्हीं के वंशज है। गुर्जरों की राजधानी ' 'भीनमाल' ' जालौर जिले में है, पर गुर्जर क्षेत्र जोधपुर तथा जयपुर मण्डलों में भी था। डीडवाना कस्बा ' 'गुर्जरत्रा" में ही था। मेदपाट, जो आधुनिक मेवाड है, कभी "मैद" या "मेडु" जाति के नाम से जाना जाता था। "वल्ल" "त्रिवेणी" और "माड" जैसलमेर के आसपास की भूमि है। "माड" के नाम से ही "मांड" रागिनी चली।

वर्तमान डूंगरपुर-बांसवाड़ा जिलों का क्षेत्र बागड कहलाता था। सीकर से लेकर सांभर तक का क्षेत्र कभी "अनंत" या "अनतगोचर" कहलाता था और सांभर-नागौर आदि का चौहान शासित प्रदेश ' 'सवालखं"। गांवों की संख्या के अनुसार क्षेत्र के नाम रखने की परम्परा चलती थी। चौरासी, छप्पन (मेवाड के पहाड) नवल्हरत्र (मारवाड़), दस सहस्त्र (मेवाड़), सप्तशत (नाडोल) आदि ऐसे ही नाम है जो बदलते रहे है। स्कंदपुराण, पद्मपुराण आदि में राजस्थान के ऐसे प्राचीन नामों का वर्णन किया गया है।

राजस्थान को राजपूताना कहा जाता रहा है जिसका अर्थ है राजपूतों का घर। योद्धाओं का यह समुदाय सदियों से इस क्षेत्र में शासन करता आया है। राजस्थान का इतिहास काफी पुराना है। ईसा पूर्व 3000 से 1000 तक यहां विद्यमान रही संस्कृति सिंधु घाटी की सभ्यता के समान है। यहां के इतिहास को प्रारंभिक इतिहास काल मूगलकाल, राजपूत काल, आधुनिक राजस्थान के आधार पर और अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है।

1.3.1 प्रारंभिक ऐतिहासिक काल

ईसा पूर्व की पांचवी शताब्दी से लेकर गुप्त युग तक के समय की अनेकविद्य जानकारी उत्खननों से प्राप्त हुई है। नगरी (चित्तौड़गढ) में यूनानी आक्रमण के समय "शिवि" नामक जनपद के लोग थे जो पंजाब से आकर यहां बस गए थे। उस समय नगरी का नाम "मध्यमिका अथवा " मज्झमिका" था।

तीसरी शताब्दी से सातवीं तक का समय गुप्त, वर्द्धन साम्राज्यों तथा हूण आक्रमणों का युग रहा। समुद्रगुपा महाप्रतापी राजा हुआ था लेकिन सम्पूर्ण राजस्थान पर गुप्तों का अधिकार चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में ही हुआ जब उसने शकों के आखिरी महाक्षत्रप रूद्रसिंह को मारकर समूचे पश्चिमी हिन्दुस्तान पर अपना आधिपत्य जमा लिया। 499 ई. तक गुप्त राजा राजस्थान पर राज्य करते रहे और उसके बाद हूणों के प्रभाव का विस्तार होने लगा।

गुप्त सम्राज्य के पतन के बाद एक केन्द्रीय शक्ति के अभाव में यहां की गणतंत्रीय जातियां (मालव, यौद्येय, शिवि) आपस में लड़कर कमजोर होती गई। ऐसी स्थिति में पांचवी शताब्दी के अंत में हूण राजा तोरमाण ने राजस्थान पर अपना अधिकार जमा लिया। उसका पुत्र मिहिरकुंल विध्वंसकारी सिद्ध हुआ। विराटनगर के बौद्धविहारों तथा गंगानगर क्षेत्र के रंगमहल, बडोपल आदि स्थानों की विनाशलीला का कारण वहीं माना जाता है। हूण आर्य जाति के थे और शिव भक्त भी। यही हूण बाद में राजस्थान के छत्तीस-कुली राजपूतों में परिभाषित होने लगे। हूणों के नाम से अनवास (हूणवास) आदि गॉव भी बसे हुए माने जाते है। हूणों के आक्रमण का अंत मालवा के प्रबल शासक' 'यशोधर्मन' ' ने किया था जिसका शासनपारियात्र संज्ञक आड़ावाला के पठार तक था। संभवत: नगरी (चित्तौड़) भी इसके अधीन थी।

सातवीं शताब्दी के पूवार्द्ध में उत्तरी भारत पर पुष्पभूति शासकों का राज था जिनमें हर्षवर्द्धन प्रमुख था। राजस्थान के अनेक अभिलेखों में हर्ष संवत अंकित है जो हर्ष के साम्राज्य विस्तार की ओर इंगित करते है। इस अवधि के अन्य राजपूत शासकों में गुहिल, प्रतिहार तथा चापोत्कट थे।

1.3.2 राजपूत काल:

सातवीं सदी में राजपूतों के उदय से पूर्व राजस्थान में जातियों की संकीर्णता के कारण वर्ण का परम्परागत ढांचा बिगड़ रहा था। ऐसे समय स्वयं को सूर्य-चन्द्रवंशी क्षत्रियों के वंशधर घोषित करने वाले विभिन्न राजपूत कुलों का उद्भव आलोच्य विषयरहा है।

टोड तथा ब्रूक जैसे विद्वानों ने राजपूतों को सीथियन मानकर उन्हें मध्य एशिया से आए हुए बताया है। अन्य अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान भी इसी धारणा के ईद-गिर्द विचार रखते है। पर डॉ0 दशरथ शर्मा जैसे इतिहासज्ञों ने राजपूतों को विशुद्ध भारतीय माना है। महामहिम गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने भी इन्हें क्षत्रिय तो माना है, पर कुषाणों पहलवी शकों तथा अन्य विदेशियों को भी क्षत्रियों में सम्मिलित कर लिया है। ऐसा कहते हुए उन्होनें मनुस्मृति आदि धार्मिक ग्रंथों के हवाले से आर्य-अनार्य जाति के विभेद की चर्चा की है।

ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर अब यह प्रमाणित किया गया है कि प्रतिहार, गुहिल तथा चौहान कुलों का उद्‌गम ब्राह्‌मणों से हुआ है।

गुहिल: हूणों के पश्चात राजस्थान में राजपूत वंशो ने अपना प्रभाव जमाया। इनमें गुहिलवंशीय राजपूत प्रमुख थे। इस वंश में गुहिल महाप्रतापी हुआ। अत: इस वंश के राजपूत जहां-जहां भी गए, अपने को इन्होनें गुहिलवंशीय लिखा। ऐसा अनुमानित है कि प्रारंभ में ये मेवाड़ में शक्तिशाली बने और फिर अन्य स्थानों पर जाकर फैल गए। कर्नल टॉड ने गुहिलों की 24 शाखाओं को माना है। इनमें चाटसू के गुहिल, मारवाड़ के गुहिल, द्‌योड़ के गुहिल तथा मेवाड के गुहिल प्रसिद्ध है।

प्रतिहार : आठवीं से दसवीं शताब्दी तक राजस्थान के प्रतिहारों की तुलना में दूसरा कोई राजपूत वंश नही रहा। इनका आधिपत्य राजस्थान के पर्याप्त बड़े भूभाग पर तो था ही पर सुदूर कन्नौज और बनारस तक भी था। पूर्व से पश्चिम तक इनके साम्राज्य विस्तार का क्षेत्र 864 किलोमीटर के लगभग माना गया है। प्रतिहारी को कई समकालीन शिलालेखों तथा ग्रंथो में गुर्जर कहा गया है। इसी कारण तत्कालीन मंदिर स्थापत्य की प्रमुख शैली को भी गुर्जर प्रतिहार शैली की संज्ञा दी गई है। "गुर्जर प्रतिहार" शब्द से कुछ लोग यह मानते है कि प्रतिहार गुर्जर जाति के थे। इसके विपरीत अनेक प्रतिष्ठित विद्‌वानों की धारणा है कि उस समय राजस्थान या राजपूताना नाम की कोई यह राजनीतिक ईकाई तो विद्‌यमान थी नहीं तथा सम्पूर्ण प्रदेश "गुर्जरत्रा" या "गुर्जर" के नाम से जाना जाता था अत: प्रतिहार 'गुर्जर' के नाम से जाने गए और प्रदेश के स्वामी होने के कारण ही गुर्जर कहलाए। उनकी राजधानी "भीनमाल" (जालौर) थी जो आधुनिक गुजरात के समीप ही पडती है। गुर्जर गौड आदि ब्राह्‌मण जातियां आज भी इसी कारण ऐसे नाम से पुकारी जाती है। इतिहासज्ञ राजस्थान में प्रतिहारों की दो शाखाओं का उल्लेख करते है -

1. मंडोर शाखा 2. भीनमाल (जालौर) शाखा।

मौर्य: कणसवा (कोटा) के 738 ई. के लेख में ब्राह्‌मण राजा शिवगण ने स्वयं को धवल मौर्य का मित्र बताया है। मौर्य, प्रतिहारों से भी पहले दक्षिण-पूर्वी राजस्थान पर राज्य करते थे। चित्तौड़ से संबंधित चित्रांगद मोरी और मानमोरी के विवरण भी इस धारणा की पुष्टि करते है।

तोमर: तोमर (तंवर) राव कहलाते थे। तोमरों का दिल्ली पर राज्य था। जिसकी यह कहावत प्रचलित है- "जद कद दिल्ली तंवरा।" चाहमानों से पराजित होने के बाद संभवत: ये जयपुर के आसपास आकर बस गए।

कछवाहा: आमेर के कछवाहा, ग्वालियर तथा नरवर के कच्छप घातो से अपना संबंध जोडते है। मुहता नैणसी ने भी अपनी "ख्यात" में भाट राजपाण द्‌वारा लिखी गई वंशावली में यह बात कही है।कछावा भारमल के द्‌वारा अकबर से अपनी लड़की का विवाह-संबंध स्थापित कर लेने के बाद ही कछवाहों की श्रीवृद्धि प्रारंभ हुई।

राठौड़ : राठौड़ राजपूतों का राज्य वर्तमान राजस्थान के उत्तरी तथा पश्चिमी भागों में था। कर्नलटॉड इन्हें सूर्यवंशी मानते है। 1596ई. में लिखे गए "राष्टौड़" वंश महाकाय में इनकी उत्पति शिव के शीश पर स्थित चन्द्रमा से बताई गई है। प्रारंभ में ये दक्षिण में शक्तिशाली थे।

मध्य भारत में इनके अभ्युदय का उल्लेख सातवीं शताब्दी से मिलता है। राजस्थान में इनकी पंच शाखांए मिलती है हस्तिकुण्डी के राठौड़, धनोप के राठौड़, बागड के राठौड, जोधपुर के राठौड़ और बीकानेर के राठौड़।

भाटी : भाटी लोग संभवत: वि.स. 800 के लगभग पंजाब से आकर बल्लमाड़ के मरूस्थलीय भाग में बस गए तथा धीरे-धीरे इन्होनें तनोट, देरावल ,लोद्रवा तथा जैसलमेर आदि में अपनी बस्तियां स्थापित की। इनका व्यवस्थित इतिहास विजयराज के समय से मिलता है जो लगभग 1165 ई. के आसपास महाराजा हुआ। इनके पौत्र जैसल ने जैसलमेर में नई राजधानी का निर्माण प्रारंभ करवाया लेकिन शीघ्र ही मृत्यु हो जाने के कारण इसके पुत्र शालिवाहन ने इसका निर्माण पूरा करवाया।

परमार वश ने 8 वीं शताब्दी से 13 वीं शताब्दी तक आबू जालौर, बागड, चन्द्रावती, किराडू तथा अर्थूणा में अपना राज्य स्थापित किया। आबू का सिंघराज परमार परमारो "मरूमण्डल का महाराजा" कहलाता था।

चौहान: एक मान्यता के अनुसार मुनि वशिष्ठ ने प्रतिहार, चालुक्य, परमार तथा चौहान राजकुलों को अग्नि से उत्पन्न किया था। चौहान, जांगल, बीकानेर, जयपुर एवं उत्तरी मारवाड के रहने वाले थे, और उनके राज्य का प्रमुख भाग सपादलक्ष था। चौहान वंश का प्रमुख शासकवासुदेव था, इसके पश्चात नरदेव, विग्रहराज, दुर्लभराज, अजयराज, अरणोराज एवं पृथ्वीराज तृतीय महत्वपूर्ण शासक हुए

11 वीं शताब्दीमें पृथ्वीराज प्रथम के पुत्र अजयराज ने मालवा के परमार शासक नरवर्मन को हराकर अपने राज्य का विस्तार किया तथा 1113 में अजमेर की स्थापना की। अन्तिम चौहान शासकपृथ्वीराज तृतीय 1177 में 11 वर्ष की उम्र में राजा बना। उसके राज्य की देखभाल उसकी माता कर्पूरी देवी तथा उसके पिता के विश्वस्त मंत्री कदम्बवास करते थे। पृथ्वीराज ने 1236 ई. में अपरगांगेय के भाई नागार्जुन को हराया तथा गुडपूर, भादानक जेजाक तथा गाहड़वालों पर विजय प्राप्त की। पृथ्वीराज चौहान तृतीय ने कन्नोज के राजा जयचन्द को हराया तथा उसकी पुत्री संयोगिता को स्वयंवर से उठा लाया और उसके साथ अपनी राजधानी में विवाह किया।

पृथ्वीराज की सबसे महान विजय 1191 ई. में तराईन के प्रथम युद्ध में मुहम्मद गौरी के विरूद्ध हुई किन्तु 1192 ई में तराइन के द्वितीय युद्ध में उसे पराजित कर बंदी बना लिया और अजमेर ले जाकर मार डाला गया। पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद उसके पुत्र गोविन्दराज को अजमेर का राजा बनाया गया, पर शीघ्र ही पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने गोविन्दराज को भगाकर अजमेर छीन लिया। गोविन्दराज ने रणथम्भौर में चौहान वंश की नींव डाली। महाराणा कुंभा, रायमल तथा सांगा ने भी मांडू के सुल्तानों से अनेक युद्ध किये।

1.3.3 मुगलकाल :

अकबर, विक्रमादित्य को मारकर दिल्ली का बादशाह बना। अकबर की बाद की सफलता का मुख्य कारण राजपूत राजाओं के साथ उसके वैवाहिक संबंध थे जो उसकी राजनीति के अंग

थे। सर्वप्रथम आमेर के राजा भारमल ने अकबर को अपनी लड़की दी। उसने दूसरे राजाओं को भी अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए राजी किया। उस समय राजस्थान में डूंगरपुर, उदयपुर, बांसवाडा, प्रतापगढ, जोधपुर, बीकानेर, अजमेर, बूंदी, सिरोही, करौली तथा जैसलमेर के राज्य थे।

अन्य सभी ने तो अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली, पर मेवाड के राज्यों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रखने के प्रयत्न किये। महाराणा प्रताप ने भी अकबर से युद्ध किये। उनका हल्दीघाटी का युद्ध इतिहास प्रसिद्ध है। अकबर ने कुम्भलगढ़ दुर्ग से भी प्रताप को खदेड दिया तथा उनके सेनानायकों द्वारा मेवाड पर अनेक आक्रमण करवाये। पर अनेक कष्ट सहकर भी प्रताप ने अधीनता स्वीकार नहीं की। अंत में सं 1642 के बाद अकबर का ध्यान दूसरे कामों में लगे रहने के कारण प्रताप ने अपने स्थानों पर फिर अधिकार कर लिया। सं. 1654 में चावंड में उसकी मृत्यु हो गयीं। प्रताप के बाद उसके पुत्र अमरसिंह ने भी उसी प्रकार वीरता पूर्वक मुगलों का प्रतिरोध किया। पर अन्त में उसने शाहजहां खुर्रम के द्वारा सम्राट जहांगीर से संधि कर ली।

1.4 स्वतंत्रता संग्राम और राजस्थान:

मुगल साम्राज्य के पतन और मराठा शक्ति के उदय होने के साथ ही 18 वीं शताब्दी के अन्त में राजस्थान के राजाओं की शक्ति क्षीण होने लगी। उन्होनें मराठों की धौंस में आकर अपने खजाने खाली कर दिये और उनके आक्रमणों एवं लूट-खसोट से घबराकर ईस्ट इंडिया कम्पनी के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। हैस्टिंगज की "आश्रित पार्थक्य" की नीति' का पहला शिकार सन् 1817 के नवम्बर में करौली का शासक हुआ। सन् 1818 के अन्त तक मात्र 18 माह से भी कम की अवधि में राजस्थान के छोटे-बड़े सभी शासक ईस्ट इंडिया कम्पनी के समक्ष समर्पण कर चुके थे। ईस्ट इंडिया कंपनी के समक्ष अपने आपको समर्पित करने के बावजूद राजस्थान में अंग्रेजों के प्रति प्रजा द्वारा विद्रोह की ज्वाला धधकती रही। पूरे भारत में स्वाधीनता के लिए हुए संघर्ष की ही कड़ी में राजस्थान में भी विभिन्न जन आदोलनों के जरिये स्वतंत्रता का बिगुल बजाया जाता रहा। जन आन्दोलन स्वतंत्रता के लिये बजाये जाने वाले इस बिगूल की ही कहानी कहते है। राजस्थान में हुए विभिन्न जन आंदोलन। स्वतंत्रता संग्राम में राजस्थान के लोगों का भी योगदान कम नहीं रहा है। स्वतंत्रता संग्राम के लिए ही राज्य में प्रजामंडल अथवा लोक परिषद् की स्थापना आदि का कार्य हुआ।

1.4.1 1857 की क्रांति :

भारत में अंग्रेजी राज्य को 1857 की कांति के अंतर्गत पहली बार चुनौती तब मिली जब 29 मार्च 1657 में देश में भारतीय सेना की 34वीं रेजीमेंट के मंगल पांडे नामक सिपाही ने बैरकपुर छावनी में विद्रोह कर दिया। मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर और मराठों का अंग्रेजों को भारत से बाहर निकाल फैंकने का यह अन्तिम प्रयत्न था। दुर्भाग्य से राजस्थान के अधिकांश राजाओं ने राष्ट्रीय शक्तियों का साथ न देकर अंग्रेजों की सहायता की। इसका प्रमुख कारण उनका यह विश्वास था कि अंग्रेजी शासन की बदौलत ही उन्हें मराठों, पिण्डारियों और

उनके स्वयं के जागीरदारों से राहत मिली है। जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने जीवन पर्यन्त ब्रिटिश विरोधी तत्वों का प्रतिनिधितत्व किया, वहीं दूसरी और बीकानेर के महाराजा सरदार सिंह तो अंग्रेजों की सहायता हेतु अपनी सेना लेकर पंजाब पहुंच गये ओर हिसार और हांसी जिलों से विद्रोहियों को बेदखल कर दिया। 1657 का विप्लव होने के समय राजपूताना में 8 ब्रिटिश सैनिक छावनियों थी यथा- नसीराबाद, नीमच, देवली, ब्यावर, एरिनपुरा व खेरवाड़ा।

मेरठ (उत्तरप्रदेश) में सैनिक विद्रोह की खबर मिलते ही 28 मई, 1857 को दिन के 3 बजे नसीराबाद की 15 वीं नैटिव इंन्फैट्री के सैनिकों ने ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध विद्रोह का झण्डा खडा कर दिया। जवानों के ललकारने पर 30वीं नैटिव इंफैट्री भी विद्रोह में शामिल हो गई। सैनिकों ने छावनी को लूटने व जलाने के बाद दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। 3 जून 1857 को रात्रि 11 बजे नीमच के सैनिकों ने भी विद्रोह कर दिया। 21 अगस्त 1857 को जोधपुर राज्य में स्थित एरिनपुरा छावनी में ब्रिटिश फौज के भारतीय दस्तों ने बगावत का झण्डा खडा कर दिया। बागी सैनिकों ने "चलो दिल्ली-मारो फिरंगी" के नारे लगाते हुए दिल्ली की ओर कूच किया। राह में आउवा के ठाकुर कुशलसिह चंपावत ने बागी सेना का नेतृत्व स्वीकार कर अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध उठ खड़े हुए इस प्रकार विद्रोहियों की सैन्य शक्ति लगभग 6000 हो गई। 18 दिसम्बर को आउवा में दोनो पक्षों में घमासान युद्ध हुआ और अंग्रेजी सेना हार गई।

यह समाचार जब गर्वनर जनरल लार्ड केनिंग के पास पहुंचा तो' पालनपुर और नसीराबाद से एक बड़ी सेना आऊवा भेजी। क्रान्तिकारी इस बडी सेना के सामने नहीं टिक सके। क्रान्तिकारियों के नेता या तो पकड़ लिये गये या भाग।गये। उनको जन-धन की अपार हानि उठानी पडी। आऊवा व अन्य ठिकानों को लूटा गया और बरबाद कर दिया गया।

सन् 1857 के विद्रोह की असफलता से देश में अंग्रेजी हुकूमत का वर्चस्व स्थापित हो गया परन्तु यह स्थिति अधिक समय तक नहीं चली। "बग-भंग" ने देश में क्रान्ति की ज्वाला को प्रज्जवलित कर दिया। रासबिहारी बोस के नेतृत्व में देश के विभिन्न भागों में सशक्त क्रान्ति का आयोजन होने लगा। राजस्थान में इस क्रान्ति का अनुष्ठान शाहपुरा निवासी बारहठ केसरीसिंह ने किया। उन्होनें खरवा राव गोपालसिह जयपुर के अर्जुनलाल सेठी तथा ब्यावर के सेठ दामोदर दास राठी के सहयोग से राजस्थान में "अभिनव भारत समिति" नामक क्रान्तिकारी संगठन की शाखा स्थापित की और रासबिहारी बोस से सम्पर्क स्थापित किया। इस संस्थान द्वारा भर्ती किये युवकों को शिक्षण अर्जुनलाल सेठी द्वारा जयपुर में स्थापित वर्धमान विद्यालय में दिया जाता था। इस विद्यालय में शिक्षित चुने हुए युवकों को क्रान्तिकारी कार्यो का व्यावहारिक अनुभव और प्रशिक्षण देने के लिए दिल्ली में रासबिहारी बोस के प्रमुख सहायक मास्टर अमीचन्द के पास भेजा जाता था। बारहठ केसरीसिंह ने अपने भाई जोरावरसिंह और पुत्र प्रतापसिंह की शिक्षा-दीक्षा मास्टर अमीचंद के पास ही कराई थी।

सन् 1911 में ब्रिटिश सरकार ने भारत की राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली ले जाने की घोषणा की। इस अवसर पर भारत के गर्वनर जनरल लार्ड हार्डिग्ज ने दिल्ली में प्रवेश करने के लिए एक शानदार सवारी का आयोजन किया। रासबिहारी बोस ने हार्डिग्ज को मारने की

योजना बनाई। जोरावरसिंह ने प्रताप सिंह और दो अन्य युवकों के साथ मिलकर वायसराय पर बम फैंका। वायसराय तो बच गया परन्तु उसका छत्रधारी महावीर सिंह मारा गया। बम फैंकने के बाद जोरावर सिंह और प्रताप सिंह फरार हो गये।

विभिन्न रियायतों में दमनात्मक कार्यवाही के बावजूद राजस्थान में आजादी के लिये संघर्ष के प्रयास निरंतर जारी रहे। लोगों में देश की आजादी के प्रति जज्बा इस कदर था कि वे छुप-छुप कर स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान दे रहे थे।

1.4.2 राजनीतिक संगठनों का जन्म:

फरवरी 1938 में हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में देशी राज्यों को अपने-अपने संगठन स्थापित करने और स्वतंत्रता आन्दोलन चलाने संबंधी प्रस्ताव पारित किया गया। फलस्वरूप राजस्थान की विभिन्न रियासतों में प्रजामण्डल अथवा लोकपरिषद् आदि नामों से विशुद्ध राजनीतिक संस्थाओं के संगठन संबंधी कार्य का श्री गणेश हुआ।

1.4.3 भारत छोड़ो आंदोलन

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बम्बई बैठक में 8 अगस्त 1942 को महात्मा गांधी ने "भारत छोड़ो आंदोलन" का ऐलान किया। उसी दिन एक अन्य बैठक में महात्मा गांधी ने देशी राज्यों के प्रजामण्डलों के नेताओं को सलाह दी कि उन्हें अपने-अपने शासकों को पत्र भेजकर ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता से संबंध तोडने की मांग करनी चाहिए। इस समय तक मेवाड़, मारवाड़, जयपुर, अलवर, भरतपुर ओर कोटा आदि राज्यों में राजनीतिक संस्थाएं, व्यवस्थित रूप से अपने पैर जमा चुकी थी।

1.5 किसान आन्दोलन:

राजस्थान, देशी रियायतों में बंटा हुआ प्रदेश था जहां पर सामन्तवादी दौर के चलते किसानों से लगान वसूली और बेगार नहीं करने पर जुल्म-जबरदस्ती भी होती थी। देशी रियायतों के जागीरदार प्रजा पर जुल्म करते थे तो भारी मात्रा में लगान भी वसूल करते थे। किसानों के लिये संघर्ष का जीवन आम बात थी। खेती-बाड़ी में कठोर परिश्रम करने के बावजूद उनके हिस्से में कुछ नहीं आता था। इसी से किसान आंदोलन का सूत्रपात भी बाद में राजस्थान से हुआ। राजस्थान के किसान आंदोलन देशभर में खासे प्रसिद्ध रहे है। किसान आंदोलनों के अंतर्गत हुए संघर्ष को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है -

1.5.1 बिजौलिया किसान आंदोलन: राजस्थान में संगठित जन-जागृति का इतिहास बिजौलिया के किसान आंदोलन से होता है। 1897 में मेवाड़ के जागीर क्षेत्र बिजौलिया में भारी लगान के अलावा 84 तरह की लागें ली जाती थी। बैठ-बेगार का बोलबाला था। अमानुषी जुल्मों के विरूद्ध बिजोलिया के किसानों को संगठित कर श्री विजयसिंह पथिक ने आंदोलन की बागडोर सम्हाली। इस आन्दोलन का पटाक्षेप सन 1941 में किसानों की विजय से हुआ। भारत में यह पहला अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन था जो लगातार 44 वर्षो तक चलता रहा।

1.5.2 बेग किसान आंदोलन: बिजोलिया के किसान आन्दोलन से प्रभावित होकर बेगूं के किसानों ने भी बैठ-बेगार और लाग-बाग मे विरूद्ध 1921 में एक सुसंगठित आन्दोलन शुरू कर दिया। इस आन्दोलन में अनेक किसान स्त्रियों ने भी भाग लिया। आन्दोलन को दबाने के लिए सरकार ने फौज का उपयोग किया जिसकी गोलियों से रूपाजी और करमाजी नाम के दो किसान शहीद हुए और अनेक घायल हुए। अन्त में इस आंदोलन में भी किसानों की विजय हुई।

1.5.3 बूंदी किसान आंदोलन: बूंदी राज्य में भी बेंगू-बिजौलिया आंदोलन में नानक जी भील पुलिस की गोली के शिकार हुए जिनके बलिदान की गाथाएं आज भी बूंदी और आस-पास के इलाकों में गायी जाती है।

1.5.4 भील आंदोलन: किसान आंदोलनों की यह आग भोमठ (मेवाड़) और पडौसी सिरोही के भील इलाके में फैल गयी। स्वर्गीय मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में इस इलाके के किसानों ने बगावत का झंडा फहराया। इन आंदोलनों को कुचलने के लिए सेना ने जमकर गोलिया बरसाई। जिसमें लगभग 2 हजार किसानों ने अपने प्राणों की आहूति दी। किसान आंदोलन के इतिहास में यह सबसे बड़ा बलिदान था।

1.5.5 नीमराणा आंदोलन: किसानों का एक जबरदस्त आंदोलन अलवर राज्य में हुआ। 24 मई 1925 को राज्य के किसानों ने लगान के विरोध में नीमूचाणा गांव में सभा का आयोजन किया। राज्य की सेना ने गांव को घेरकर गोलियां चलाई, जिससे सैकडों स्त्री-पुरूष और बच्चे मारे गए। गांव में आग लगा दी गई। महात्मा गांधी ने इस काण्ड को जलियावालां बाग काण्ड से भी अधिक वीभत्स बताया।

1.5.6 मारवाड़ किसान आंदोलन : 1923 में श्री जयनारायण व्यास ने मारवाड़ हितकारिणी सभा का गठन किया और इसके माध्यम से मारवाड के किसानों को लागतों तथा बेगार के विरूद्ध जागृत करने का प्रयास किया।

1.6 आधुनिक राजस्थान का निर्माण:

कई युगों के संघर्ष के बाद राजस्थान की जनता ने निरंकुश शासकों के शासन से सदा सर्वदा के लिए मुक्ति पाई। एक वर्ष की अल्पावधि में 23 रियासतों की सीमाएं समाप्त हो गई और सात विभिन्न चरणों में वर्तमान राजस्थान का स्वरूप विकसित हुआ। रियासतों के एकीकरण के बाद आधुनिक राजस्थान का निर्माण हुआ। आधुनिक राजस्थान के निर्माण के विभिन्न चरण इस प्रकार से हैं -

1.6.1 मत्स्य संघ (18 मार्च 1948) : 27 फरवरी 1948 को अलवर,, भरतपुर,, धौलपुर और करौली के राजाओं के समक्ष दिल्ली केन्द्रीय सरकार की ओर से चारों रियासतों के विलीनकरण का प्रस्ताव रखा गया जिसे चारों ने स्वीकार कर लिया। इस नये राज्य संघ का नाम श्री कन्हैया लाल माणिक्य लाल मुंशी के सुझाव पर 'मलय'' रखा गया। इसका क्षेत्रफल 7,536 वर्गमील, जनसंख्या 1,83000 तथा वार्षिक आय 18 करोड़ 30 लाख 86 हजार रूपये थी। तत्कालीन केन्द्रीय खनिज एवं विधुत मंत्री श्री नरहरि विष्णु गाडगिल ने इसका उद्घाटन किया।

1.6.2. राजस्थान संघ (25 मार्च 1948) राजस्थान के एकीकरण का दूसरा महत्वपूर्ण चरण 25 मार्च 1948 को पूरा हुआ जब कोटा, बूंदी, झालावाड़, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, प्रतापगढ,

किशनगढ, टौंक ओर शाहपुरा रियासतों के शासकों ने मिलकर ' 'राजस्थान संघ' का निर्माण किया। इसका उद्घाटन भी श्री गाडगिल के हाथों ही सम्पन्न हुआ। इसकी राजधानी कोटा को बनाया गया।

1.6.3. संयुक्त राजस्थान (18 अप्रैल 1948) 18 अप्रैल 1948 को उदयपुर रियासत का राजस्थान संघ में विलीनीकरण होने पर संयुक्त राजस्थान का निर्माण हुआ जिसका उद्घाटन इसी दिन उदयपुर में भारत के प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने किया। इसका क्षेत्रफल 29,977 वर्ग किलोमीटर, जनसंख्या 42 लाख 60 हजार 918 तथा वार्षिक आय तीन करोड़ 16 लाख 6 हजार रूपये थी। उदयपुर को इस नये राज्य की राजधानी बनाया गया। वस्तुत: वर्तमान राजस्थान का स्वरूप इसी समय बना और यहीं से इसके निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

1.6.4. वृहद राजस्थान - (30 मार्च व 949) इस समय जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर और सिरोही की पांच रियासतें ही ऐसी बची थी जो एकीकरण में शामिल नहीं हुई थी। उपरोक्त रियासतों में जयपुर, जोधपुर और बीकानेर अपने को स्वतंत्र रखना चाहती थी लेकिन एकीकरण की प्रक्रिया के तीव्र गति से चलने के कारण यह संभव नहीं हो पा रहा था। 14 जनवरी 1949 को उदयपुर की एक सार्वजनिक सभा में सरदार पटेल ने जयपुर बीकानेर और जैसलमेर रियासतों के वृहद राजस्थान में सैद्धान्तिक रूप से सम्मिलित होने की घाषेणा की।इस ऐतिहासिक निर्णय को मूर्त रूप दिया गया चैत्र शुक्ला प्रतिपदा, बुधवार, संवत 2006, तदनुसार 30 मार्च 1949 को नव वर्ष की प्रभात बेला में सरदार पटेल ने जयपुर के ऐतिहासिक दरबार में आयोजित एक भव्य समारोह में राजस्थान का उद्घाटन किया।

1.6.5 मत्स्य का विलय (15 मई 1949): वृहद राजस्थान का निर्माण हो जाने के बावजूद मत्स्य संघ का अभी तक पृथक अस्तित्व था जिसने रियासतों के एकीकरण की दिशा में पहल की थी। 15 मई 1949 को भारत सरकार ने मत्स्य संघ को राजस्थान में मिलाने के लिए विज्ञप्ति जारी कर दी और 15 मई 1949 को मत्स्य संघ राजस्थान का अंग बन गया। इस परिवर्तन के फलस्वरूप मत्स्य के प्रधानमंत्री श्री शोभाराम को शास्त्री मंत्रिमण्डल में मंत्री के रूप में शामिल कर लिया गया।

1.6.6 सिरोही का विलय (7 फरवरी 1950): मलय की तरह सिरोही के विलय के प्रश्न पर भी राजस्थानी और गुजराती नेताओं के मध्य काफी मतभेद थे। अत: जनवरी 1950 में सिरोही का विभाजन करने और आबू व देलवाडा तहसीलों को बम्बई प्रांत और शेष भाग राजस्थान में मिलाने का फैसला लिया गया। इसकी क्रियान्विति 7 फरवरी 1950 को हुई, लेकिन आबू और देलवाडा कों बम्बई प्रांत में मिलाने के कारण राजस्थानवासियों में व्यापक प्रतिक्रिया हुई। जिससे 6 वर्षबाद राज्यों के पुर्नगठन के समय इन्हें वापस राजस्थान को देना पडा।

1.6.7 अजमेर का विलय (1 नवम्बर 1956) : भारत सरकार द्वारा श्री फजन अली की अध्यक्षता में गठित राज्य में पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों के आधार पर एक नवम्बर 1956 को तत्कालीन अजमेर मेरवाड़ा राज्य को भी राजस्थान में विलीन कर दिया गया जो अब तक केन्द्र शासित " सी " श्रेणी का राज्य था और जिसकी अपनी पृथक मंत्रिपरिषद् और विधान सभा कार्यरत थी।

इसी के साथ मध्य भारत के मंदसौर जिले की मानपुरा तहसील का सुनेलटप्पा ग्राम राजस्थान में शामिल किया गया जबकि राजस्थान के झालावाड़ जिले का सिरोंज उपजिला नये मध्यप्रदेश को रथानांतरित कर दिया गया। इस प्रकार वर्तमान राजस्थान के निर्माण की प्रक्रिया सात चरणों में समाप्त हुई और 19 देशी रियासतों और तीन चीफशिप वाले क्षेत्रों की जनता एकतंत्र से मुक्त होकर लोकतंत्र की मुख्यधारा में शामिल हुई।

1.7 सारांश:

इतिहास अपने आपको जानने की प्रक्रिया है। यह ऐसा दर्शन है। जिसके अंतर्गत उदाहरणों द्वारा बहुत कुछ जानने का प्रयास किया जाता है। वैसे भी इतिहास अतीत की विस्मृति को स्मृति में बदलने का ऐसा प्रयास है। जिसका संबन्ध समाज में रहने वाले व्यक्ति से नहीं बल्कि उस समाज से भी है जिसमें व्यक्ति जीवन व्यतीत करता है। विभिन्न इतिहासकारों ने इतिहास के बारे में अपने मत से परिभाषाएं दी है। समग्रत: इतिहास अतीत की व्याख्या और उसे प्रस्तुत करने का मानवीय प्रयास है।

राजस्थान का इतिहास गौरवमयी रहा है। आजादी से पहले आधुनिक राजस्थान विभिन्न देशी रियासतों में बंटा हुआ था। राजस्थान के इतिहास को प्रारंभिक, राजपूत काल और मुगलकाल से जाना जा सकता है। इन सभी कालों में राजस्थान में विभिन्न प्रकार के हुए राजपूत-मुगलों के संघर्ष की दास्तां छुपी है तो यहां के वीरों की अनगिनत कहानियां भी है। वीरों और वीरांगनाओं की इस भूमि में महाराणा प्रताप के शौर्य की गाथाएं है तो पद्मिनी के जौर की भी अनोखी दास्तां है! पन्ना धाय के बलिदान, मीरा के प्रेम, कुंभा के कलानुराग, अमर सिंह के स्वाभिमान की अनेकानेक कहानियां हमारे इतिहास की अनमोल धरोहर है।

राजस्थान के इतिहास में वीरों और वीरांगनों, स्वाधीनता सैनानियों की साहसिक दास्तानें छुपी हुई है तो यहां अन्न उगाने वाले किसानों के संघर्ष की गाथाएं भी अत्यन्त मार्मिक रही है। राजस्थान में समय-समय पर हुए विभिन्न किसान आंदोलन जागीरदारी प्रथा, अधिक लगान वसूलने के खिलाफ एक प्रकार से प्रजा के विद्रोह की ही दास्तां है। बिजौलिया ,बूंदी, बेग, नीमराणा आदि किसान आंदोलन, राजस्थान के इतिहास के ऐसे पन्ने है, जिन्हें बिसराया नहीं जा सकता।

आजादी की लड़ाई में भी राजस्थान देश के अन्य भागों से कहीं पीछे नहीं रहा है। चाहे 1857 की क्रांति हो या फिर भारत छोड़ो आंदोलन-राजस्थान के स्वाधीनता सेनानी देश की स्वतंत्रता के लिए निरंतर सक्रिय रहे। प्रजामंडल, लोकपरिषद् जैसे संगठनों का जन्म इसी कारण से प्रदेश में हुआ।

देशी रियायतों में बंटे राजस्थान, के निर्माण के भी विभिन्न चरण रहे है। सरदार पटेल के प्रयासों से राजस्थान की देशी रियायतों के एकीकरण को सुनिश्चित किया जा सकता। उसी का परिणाम वृहद् राजस्थान की स्थापना है। आज भी 30 मार्च को राजस्थान का स्थापना दिवस मनाया जाता है।

बोध प्रश्न :

1. "इतिहास मूलत: अपने सबंध में जानने की प्रथम जिज्ञासा है।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में इतिहास की अवधारणा पर प्रकाश डालते हुये इतिहास की परिभाषा दीजिए।

   .....

   .....

2. राजस्थान के इतिहास की प्रारंभिक, राजपूत एवं मुगलकाल की चर्चा करते हुये विस्तार से समझाईए।

   .....

   .....

3. स्वतंत्रता आंदोलन में राजस्थान की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

4. राजस्थान में समय-समय पर हुए विभिन्न किसान आंदोलनों की चर्चा करते हुए इनके कारणों पर प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

5. देशी रियायतों के एकीकरण के बाद आधुनिक राजस्थान के निर्माण की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को स्पष्ट करें।

   .....

   .....

इकाई - 2: राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत

रूपरेखा :

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 संस्कृति और समाज

2.3 राजस्थान की संस्कृति

2.4 सांस्कृतिक विरासत

2.4.1 चित्रकला, मूर्तिकला एवं हस्तकलाएं

2.4.2 संगीत, लोकनृत्य एवं लोक वाद्य

2.4.3 लोक नाट्य, लोकानुरंजन एवं लोक साहित्य

2.4.4 लोकोत्सव, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मेले

2.5 सारांश

2.0 उद्देश्य:

इस इकाई को पढने के बाद आप -

- संस्कृति और समाज के बारे में जान सकेंगे।
- राजस्थान की संस्कृति के विभिन्न पहलुओं से अवगत हो सकेंगे।
- संस्कृति विरासत से जुड़ी परम्पराओं, पहलुओं को समझ सकेंगें।
- सांस्कृतिक विरासत संरक्षण की सोच से जुड़ सकेंगें।

2.1 प्रस्तावना :

संस्कृति के मानवीय और 'आध्यात्मिक पक्ष में कला, साहित्य, धर्म, दर्शन तथा भौतिक एवं लौकिक जीवन के उज्ज्वल पक्ष निहित होते हैं। राजस्थान का इतिहास केवल तिथि-क्रम से ही जुड़ा हुआ नहीं है वरन् उसका संबंध उन मान्यताओं, परम्पराओं, विचारों से भी है जिनमें संस्कृति और समाज के गहरे सांस्कृतिक सरोकार हैं। सामान्य शब्दों में कहा जाए तो संस्कृति सरकार से जुड़ा शब्द है। यह हमें बताती है कि हमारी सूक्ष्म चित्त वृत्तियों का कितना विकास एवं विस्तार हुआ है। इस दृष्टिदेखा जाए तो राजस्थान की संस्कृति का स्वरूप अत्यन्त विराट है। लोक का आलोक लिए यहां की संस्कृति की अपनी विशिष्टपरम्पराएं है। गौरवशाली अतीत के आंगन में निंरतर पनपती रही है यहां की समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराएं। कौनसे हैं राजरथान की सांस्कृतिक विरासत के महत्वपूर्ण पहलू ? संस्कृति और समाज के रिश्तों के परिप्रेक्ष्य में आईए समझें राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत को -

2.2 संस्कृति और समाज:

संस्कृति को लक्षणों से तो हम जान सकते है, किन्तु उसकी सर्वसम्मत परिभाषा नहीं दी जा सकती। कुछ अंशों में वह सभ्यता से एक भिन्न गुण है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। मनीषियों ने

संस्कृति को प्रत्येक समाज की सर्वोत्तम उपलब्धि बताया है। संस्कृति के दो पक्ष है- आन्तिरक और बाह्य। दृश्य और श्रव्य कलाएं तथा शिल्प बाह्य संस्कृति के यंत्र (उपकरण) मात्र है, जबकि हमारे चारित्रिक गुण आन्तरिक संस्कृति के। शरणागत की रक्षा, देवस्थानों की पवित्रता की महत्ता, धार्मिक गुरूओं का सम्मान, अतिथि-सत्कार, व्यावसायिक ईमानदारी, पारस्परिक सहयोग की भावना और गौ, ब्राह्मण तथा अबलाओं की रक्षा आदि अनेक गुण आंतरिक संस्कृति के ही गुण है।

बाह्य संस्कृति के उपादान बहुत विस्तृत है। इसमें चित्र, संगीत, नृत्य, वाद्य, स्थापत्य, मूर्ति निर्माण कलाएं, लोकगीत या मुहावरे, पहेलियां, लोरियां हरजस, चुटकुले, ख्याल, पवाडे, कठपुतली, नाटक, सांग, रास-लीला आदि लोकानुरंजन तीज, गणगौर, दशहरा, होली, दीवाली, शरद पूर्णिमा आदि उत्सव धार्मिक मेले आदि आते हैं।

संस्कृति कोई दस-बीस या सौ-पचास सालों में रची जा सकने वाली चीज नहीं है। कई शताब्दियों तक एक समाज के लोग जिस ढंग का खान-पान, रहन-सहन, पठन-लेखन, सोच-समझ और राज कार्य अपनाते अथवा धर्म-कर्म करते है, ये सभी कार्य उनकी संस्कृति उत्पन्न करते है। हमारे सभी कार्यो में हमारी संस्कृति झलकती है। यहां तक कि हमारे उठने-बैठने, पहनने-ओढने, घूमने-फिरने और रोने-हंसने में भी हमारी संस्कृति की पहचान होती है। हमारा कोई भी एक काम हमारी संस्कृति का पर्याय नहीं बन सकता। दरअसल संस्कृति जिन्दगी जीने का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से संग्रहित होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम रहते हैं। इसलिए जिस समाज में हमारा जन्म हुआ है, हम पैदा हुए है अथवा जिस समाज के साथ मिलकर हम जी रहे हैं, उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है।

अपने जीवन में हम जिन संस्कारों को आत्मसात करते है वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और हमारी मृत्यु के बाद हम दूसरी चीजों के साथ अपनी संस्कृति की धरोहर भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते हैं। समग्रत: संस्कृति वह कही जायेगी जो जीवन में व्याप्त है तथा जिसके सृजन और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है। आदिकाल से ही दार्शनिक, चित्रकार और शिल्पकार हमारी संस्कृति के सृजनकर्त्ता रहे हैं। ये हमारे लिए काव्य और दर्शन रचते आए है।

संस्कृति का स्वभाव ही है कि वह आदान-प्रदान से बढती है। जब भी दो जातियों का मिलन होता है, उनके संपर्को या संघर्षो से जीवन की एक नवीन धारा का प्रस्फूटण होता है और जिसका प्रभाव दोनों पर पडता है। आदान-प्रदान की प्रक्रिया संस्कृति की जीवन शक्ति है और इसी के आश्रय में वह स्वयं को सजीव रखता है। इस समग्र परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि संस्कृति और समाज को एक-दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता।

2.3 राजस्थान की संस्कृति:

राजस्थान रंगो की भूमि हैं। यहां की लूंठी-अलूठी संस्कृति के कई रंग हैं। मानव जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिसमें राजस्थान की संस्कृति के नाना रूप नहीं हों। गौरवमयी अतीत, वैविध्यपूर्ण प्राकृतिक परिवेश और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत लिए राजस्थान की भूमि

"पधारो म्हारे देसकृ" के भाव लिए मानों सैलानियों को आमंत्रण देती है। जितना सुरम्य यहां का परिवेश है उतना ही सरस और सजीला है-यहां का सांस्कृतिक वैभव। कहीं मेले-उत्सव, तीज-त्योहारों की उमंग है तो कहीं कलाकारों द्वारा चित्रित जीवन के विविध पहलू सहज ही मन को छू लेने वाले हैं। कहीं लोक कलाओं का उजास है तो कहीं धोरों पर गूंजती कलाकारों की स्वर लहरियां, वाद्य यंत्रों का सुरीला संगीत औरनृत्यकी मोहक अदाएं मिट्टी की सौंधी महक से अनायास ही साक्षात कराती है।

2.4 सांस्कृतिक विरासत:

कालीबंगा व आहड़ से प्राप्त श्रृंगवान आकृतियां, मोहरों, बर्तनों एवं अन्य वस्तुओं से यह स्पष्ट ही अनुमान लगाया जा सकता है कि राजस्थान का आरंभ से ही बाहरी सभ्यताओं से घनिष्ठ संबंध रहा है। राजस्थान की सबसे बड़ी सांस्कृतिक उपलब्धि प्रागैतिहासिक युग की यह है कि यहीं कभी सरस्वती-दृशद्वती की घाटी में ऋग्वेद की रचना और आर्य आर्येतर जातियों का संगम हुआ। कहते है कि इसी युग में राजस्थान की संस्कृति का बीजारोपण हुआ जिसमें मौलिक एकता, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के प्रच्छन्न एवं अप्रच्छन्न रूप के विकास की प्रकियाएं आरंभ हुई। पूर्व मध्यकाल के पहिले राजस्थान में अनेक वंशों की शक्तिका उदय हो चुका था जिनमें गुहिल, राठौड़, चौहानर, भाटी, कुशवाह आदि प्रमुख थे। इन्होंने हुणों द्वारा की गयी विध्वंसात्मक क्षति को सुधारने के लिए सांस्कृतिक पुनरूत्थान का बीड़ा उठाया। इस काल के शासक स्वयं विद्वान तथा कलाप्रेमी रहे तथा उन्होंने अपने यहां कलाकारों, शिल्पियों, संस्कृतिकर्मियों को आश्रय देकर राजस्थान को सांस्कृतिक केन्द्र बनाया। भव्य राजप्रासाद, सुन्दर मंदिर, मूर्तिकला और चित्रकला के साथ ही संगीत,नृत्य की विभिन्न कलाओं का फिर राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में इतना विकास हुआ कि राजस्थान सांस्कृतिक संपन्नता का पर्याय ही बन गया। सांस्कृतिक विरासत से जुड़ी यहां की ललित कलाएं, संगीत-नृत्य की समृद्ध परम्पराएं, लोक का आलोक लिए मेले-उत्सव एवं त्योहार, स्थापत्य एवं वास्तुकला के अप्रतिम उदाहरण यहां के महल, मंदिर आदि सभी कुछ विशिष्टताएं लिए हैं। आईए, परिचित होते हैं राजस्थान की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से -

2.4.1 चित्रकला, मूर्तिकला एवं हस्तकलाएं:

मूर्तिकला, चित्रकला एवं हस्तशिल्प में राजस्थान आरंभ से ही समृद्ध प्रदेश रहा है। यहां के कलाकारों ने स्वाभाविकता और सौन्दर्य का इस प्रकार से समन्वय किया है कि लोकोत्तर आनंद की अनुभूति स्वत: ही होती है। लोक जीवन से जुड़ी हस्तकलाओं का कौशल इस कदर है कि विदेशों से पर्यटक केवल इसलिए ही राजस्थान आते हैं कि यहां के कलाकारों द्वारा निर्मित हस्तकलाओ के उत्पाद को अपने यहां ले जा सकें, उनको अपनी धरोहर बना सकें। राजस्थान की चित्रकला, मूर्तिकला और हस्तशिल्प का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से हैं -

चित्रकला : कुमार स्वामी के शब्दों में - "राजस्थानी चित्रकला की सुन्दर कृतियों को देखते हुए हमारे मन में ऐसा भाव उत्पन्न होता है कि राधाकृष्ण की पवित्र लीला लोक हमारे जीवन की अनुभव भूमि है।"

राजस्थान के प्राय: सभी घरों में कहीं न कहीं चित्रों को स्थान मिला है। ये चित्र या तो भित्तियों पर बने होते है या फिर चौक एवं द्वारपट पर। यहां की ग्रामीण औरतें भी अपने जीवन में चित्रकला को विशेष स्थान देती है। ' हाथों पर मेहंदी' द्वारा सुन्दर अलंकरण, चौकों में 'मांडणे ' के विविध नमूने एवं शुभ अवसरों एवं तीज-त्यौहारों पर मंगल चित्र राजस्थान की लोककला के विशेष स्वरूप है। मयूर, सारस, कपोत, शुक आदि पक्षीगण यहां पर अधिक संख्या में है। इसके साथ ही सिर पर मटके रखे हुए कुओं से पानी लाने जाती तथा वहां से लौटती कोमलागी सुन्दिरयों की पंक्तियां, घूंघट के बीच से चमकते हुए खंजन पक्षियों के समान चंचल नेत्र, सोने-चांदी के गहनों तथा नखशिख कार से सजी नारियां, शिखराकार पगड़िया ,लहराते दुपट्टे की चित्र कृतियां देखते ही बनती है।

राजस्थानी चित्रों के विषय बहुत विस्तृत है। राधा-कृष्ण की लीला, अनेक प्रकार की नायक-नायिकाएं ,रामायण-महाभारत की कथाएं, ढोला मारू, माधवा नल कामकंदला सदृश लोक कथाएं, स्त्री पुरूषों के श्रृंगार भाव ,ऋतुओं के चित्र और बारहमासा तथा राजाओं की प्रतिकृतियां इन चित्रों के विस्तृत विषय है। लेकिन इनकी सबसे बडी विशेषता रागमालाओं का चित्रण है जिसके लिए राजस्थानी चित्रकला शैली भारतीय चित्रकला में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

युद्धों का विवेचन तूलिका भरा हुआ है। इन चित्रों को बिहारी, सूरदास, केशवदास, पद्माकर आदि रसिक कवियों ने ही नहीं वरन् नागरीदास तथा मीरा के समान भक्त कवि एवं कवियित्रियों ने भी प्रभावित किया है अतिसूक्ष्म भावनाओं का रेखाबद्ध विवेचन, महाभारत एवं रामायण की कथाओं का मूर्तिमय होकर चित्रों में समावेश, कल्पनामय उपाख्यानों से लेकर ऐतिहासिक तथ्यों तक का निरूपण इन चित्रों में बड़े सुंदर ढंग से किया गया है। राजस्थान में प्रदेश विशेष की विशिष्टताओं के कारण प्रत्येक क्षेत्र की अपनी एक शैली मानी गयी है। यह शैली अपना एक निजी अस्तित्व रखती है। अपने विशिष्ट गुणों के कारण ही ये पहचानी जाती है।

राजस्थानी शैली का उद्‌गम अपभ्रंश शैली से माना जाता है जिसे जैन ग्रंथों में सरलता से देखा जा सकता है। करणांत तक पहुंचने वाले नेत्र और तीखे नाक-नक्श इस शैली की विशिष्टताएं रही है। अपभ्रंश या जैन शैली प्राय: चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी तक चलती रही और इसी से राजस्थानी शैली की राजपूत कलम का विकास माना जाता है। धीरे-धीरे मुस्लिम शासकों के प्रभाव के कारण इस शैली में सूक्ष्म परिवर्तन होने लगे। राजस्थानी चित्रकला की मेवाड़ी, मारवाड़ी, जयपुरी, किशनगढी, नाथद्वारा, बीकानेरी, बूंदी, कोटा आदि अनेक शैलियां मानी जाती है। कला मर्मज्ञ इन शैलियों की विशेषता खोजते रहे हैं तथा इन शैलियों के चित्रकारों की खोज कर उनका पता लगाने में सफल भी हुए हैं। राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख शैलियां इस प्रकार है-

- **मेवाड़ी शैली :** 17 वीं सदी में राजस्थानी चित्रकला का प्रारम्भिक और मौलिक रूप मेवाड़ी शैली में प्राप्त होता है। महाराणा अमरसिंह के शासन काल में इसका स्वरूप निर्धारण और विकास हुआ। हजारों लाखों चित्र बनाए गए। इतनी अधिक संख्या में चित्रों का सृजन राजस्थान की किसी दूसरी शैली में नहीं हुआ। चित्रों के विषय भी

भिन्न-भिन्न प्रकार के थे जो अन्य किसी शैली में दिखाई नहीं देते। इस शैली के चित्रों में लाख के लाल रंग तथा चमकदार पीले रंग की अधिकता दृष्टिगत होती है। मछली के समान आंखे, पुरूषों और स्त्रियों की लंबी नासिका, वृताकार चेहरा, छोटा कद, छोटी ठोडी होती है। पुरुषों के कान एवं चिबुक के नीचे गहरे रंगों का उपयोग किया जाता है। रसिक प्रिया, महाभारत, रागमाला, बारहमासा, रामायण, पृथ्वीराज रासो, बिहारी सतसई आदि विविध विषयों पर इस शैली में चित्रों का सृजन हुआ। इसके प्रमुख चित्रकार साहिबदीन, मनोहर, गंगाराम, कृपाराम, भौरीराम, शिवदत्त, जगन्नाथ आदि है।

- **पिछवई :** इसके अंतर्गत उदयपुर व नाथद्वारा में श्री नाथ जी की मूर्ति के साथ विभिन्न उत्सवों, पर्वो व दैनिक दर्शनों के समय दीर्धाकार कपडे पर विविध व पर्व विषयक चित्रण किया जाता है और उसका साज अगर धार्मिक व श्रृंगारिक भावों के आधार पर किया जाता है। इसके विषय मूलत: श्री कृष्ण के भिन्न-भिन्न स्वरूपों व श्रीनाथ जी की झांकियों से संबद्ध ही है परन्तु कला में आए परिवर्तन के साथ-साथ गणगौर की सवारी, ढोला-मारू, गोवर्द्धन पूजा, रासलीला, राजा की सवारी आदि विषयों पर भी इसमें चित्र बनाए जाते है। इसके प्रमुख चित्रकारों में नरोत्तमनारायण ,बीजी शर्मा, घनश्याम आदि पारस्परिक घरानों से संबंधित चित्रकार है जिन्होनें इस कला को विश्व स्तर पर प्रसिद्धि प्रदान की है।
- **फड़ :** "फड़" राजस्थान की परंपरागत लोक-चित्र शैली है। यह शुद्ध रूप से लोक कला है जो ग्राम्य जनजीवन से जुडी है। यह कपडे और कैनवास पर बनती है। मन्दिरों और राजप्रासादो की भीतरी दीवारों पर भी फड़ शैली में चित्र चित्रित किये जाते है। लाल, पीले, हरे, बैंगनी, काले, सफेद और सुनहरे रंग मिलकर इन चित्रों को बहुत मनभावन बना देते है। आज भी यह कला भीलवाडा व शाहपुरा में सजीव है। यहां के "फड़" शैली के चित्रकारों में दुर्गेश, श्री लाल आदि के नाम लिये जा सकते है। ये दोनों ही चित्रकार सिद्धहस्त शिल्ली के राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित हो चुके है।
- **मारवाड़ी शैली :** 17 वीं शती के पूर्वाद्ध में इस शैली का आरंभ हुआ परन्तु इसका पूर्ण विकास 18 वीं शती के उत्तरार्द्ध में स्थिर हुआ। मारवाडी शैली में लाल और पीले रंग का प्रयोग अधिक किया जाता है, जो स्थानीय विशेषता का द्योतक है। इस शैली के पुरूष और स्त्रियां गठीले आकार के होते है और पुरुषों के गलमुच्छ ऊंची पगडी तथा स्त्रियों के लाल फूँदने का चित्रों में प्रयोग किया जाता है। कमल नयनों का अंकन, जिनके नीचे की कोर ऊपर की और बढ़ी हुई, जुल्फों का घुमाव, नीलाम्बर में गोल बादलों का अंकन आदि इसकी अपनी विशेषताएं है।बारहमासा, रागमाला, ढोला-मारू इत्यादि चित्रों का निर्माण पर्याप्त मात्रा में हुआ है। मारवाडी शैली में 18 वीं शती के प्रारंभ में बडे आकार के चित्रों का निर्माण दूसरी शैलियों

की तुलना में अधिक हुआ है। भाटी शिवदास, भाटी किशनदास ,भाटी देवदास आदि इस शैली के प्रमुख चित्रकार है।

- **जयपुरी शैली :** जयपुरी शैली का काल 1600 से 1900 तक माना जाता है। सवाई जयसिंह के काल में दिल्ली से मुगल बादशाह औरंगजेब की बेरूखी का सामना कर अनेक कलाकार जयपुर आए थे। इसका असर रामगढ, फतेहपुर, झुंझुनू ,नवलगढ, सीकर आदि ठिकानों पर भी पड़ा। मुगलों के यहां से आए चित्रकारों के कारण प्रारंभ में इस शैली पर मुगल प्रभाव काफी था। इसके बाद सवाई जयसिंह के पोते का राज आते-आते जयपुर शैली खालिस राजपूत शैली में करवट लेने लगी।

  इस शैली के चित्रों में रास-मण्डल, बारहमासा, गोवर्धन-धारण, गोवर्धन पूजा आदि के चित्र उल्लेखनीय है। पोथीखाने के आसावरी रागिनी के चित्र और उसी मण्डली के अन्य रागों के चित्रों में स्थानीय शैली की प्रधानता दिखाई देती है। कलाकारों ने आसावरी रागिनी के चित्र में शबरी के केशों, उसके अल्प कपड़ों, आभूषणों तथा चंदन के वृक्ष के चित्रण में जयपुर शैली की प्राचीनता तथा वास्तविकता को खूब निभाया है। इस शैली के चित्रों में पुरुषों के चेहरों पर चोट एवं चेचक के दागों के निशान दर्शाए गए है। आंखे बड़ी-बड़ी चुस्त तीखी मूंछे व बाल बढ़े हुए दिखाए गए है। नारी पात्रों को रत्नजड़ित आकर्षक आभूषणों से सुसज्जित दिखाया गया है।
- **किशनगढ़ शैली :** इसका आरम्भ 18 वीं शतीके मध्य में हुआ है। यह बहुत ही मनभावन शैली है। राधाकृष्ण की रीतिकालीन काव्यधारा की तरह इसमें बड़ी ही सरसता है। कला, प्रेम और भक्ति का सर्वागीण सामंजस्य हम किशनगढ शैली में पाते है। तोते की तरह सुंदर नासिका, ठोडी आगे की ओर आई हुई, अर्द्धचंद्राकार, नेत्रों का अंकन, धनुष की तरह भौंहे, गुलाबी अदा, सुरम्य सरोवरों का अंकन आदि इसकी अलौकिक विशेषताएं है। राजा नागरी दास जी के समय मे यह शैली अपने सम्पूर्ण यौवन पर थी। उनका अपनी प्रेयसी "बनी ठनी" सप्रेम तथा चित्रकला में रूचि के कारण इस शैली के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। इस काल के चित्रों के सृजन का श्रेय उनके समकालीन कलाकार निहालचन्द को है। राजा नागरीदास अपनी प्रेयसी में राधा-कृष्ण के प्रेम की छवि का दर्शन करते थे। इस शैली में तुलिका का सुनियोजित प्रयोग एवं रंगों की चटक-मटक बडी ओजपूर्ण है। इन रसमयी चित्र कृतियों के चित्रकार छोटू अमीरचंद, निहालचंद, धन्ना इत्यादि हुए है। गुलाबी एवं हल्के रंगों का प्रयोग अति मनोहारी है। राधाकृष्ण की क्रीड़ाओं पर सुन्दर चित्रों का अंकन हुआ है। बणी-ठणी एवं नायक-नायिका इन चित्रों के प्रिय विषय हैं।
- **बीकानेरी शैली:** यह शैली मारवाडी शैली से संबंधित है। इस शैली का वास्तविक स्वरूप महाराजा अनूपसिंह के समय में प्रकट हुआ। 1680 ई. से इसका सम्पूर्ण विकास प्रारंभ हुआ। इस पर मुगल शैली का प्रभाव ज्यादा है, यहां तक कि कुछ चित्र तो मुगल ही प्रतीत होते है। रंगों का प्रयोग इत्यादि मुगल चित्रों की तरह ही

हुआ है। इस समय के प्रसिद्ध कलाकारों में रामलाल, अलीरजा हसन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

- **बूंदी शैली :** राजस्थानी शैली में बूंदी शैली का भी विशिष्ट स्थान है। इसका प्रारंभ 17 वीं शती आरंभ में हुआ। इसके रंगों एवं विषयों की अपनी विशेषता है। नेत्रों के ऊपर एवं नीचे की रेखा दोनों सामानान्तर रूप में आपस में मिलती है, जो इसकी विशिष्टता है। अट्टालिकाओं के बाहर की ओर उभरे हुए गवाक्ष में से झांकता हुआ नायक भी प्राय: इसकी अपनी विशेषता है। रागमाला, बारहमासा, रसिकप्रिया एंव आखेट के दृश्य इसके प्रमुख विषय है। इसके चित्रकार रहे है -सुरजन, अहमद अली, रामलाल, श्री कृष्ण इत्यादि।
- **नाथद्वारा शैली :** इस शैली का प्रारम्भ 1671 ई. में नाथद्वारा में श्री नाथ जी के मंदिर की स्थापना के समय से ही शुरू हुआ। इस शैली में राजपूत शैली, मेवाड शैली और किशनगढ शैली का सम्मिश्रण है। श्री नाथ जी के प्रागटय आचार्यो के दैनिक जीवन और कृष्णलीला आदि इस शैली के चित्रों के सृजन के मौलिक आधार है। नाथद्वारा शैली में स्थानीय आधार के साथ राजस्थान तथा अन्य उत्तरी भागों की शैलियों का भी समुचित समावेश किया गया, जिसने नाथद्वारा शैली को जन्म दिया।
- **अलवर शैली :** अलवर शैली के चित्रों में मुगल सम्राटों और उनके अधिकारियों के चित्र, रागिनी के चित्र आदि स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित है। इस शैली के चित्र, औरंगजेब के काल से लेकर पिछले मुगलकालीन सम्राटों तथा। कम्पनी काल तक पर्याप्त मात्रा में मिलते है। इस शैली के चित्रों में राजपूती वैभव, कृष्णलीला, रामलीला, प्राकृतिक परिवेश, राग रागिनी, वन उपवन, कुंज विहार, महल आदि का चित्रांकन प्रमुख रूप से हुआ है।
- **कोटा शैली :** महाराव रामसिंह के प्रयासों से ही कोटा शैली का स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित हुआ था। इस शैली पर वल्लभ सम्प्रदाय बारी दृश्य, जुलूस, युद्ध शिकार आदि के दृश्य प्रमुख है।
- **आमेर शैली :** आमेर चित्र शैली पर मुगल शैली का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। कछवाहा राजपूतो की राजधानी आमेर को अम्बावती नगरी कहा जाता था। आमेर चित्र शैली में कृष्णलीला, लैला-मजनू ,हाथी, घोड़े, कुश्ती, दंगल आदि से संबंधित चित्र है।

मूर्तिकला :

हिन्दू धर्म में तैतीस करोड देवी देवता गिनाए गए है और प्राचीन काल से ही हिन्दुस्तान में भक्तजन संपूर्ण भक्ति भावना के साथ इन देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा करते आए है। राजस्थान के मूर्तिकारों ने देवी-देवताओं की मूर्तियों का अंकन इस खूबसूरती से किया है कि उनको देख कर अचरज होता है।

मौर्य काल से राजस्थान की मूर्तिकला व्यवस्थित रूप से विकसित हुई। ब्रजमंडल के सांस्कृतिक प्रभाव क्षेत्र में होने के कारण आरंभिक मूर्तिकला का उद्‌गम एवं विकास राज्य के भरतपुर क्षेत्र में हुआ। राजस्थान में माध्यमिका वह स्थान है जहां बौद्ध एवं वैष्णव मूर्तियों का उचित विकास तथा पोषण हुआ था।

मूर्ति बनाने का कार्य पत्थरों पर ही किया जाता है और मूर्तिकारों के औजार आज भी वही है जो तीन सौ वर्ष पूर्व थे। छैनियां और हथौड़े जो छोटे, बडे, मोटे, पतले, विभिन्न प्रकार के होते है। इन औजारों की सहायता से बडी से बड़ी आकृति की मूर्तियां और छोटे-छोटे सुन्दर खिलौने तक बनाते है। कोयले अथवा पेन्सिल से पत्थर पर कृति की रूपरेखा निर्माण के साथ ही कलाकार छैनी तथा हथौड़ी की सहायता से मूर्ति को आकार देने में लग जाता है। मूर्ति बन जाने के बाद एक विशेष प्रकार के पत्थर को उस पर रगड़ा जाता है। जिससे वह शूचिकार हो जाती है। यह कार्य अधिकतर महिलाएं करती है। इसके बाद एक दूसरे पत्थर को रगड़ने से मूर्ति के अंशों को और निखारा जाता है। उसके बाद पालिश की जाती है। जिन मूर्तियों को रंग की जरूरत होती है, उन पर रंग भी किया जाता है।

मूर्तिकला की समृद्ध परम्परा के दर्शन राजस्थान के प्राचीन मंदिरों तथा संग्रहालयों में संरक्षित मूर्तियों को देखने से स्वत: ही होता है। भरतपुर के ग्रामड़ी ग्राम के शिवलिंग में एक तरफ सुंदिल यज्ञ और दूसरी और स्थनकावस्था में उढणी शिव का अंकन हुआ है।

मालव नगर (टोंक) में शुंगकाल की खड़िया मिट्टी से बनाई हुई देवी का फलक मिला है। रंगमहल में एकमुखी शिवलिंग तथा उमा माहेश्वर की मृणमूर्तियां मिली है। राजस्थान में सरस्वती उपत्यका से अर्जकपाद की अनोखी मृणमूर्ति मिली है जिसका मुख बकरे का है शरीर मानव का तथा एक पैर हाथी का दृष्टिगोचर होता है।

दौसा जिले में बांदीकुई के पास आभानेरी स्थित हर्षमाला के मंदिर में गुप्तकालीन मूर्तियां रखी हुई है। अर्थूना 11 वीं व 12 वीं शताब्दी में बागड राज्य के परमार वंशीय नरेशों की राजधानी तथा अपने युग की मूर्तियों का प्रमुख केन्द्र रहा है।

श्री नाथ जी (नाथद्‌वारा), द्‌वारकाधीश (कांकरोली), मथुरेश जी (कोटा), गोविन्ददेवजी (जयपुर), रतन बिहारी जी एवं दाउजी (बीकानेर), मदन मोहन जी (करौली) आदि सभी मूर्तियां औरंगजेब के समय वृंदावन से राजस्थान लाई गई। राजस्थान में नृत्यगणेश की मूर्ति (अलवर) में खड़े गणेश जी कीं मूर्ति कोटा में, महिषासुर मर्दिनी की मूर्ति (ओसिंया) तथा लिंगोदभव की मूर्ति हर्षनाथ (सीकर) में स्थित है। नाथद्‌वारा के निकट मोलेला गांव की मिट्टी की मूर्तियां (मृण मूर्तियां) विश्व भर में प्रसिद्ध है।

पुराणों में वर्णित देवी देवताओं के स्वरूपों का दर्शन करवाने वाली मूर्तियों के अतिरिक्त मिथुनाकृतियां और जानवरों आदि का अंकन तथा नायिकाओं के अंग भंगिमायें बहुत प्रभावोत्पादक है। पांव से कांटा निकालती हुई नायिका, सद्‌यस्नाना के केशों से झरते हुए जल-बिन्दुओं को मोती समझकर चोंच में लेते हुए हंस और मयूर, डालियों पर बैठे हुए तोते और अन्य विहग, सवारियों के जुलूस, वादकों की टोलियां और ऐसे ही अन्य अनेक अलंकरण की मूर्तिया गुर्जर प्रतिहार काल की ही देन है। गुर्जर प्रतिहार राजस्थान में जालौर के मूल निवासी

थे और बाद में उत्तरी भारत के सम्राट बनकर तथा कन्नौज में अपनी राजधानी बनाकर राज्य करते रहे थे। इसलिए कश्मीर से लेकर द्वारका तक के समरस भू भाग में और अन्तर्वेद की बहुत बडी भूमि पर भी इस शैली का प्रचार प्रसार हुआ।

राजस्थान में संगमरमर की देव मूर्तियों का निर्माण जयपुर में बहुतायत से होता है। जो सभी देशों में लोकप्रिय है। झालावाड़ जिले के झालरापाटन में भी लाल और पीले पत्थरों की सुन्दर मूर्तियों का निर्माण होता है।-

हस्तकलाएं :

हस्तकलाओं की दृष्टिसे राजस्थान अत्यधिक समृद्ध राज्य है। राजस्थानी हस्तशिल्प के अंतर्गत मीनाकारी एवं नक्काशी की वस्तुएं, लकड़ी, चन्दन एवं मिट्टी के खिलौने, ब्ल्यू पॉटरी, रंगाई-छपाई, बुनाई एवं बंधेज, जयपुर का हाथीदांत का काम, जोधपुर एवं जालौर की कशीदाकारी जूतियां, पत्थर प्रतिमाओं, जवाहारात कटाई, चांदी के आभूषण, लाख का कार्य, ऊंट की खाल से बनी वस्तुएं, नाथद्वारा की फड़ पेंटिंग, खस के बने पानदान, डिब्बियां एवं पंखियां, थेवा कला आदि भारत ही नहीं विदेशों तक में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। हस्तकलाओं से समृद्ध राजस्थान की कुछ प्रमुख हस्तकलाएं इस प्रकार से हैं-

- **रंगाई-छपाई, बुनाई एवं बंधेज :** राज्य के जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, बाड़मेर तथा उदयपुर में हाथ से की जाने वाली रंगाई छपाई का कार्य देश-विदेशों मे अत्यधिक लोकप्रिय हैं। इन स्थानों पर रंगाई-छपाई लकड़ी के ठप्पों से की जाती है। छपाई में प्रयुक्त होने वाले रंग सीमित होते हैं। परम्परागत तरीकों से काले रंग को लोहे के जंग और गुड़ को सड़ा कर बनाया जाता है तो लाल रंग गेरू, फिटकरी, तिल्ली के तेल तथा गोंद से बनाया जाता है। काला रंग रेखाओं के लिए और लाल रंग अलंकरण के बीच में खाली स्थान भरने के लिए काम में लिया जाता है। पर्दे, चादरें, ओढनियां, रूमाल, साफे आदि सभी में इस प्रकार की विधि से रगाई-छपाई की जाती है। बीकानेर के लहरिये व मोठड़े भी विश्व प्रसिद्ध है तो किशनगढ, चित्तौड़ व कोटा में किया जाने वाला रूपहली व सुनहरी छपाई का काम देश-विदेश में अपनी अलग पहचान रखता है। इसी प्रकार उत्कृष्ट कपड़े में सूत और सिल्क के ताने-बाने का कैथून, मागरोल का मसूरिया, तनसुख, मथानिया अंगरखा, पगड़ी, पेचा, घाघरा, ओढनी एवं कुर्ती-काचली आदि अत्यन्त लोकप्रिय हैं। जयपुर, जोधपुर, सीकर और झुंझुनू में किये जाने वाले बंधेज के कार्य की दूर देशों तक में विशेष पहचान हैं। बंधेज में महिलाएं डिजायन के अनुसार धागे से वस्त्रों पर घुंडिया बांधती है। इसके बाद कपड़े को अलग-अलग रंगों में डूबोकर रंग लिया जाता है और सूखने के बाद में कपड़े को खींचकर घुंडियां हटा दी जाती है और फिर इस्त्री कर दी जाती है। जयपुर में इसके लिए बगरू व सांगानेर क्षेत्र विशेष प्रसिद्ध है।
- **कशीदाकारी:** कशीदेकारी का कार्य राज्य में अत्यधिक कलात्मक होता है। राजस्थानी कशीदाकारी व छपाई कला के प्रतीक के रूप में कैरी, कमल, मोर, हाथी और ऊंट की डिजायन विशेष रूप से विख्यात है। कढाई के इस कार्य में कांच, मोती व

घात्विक कणों का प्रयोग करते हुए उसे आकर्षक बनाया जाता है। कोटा की मसूरिया मलमल व कोटा डोरिया की साड़ी तो विश्व भर में प्रसिद्ध है।

- **ऊनी कंबल एवं कालीन :** राजस्थान में बीकानेर व मालपुरा क्षेत्र ऊन उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र है। मालपुरा में बने ऊनी चमका या घूघी जिसमें पानी प्रवेश नहीं कर पाता व बीकानेर की ऊनी सर्ज विश्व प्रसिद्ध है। जयपुर, जोधपुर व टोडागढ (अजमेर) में भी कम्बल बनाने का केन्द्र है। जयपुर, अजमेर व बीकानेर क्षेत्रों में दरी व गलीचे भी बनाये जाते है। बीकानेर जेल में निर्मित गलीचे की पहचान तो सुदूर देशों तक में हैं।
- **संगमरमर की मूर्तियाँ :** राजस्थान में मकराना में संगमरमर की खानें है तथा जयपुर व इसके आस-पास के क्षेत्रों में मूर्तियों का निर्माण किया जाता है। मूर्तियों के साथ-साथ कलात्मक निर्माण की वस्तुएं, घरेलू उपयोग की चीजें, खिलौने, फव्वारे आदि विश्व भर में प्रसिद्ध है।
- **लाख का काम :** जयपुर व जोधपुर लाख के कार्य के लिए विश्व विख्यात है। लाख की चूड़ियों व कड़े, पाटले, खिलौने, मूर्तियॉ, हिण्डोले ,लाख का लेपन कर बनायी गए वस्तुएँ आदि की प्रसिद्धि पूरे विश्व भर में फैली हुयी है। लाख की चूड़ियों पर कॉच व मोतियों आदि तरह-तरह के डिजायन बनाये और सजाये जाते है।
- **लकड़ी पर खुदाई का कार्य :** राजस्थान के कुछ भागों में लकड़ी पर नक्काशी का कार्य बहुत सुन्दर ढंग से किया जाता है। उदयपुर व सवाईमाधोपुर लकडी के खिलौने व कलात्मक वस्तुएं तथा बीकानेर व शेखावटी लकडी के नक्काशीदार सजावटी दरवाजों के लिए प्रसिद्ध स्थान है।
- **हाथी दाँत का काम :** भरतपुर, जयपुर व उदयपुर में हाथी दाँत पर कुराई व कटाई करके कलात्मक वस्तुओं, खिलौनों, शतरंज के मोहरे, कंघे, मूर्तियाँ आदि बनाने का कार्य होता है। उदयपुर व पाली हाथी दांत की चूड़ियों के लिए विश्व प्रसिद्ध है।
- **ब्लयू पॉटरी :** मिट्टी व चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने का कार्य राजस्थान में प्राचीन काल से होता आया है। चीनी मिट्टी के बर्तनों पर रंगीन और आकर्षकचित्रकारी ब्लयू पॉटरी से जानी जाती है। जयपुर की ब्लयू पॉटरी देश-विदेश में अत्यधिक लोकप्रिय है। अलवर में 'कागजी' नामक बहुत पतलेदार बर्तन बनते है। जयपुर में चीनी मिट्टी के सफेद व नीले रंग के तथा फूल-पत्तियों के डिजायनर बर्तन व कलात्मक खिलौने बनाये जाते है। बीकानेर में सुनहरी पेंटिंग वाले चीनी मिट्टी के कलात्मक व सजावटी बर्तन व अन्य वस्तुएँ बनाई जाती है।
- **मीनाकारी :** मीनाकारी का कार्य विभिन्न प्रकार के रत्नों तथा सोने व चांदी के आभूषणों पर किया जाता है। फूल, पत्ती, मोर, शुंगी आदि का अंकन प्राय: मीनाकारी के तहत किया जाता है। जयपुर में सोने के आभूषणों और खिलौनोंपर बडी सुंदर मीनाकारी की जाती है। सोने के आभूषणों के अतिरिक्त चांदी के खिलौनों व आभूषणों पर भी मीनाकारी की जाती है। नाथद्वारा तो मीनाकारी का प्रसिद्ध

केन्द्र है। मीनाकारी दो प्रकार की होती है - एक पक्की और दूसरी कच्ची। प्रथम मीनाकारी भट्टी में पकाई जाती है व कच्ची मीनाकारी जयपुर में पीतल के बर्तनों व खिलौनों आदि पर की जाती है। प्रतापगढ (चित्तौड़गढ) की प्रसिद्ध "थेवा कला" भी मीनाकारी का ही एक रूप है। इसमें शीशे पर सोना मढकर कलाकृतियाँ बनायी जाती है। इसी प्रकार बीकानेर में ऊंट की खाल से बनी विविध वस्तुओं को सोने की बारीक नक्काशी और तारबंदी करके आकर्षकस्वरूप प्रदान किया जाता है।

2.4.2 संगीत, लोकनृत्य एवं लोक वाद्य:

राजस्थान का कण-कण संगीत, नृत्य एवं लोक वाद्यों की झंकार लिए हैं। उत्सवधर्मिता के प्रदेश राजस्थान की विषम भौगोलिक परिस्थितियां के बावजूद संगीत, नृत्यएवं लोकवाद्यों की समृद्ध परम्परा यहां आरंभ से ही रही है। रेत के धोरों हें कहीं अलगोजे, मोरचंग ,नगाडे, ,मंजिरो तानपुरे की तान बरबस ही कानों में रस घोलती है तो घुमर, कालबेलिया, तेराताली ,भवई जैसे लोक नृत्यों से मन मयूर नाचने लगता है। रेत राग सुनाता राजस्थान अपनी इन समृद्ध सांस्कृतिक परस्पराओं से आरंभ से ही देश-विदेश के पर्यटकों को लुभाता आ रहा है। आईए जानें, राजस्थान की संगीत, नृत्यएवं वाद्य की समृद्ध परम्परा को -

शास्त्रीय एवं लोक संगीत :

संगीत राजस्थान के कण-कण में रचा-बसा है। आज से ही नहीं वर्षो पहले से राजस्थान में संगीत की समृद्ध परम्परा रही है। चीनी यात्री हूवेनसांग ने भी राजस्थान की संगीत समृद्धि के बारे में अपने यात्रा अनुभवों में जिक्र किया है तो इतिहास गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने यहां तक उल्लेख किया है कि 12 वीं - 13 वीं शतीमें भारत आए विदेशी आक्रामक लूट के साथ बड़ी संख्या में राजस्थान के गायक, वाद्य कलाकारों को ले गए थे। प्राचीनकाल से ही राजस्थान में संगीत की समृद्ध परम्परा के साक्षी वे शिलालेख, महाकाल, शिल्प एवं मूर्तियॉ भी है जिनमें यहां के स्थानीय वाद्य यंत्रों, कलाकारों का उल्लेख एवं अंकन है। ओसियां एवं सीकर की दसवीं-ग्यारहवीं शतीके मंदिरों में संगीत वाद्यनृत्यकी भाव भंगिमाओं की मूर्तियां जहां राजस्थान की सांगीतिक परम्परा के गौरवमयी इतिहास की पुष्टि करती है वहीं राजदरबारों, मंदिरों में होती संगीत साधना की परिणति भी बाद में उच्च कोटि के संगीत घरानों की समृद्ध होती संगीत परम्परा के रूप में लोगों को मिली।

युद्ध भूमि के लिए प्रयाण का समय हो या फिर जीवन के किसी पल का उत्सव, आनंद, मनोरंजन का समय और तो और मृत्यु तक में संगीत राजस्थान की परम्परा का हिस्सा रहा है। शास्त्रीय संगीत की तरह लोकगीतों की रागिनियों वाला भी राजस्थान एकमात्र देश का प्रदेश है। राजा-महाराजाओं ने संगीतज्ञों, कलाकारों को अपने यहां प्रश्रय ही नहीं दिया बल्कि निरंतर सम्मान देकर उन्हें प्रोत्साहित किया। संगीत को राज्याश्रय देने वाली रियासतों में जयपुर, टोंक, भरतपुर, बीकानेर, जोधपुर, अलवर, मेवाड आदि ने बडे-बडे कलाकारों को पैदा किया। रस मंजरी', ' राग-माला ' , ' हस्तकार-रत्नावली ' , 'राधा-गोविंद संगीतसार ' जैसे उच्च कोटि के संगीत ग्रंथों की रचना में राजस्थान के कलाकारों का ही योगदान रहा।

राजस्थान के शासक स्वयं सगीतविद् रहे है। उदयपुर के महाराणा कुम्भा स्वयं संगीतकार थे। उनके रचित 'संगीत राज और संगीत मीमांसा' ग्रंथ अत्यधिक चर्चित रहे है। बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह के राज कवि मानव भट्ट ने 'अनूप संगीत विलास' और 'अनूप रसाकर ग्रंथ लिखकर संगीत के विभिन्न पक्षों पर गहराई से प्रकाश डाला। विश्व प्रसिद्ध संगीतज्ञ स्वामी हरिराम डागर की ध्रुपद शैली आज राजस्थान के कलाकारों की साधना से ही बची हुई है तो ख्याल गायकी के क्षेत्र में भी सुप्रसिद्ध कलाकार गुलाम करामत खां, कल्लन खां राजस्थान के ही थे। उस्ताद अली अकबर खां, विलायत खां जैसे प्रसिद्ध वाद्य वादक जोधपुर महाराजा के आश्रित रहे तो बीकानेर महाराजा के आश्रय में मांड गायिका अल्लाह जिलाई बाई ने दूर देशों में राजस्थान के संगीत का परचम लहराया। हिंदुस्तानी शैली के उन्नायक सुप्रसिद्ध संगीताचार्य भातखंडे ने संगीत शिक्षा जयपुर में ही प्राप्त की थी। आज भी मेवाती गायकी के देश के प्रसिद्ध कलाकार पं. जसराज, डागर बंधु, मोहन वीणा में ग्रेमी अवार्ड विजेता पं. विश्व मोहन भट्ट, कत्थक क्षेत्र के पं. दुर्गालाल राजस्थान के संगीत गौरव के रूप में देश-विदेश में अपनी कला से जाने जाते है।

लोक संगीत का मूल आधार लोकगीत है। राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा कि जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र या प्रसंग नहीं है जिससे संबंधित लोकगीत यहां उपलब्ध नहीं हो। कोई भी कर्म ऐसा नहीं है जिसका अभिव्यंजन लोक नाट्यों व गाथाओं में न हुआ हो। लोकगीत के भावों को लोक वाद्यों, लोक नृत्यों के जरिये पुष्ट किया जाता है। राजस्थान का लोकसंगीत यहां के निवासियों को रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, वेशभूषा, आस्था, पर्व-उत्सव आदि सभी कुछ में अभिव्यंजित होकर यहां की संस्कृति को साकार करते है। स्वर-ताल और लय में बद्ध लोक संगीत जीवन के विविध मनोभावों यथा विरह, हास्य, वीरता आदि को सहज ही व्यक्त कराने वाले है।

राजस्थान के लोक संगीत के अंतर्गत जन साधारण द्वारा अवसर-विशेष पर गाये जाने वाले गीतों की विशिष्ट परम्परा है तो सामंतशाही के प्रभाव से विचलित हुए व्यावसायिक जातियों द्वारा गाये जाने वाले गीत-सामंत आदि की प्रशस्ति के गीत लोकगीत, लोकगाथाओं के रूप में बाद में संगीत के महत्वपूर्ण अंग बने। राजस्थान के लोकगीतों को निम्न श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है -

- संस्कार संबंधी गीत
- पर्व-उत्सव के गीत
- देवी-देवताओं के गीत
- ऋतु और मौसम के गीत
- विवाह गीत

लोक संगीत में मांड, सौरठ, देश आदि रागों का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। तालों में दादरा, कहरवा, रूपक अधिक प्रयुक्त हुई है। यहां के हरजसों (भजनों) में धमाल, मल्हार, प्रभाती आदि अनेक रागे प्राय: मिल जाती है। ख्यालों की लावणी भी एक प्रकार से लोकसंगीत का ही अंग है। एक ही लोकगीत में शास्त्रीय संगीत की विविध रागों का मिश्रण भी देखा गया है।

लोकनृत्य:

भौगोलिक विविधता वाले प्रदेश के राजस्थान के लोकनृत्यों में भी वैविध्यता है। अलग-अलग क्षेत्रों की परम्पराओं, मान्यताओं और संस्कृति से जुड़े इन नृत्यों में मानों जीवन थिरकता है। मन के उल्लास, जीवन के उत्साह से जुड़े राजस्थान के कुछ प्रमुख लोक नृत्य इस प्रकार से है-

- **घूमर:** घूमर नृत्य, नृत्यों का सिरमौर माना जाता है। मलमल के झीने तारों का लम्बा घूंघट डाले, पल्लू के लहंगे की तह में भली प्रकार ढाबे, कंचुकी के बन्धों को कसकर, पायल की ठुमक और झनक के साथ, नीचे झुक-झुक कर अंगों को लचकाती हुई और दोनों हाथों से आल्हाद की मुद्रा को चुटकियों से व्यक्त करती हुई स्त्रियां यह नृत्य करती है। गणगौर एवं नवरात्रि पर्व पर यह विशेष रूप से होता है।
- **गैर :** होली के दिनों में मेवाड़ और बाड़मेर में गैर नृत्य विशेष रूप से किया जाता है। गोल घेरे में होने के कारण ही इसे पहले घेर और कालान्तर में गैर कहा जाने लगा। गैर की यह खास बात है कि इसमें पद संचालन तलवार युद्ध और पटेबाजी जैसी लगती है। वृताकार में इस नृत्य में अलग-अलग मंडल बनाये जाते है।
- **गींदड़ :** शेखावटी का सर्वाधिक लोकप्रिय नृत्य गींदड़ मुख्यत: सुजानगढ़, लक्ष्मणगढ़, चुरू, सीकर और आसपास के क्षेत्र में किया जाता है। नगाड़ा इस नृत्य का मुख्य वाद्य यंत्र होता है। नगाड़े की ताल के साथ हाथ में लिए डंडों को परस्पर टकराकर नर्तक नाचते है। नगाड़े की तान के साथ नृत्य में तेजी आती है। नृत्य में विभिन्न प्रकार के स्वांग भी निकालते जाते है। सामूहिक रूप से किये जाने वाले इस नृत्य में अनेक बार चंग के साथ नर्तक को कंधों पर उठा लिया जाता है।
- **डांडिया :** यह जोधपुर, बीकानेर और शेखावटी क्षेत्र में विशेष रूप से किया जाता है। यह पुरूषों का नृत्य है जो फागुन की शीतल रातों में किया जाता है। यों तो गींदड़, गैर आदि नृत्य की ही तरह डांडिया होता है परन्तु पद संचालन, भाव-भंगिमा, ताल, गीत और वेशभूषा आदि में तीनों ही अलग है। इस नृत्य में पुरूषों की टोली हाथ में लम्बी छड़ी लेकर नाचती है। शहनाई और नगाड़े का प्रयोग किया जाता है। युवक हाथों में डंडे भिड़ाते हुये घूमते है। पुरूषों की पौशाक में विशेष तौर पर बागा तथा पगड़ी होती है। कई पुरूष स्त्रियों का वेश बनाकर घूंघट काढते हुए नृत्य करते है।
- **तेरातली :** यह एक भक्ति नृत्य है। इस नृत्य को करने वाले कामड़ जाति के नर्तक जो रामदेव जी के भक्त होते है व उदयपुर तथा पाली जिले में निवास करते है। इस नृत्य को महिलाएं मांगलिक अवसरों पर करतीं है। इसमें जीवन के विभिन्न पहलुओं को तेरह ताल में मजीरे बजाकर भावाभिव्यक्ति द्वारा प्रस्तुत कियाजाता है।

- **अग्नि नृत्य :** धधकते अंगारों पर किया जाने वाला अग्नि नृत्य जसनाथी संप्रदाय के लोगों द्वारा किया जाता है। इसमें नर्तक अंगारों के ढेर पर नाचते हुए निकलते है। नर्तक कभी-कभी अंगारों को हाथ में उठाते है, मुंह में डालते है और कभी-कभी उनसे कई प्रकार के करतब भी दिखाने लगते है। इधर के वर्षो में बीकानेर में आयोजित होने वाले कैमल फेस्टीवल के दौरान पास के गांव कतरियासर में इस प्रकार के नृत्य का विशेष रूप से आयोजन पर्यटकों के लिये किया जाता है।
- **भवई :** इस नृत्य में कलाकार अपने सिर पर दो या अधिक घड़े रखकर नंगी तलवारों और कांच के टुकडों पर नृत्य कर अपना करतब दिखाते है। बाडमेर के लोक कलाकार इस नृत्य के लिये देश ही नहीं अपितु विदेशों में भी प्रसिद्ध है। भवई में विभिन्न शारीरिक करतब दिखाने पर जोर दिया जाता है। अनूठी नृत्य अदायगी तथा लयकारी की विविधता इस नृत्य की खास विशेषता है। नर्तक तेज लय में सिर पर सात-आठ मटके रखकर नृत्य करता है। बीच में जमीन से रूमाल उठाने, आंख से अंगूठी उठाने के अलावा थाली की कोर, तलवारों की धार, नुकिली कीलों, कांच के टुकड़ों, गिलास आदि पर भी नृत्य करता है।
- **चकरी :** हाड़ौती अंचल के इस नृत्य में कंजर और बेडिया जाति की कुवारी लडकियां चंग की ताल पर तेज रफ्तार से चक्राकार नृत्य करती है।
- **बमरसिया :** अलवर और भरतपुर क्षेत्र के इस लोकप्रिय नृत्य में. एक बडे नगाड़े का प्रयोग किया जाता है। इसे दो आदमी डंडों की सहायता से बजाते है और नर्तक रंग-बिरंगे फूंदो तथा पंखों से बंधी लकड़ी को हाथों में लिए उसे हवा से उछालते हुए नाचते है। नगाड़े के अलावा थाली, चिमटा, मंजीरा, खड़ताल आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग भी नृत्य में किया जाता है। बम यानी नगाड़े के साथ रसिया गाने से इस नृत्य का नाम बमरसिया हो गया।

राजस्थान के अन्य नृत्यों में मेहंदी नृत्य, पणिहारी का नाच, भैरूजी के भोपे का नृत्य, नाथपंथ कालबेलियों का पूंगी नृत्य, थोरियों का फड़ नृत्य, कच्छी घोड़ी का नृत्य, मिरासी, चित्तौड़ का तुर्रा-कलंगी नृत्य विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

लोक वाद्य:

संगीत में वाद्य यंत्रों का महत्व सर्वविदित है। जिस प्रकार राजस्थान के लोक संगीत, लोकनृत्य में विविधता है उसी प्रकार यहां के लोक वाद्यों में भी वैविध्य है। यहां के लोक वाद्यों को मुख्यतया तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है। पहले प्रकार के तार वाद्य, दूसरे फूंक वाद्य और तीसरे खाल से मंढे वाद्य। भपंग, इकतारा, मंढे तंदूरा, सारगी, जंतर और रावण हत्था जहां तार वाद्यों की श्रेणी मे आते है वहीं अलगोजा, पूंगी, शहनाई, मशक, बांकिया, भूंगल, मशक आदि फूंक वाद्यों की श्रेणी में आते हैं। नौबत, नगाड़ा, ताशा, ढोल, ढोलक, चंग, मृदंग, मांदल, धौंसा, डैरूं, खजरी आदि खास से मंढे वाद्य यंत्रो की श्रेणी के हैं। कुछ प्रमुख लोक वाद्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से है -

- **तंदूरा:** तानपूरे के जैसे तार तारों का होने के कारण इसे चौतारा भी कहा जाता है। लकड़ी के बने इस वाद्य यंत्र को वादक बायं हाथ में पकड़कर दाहिने हाथ की पहली उंगली में मिजराब पहन कर बजाते है। इसकी आकृति सितार या तानपुरे से मिलती है किन्तु इसकी कुण्डी तुम्बे की बजाय लकड़ी की बनी होती है। संगति के लिये करताल, मंजीरा, चिमटा आदि वाद्य यंत्र काम में लिये जाते है। बहुआ इसे कामड़ जाति के लोग और निर्गुण भजन गाने वाले नाथपंथ बजाते है।
- **भपंग:** कटे हुए तुंबे से बने इस यंत्र के एक सिरे पर चमड़ा मंढा होता है। वाद्य यंत्र की लम्बाई डेढ बालिश्त और चौडाई दस अंगूल होती है। चमड़े की खाल के बीच से तार निकालते हुए एक खुटी से बांध दिया जाता है। खूटी को तानते व ढिला करते हुए लकड़ी के टुकड़े से प्रहार कर इससे विभिन्न ध्वनियां निकाली जाती है।
- **जंतर :** जंतर को वीणा का प्रारंभिक रूप कहा जाता है। इसकी आकृति भी वीणा से खासी मिलती है। वादक इसको गले में डालकर खड़े-खड़े ही बजाते है। वीणा की तरह इसमें दो तुम्बे होते है। इसकी डांड बांस की बनी होती है जिस पर एक विशेष पशु की खाल के बने 22 पर्दे मोम से चिपकाए जाते है। मुख्यत: इस वाद्य यंत्र का उपयोग बगड़ावतों की कथा कहने वाले भोपे करते है जो पर्दे पर चित्रित कथा के सम्मुख खड़े होकर जंतर की संगत करते हुये गाकर कहानी कहते है।
- **सारंगी :** लोक संगीत में गायक सारंगी बजाते हुए गीत गाते है। शास्त्रीय सारंगी से लोक वाद्य सारंगी का आकार थोड़ा छोटा होता है। मिरासी, लंगे, जोगी, मांगणियार आदि इस वाद्य यंत्र का उपयोग अधिक करते है। सागवान, कैर, रोहिड़ा आदि की लकड़ी से बनाई जाने वाली सारंगी में कुल 27 तार होते है। राजस्थान में सारंगी दो प्रकार की उपयोग में लाई जाती है। पहली सिन्धी सारंगी तथा दूसरी गुजरातण सारंगी। सिन्धी सारंगी में तारों की संख्या अधिक होती है तथा यह सारंगी का उन्नत एवं विकसित रूप है। जैसलमेर के लंगा जाति के लोक गायक, गड़रियों के भाट सारंगी वादन में निपुण होते है।
- **इकतारा:** छोटे से गोल तुम्बे में बांस की डंडी फंसाकर इकतारा बनाया जाता है। तूंबे का ऊपरी हिस्सा काटकर उस पर चमड़ा चढ़ा दिया जाता है। बांस में छेद कर उसमें खूंटी लगाकर उसमें एक तार कस दिया जाता है। इस तार को अंगूली से बजाया जाता है। इसे अधिकतर कालबेलिया, नाथ, साधु-सन्यासी आदि बजाते है।
- **रावण हत्था:** भोपों का प्रमुख लोक वाद्य रावण हत्था राजस्थान का सर्वाधिक प्रचलित वाद्य यंत्र है। बनावट में अत्यधिक सरल इस वाद्य को बड़े नारियल की कटोरी पर खाल मढ़कर बनाया जाता है। इसकी डांड बांस की बनी होती है जिसमें खूटियां लगा दी जाती है जिसमें एक सिरे पर कुछ घुंघरू भी बंधे होते है जो उसके संचालन के समय ध्वनि उत्पन्न कर ताल का कार्य भी करते है। मुख्य रूप से

भोपे, भील आदि इस वाद्य का उपयोग करते है और इसके साथ पाबूजी, डूंगरजी, डूंगरजी-ज्वारजी आदि की कथाएं गाई जाती है।

- **कामायचा :** सारंगी के समान बने इस वाद्य के मुख्य तार तांत के बने होते है। इसकी तरबों का प्रयोग गज संचालन के साथ किया जता है इसलिये वे घुड़च के ठीक ऊपर से निकाली जाती है। इससे वाद्य की ध्वनि अत्यन्त प्रखर हो जाती है। इस वाद्य का प्रयोग राजस्थान के मांगणियार अधिक करते है।
- **अलगोजा :** विशेष प्रकार की बांस की नली से बने इस वाद्य के कई रूप है। कुछ में तीन छेद होते है तो कुछ में पांच। नली के ऊपरी मुख को छीलकर उस पर लकड़ी का एक गट्टा चिपका दिया जाता है जिससे आसानी से आवाज निकलती है। प्राय: दो अबगोजे एक साथ मुंह में रखकर बजाए जाते है। एक अलगोजे पर स्वर कायम किया जाता है तथा दूसरे पर स्वर बजाए जाते है।
- **पूंगी :** विशेष प्रकार के तुंबे से बने इस वाद्य का ऊपरी हिस्सा पतला और लंबा होता है तथा नीचे का हिस्सा गोल होता है। तुंबे के नीचे के गोल हिस्से में छेदकर दो नालियां लगाई जाती है। इनमें स्वरों के छेद होते है। कहते इस वाद्य से सांप को मोहित करने की अद्भुत क्षमता होती है। कालबेलियों का यह प्रमुख वाद्य है।
- **मशक:** चमड़े की मशक से बने होने के कारण ही इसे मशक कहा जाता है। इसमें एक ओर से मुंह से हवा भरी जाती है तथा नीचे की ओर लगी हुई नली के छेदों से स्वर निकाले जाते है। पूगी की तरह स्वर निकालने वाले इस वाद्य को भैरूजी के भोपे अधिकांशत: प्रयोग करते है।
- **शहनाई :** शीशम, सागवान या टाली की लकडी से बनाए जाने वाले इस मांगलिक वाद्य का आकार चिलम के समान होता है और इसमें आठ छेद होते है। इसके ऊपरी हिस्से पर ताड़ के पत्ते की तूंती बनाकर लगाई जाती है। फूंक देने पर इससे स्वर निकलते है। विवाहोत्सव, लोक लाट्य , ख्याल आदि में इसका वाद्य यंत्र का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है।
- **मोरचंग :** लोहे का बना छोटा सा वाद्य मोरचंग होंठों के बीच में रखकर बजाया जाता है। एक गोलाकार हैण्डिल से दो छोटी और लम्बी छडें निकली होती है जिनके बीच में पतले लोहे की एक लम्बी रीड रहती है जिसके मुंह पर थोडा सा घुमाव दे दिया जाता है। होंठों में दबाने के बाद मोरचंग में श्वास-प्रश्वास से रीड में कपंन पैदा किया जाता है और इस तरंगित रीड के मुडे हुए हिस्से पर अंगुली से आघात करके स्वर व लयपूर्ण ध्वनि बडी कलात्मकता से निकाली जाती है। लोक कलाकारों द्वारा मोरचंग की स्वर लहरियां जब निकाली जाती है तो सुनकर मन मंत्र-मुग्ध हो उठता है।
- **नौबत :** मंदिरों में प्रयुक्त होने वाले इस प्रमुख ताल वाद्य की कुंडी सर्व धातु से निर्मित लगभग चार फीट ऊंची होती है जिसे खाल से मंढा जाता है। खाल के भीतर राल, हल्दी, तेल पकाकर लगाया जाता है जिससे इसकी ध्वनि में गांभीर्य बढ़ जाता है। बबूल या शीशम के डंका का आघात करके इसे बजाया जाता है।

- **नगाड़ा :** शहनाई के साथ बजाए जाने वाले नगाड़े दो प्रकार के अर्थात् छोटे और बडे होते है। छोटे नगाड़े के साथ एक नगाड़ी भी होती है। बडा नगाड़ा नौबत की तरह होता है। इसे बम या टामक भी कहा जाता है। युद्ध के समय रणभेरी के रूप में नगाड़ों को ही बजाया जाता था। लोक नाट्यों, रम्मत, ख्याल में नगाडों का प्रयोग होता है।
- **ढोल :** लोहे अथवा लकडी के गोल घेरे पर दोनों तरफ से चमड़ा मंढ कर ढोल बनाया जाता है। सूत या सन की रस्सियों को कड़ियों के सहारे खींच कर इसे कसा जाता है। पर्व, उत्सव, सरकार आदि अवसरों पर इसे बजाया जाता है। ढोल कई प्रकार के होते है यथा एहड़े का ढोल, गैर का ढोल, नाच का ढोल, बारात का ढोल, आरती का ढोल आदि। इसे कभी गले में डालकर, कभी जमीन पर रखकर एक ओर डंडे से तो कभी दोनों ओर डंडियों से बजाया जाता है। ढोली, सरगरे, भील, भांभी आदि इसे कुशलता से बजाते है।
- **ढोलक:** ढोल की तरह छोटे आकार की होती है ढोलक। इसके भी दोनों तरफ चमड़ा लगा होता है, जिन्हें रस्सियों से कसा जाता है। यह दोनों हाथों से बजाई जाती है। राजस्थान में नट लोग इसे एक ओर डंडे से तथा दूसरी ओर हाथ से बजाते है। ढोलक के भी विभिन्न आकार-प्रकार प्रचलन में है। सांसी, कंजर, ढाढी, मीरासी, कव्वाल, वैरागी, साधु आदि इसे बजाते है।
- **मादल:** मिट्टी से बनाये जाने वाले इस वाद्य का एक मुंह छोटा तथा दूसरा बड़ा होता है। इस पर मढी हुई खाल पर जौ का आटा चिपकाकर बजाया जाता है। इसके साथ थाली भी बजाई जाती है।
- **चंग:** राजस्थान का अत्यधिक लोकप्रिय चंग, होली के अवसर पर लगभग सभी स्थानों पर बजाया जाता है। लकड़ी के गोल घेरे से बने इसके एक तरफ खाल मंढ़ी जाती है। ढप से भी पहचाने जाने वाले इस वाद्य को कहीं कहीं मोर के पंखों की बनी चीप की सहायता से भी बजाया जाता है।
- **खंजरी :** चंग या ढप के लघु आकार में बने इस वाद्य को दाहिने हाथ में पकड़कर बांये हाथ से बजाया जाता है। कामड़, बलाई, भील, कालबेलिया आदि इसे जाते है।
- **डैरूं:** डमरू का बड़ा रूप डैरूं आम की लकडी से बना होता है और इसके दोनों ओर बारीक चमड़ा मंढा होता है। यह रस्सियों से कसा होता है। एक हाथ से इसको पकडकर डोरियों पर दबाव डालकर कसा और ढीला छोड़ा जाता है तथा दूसरे हाथ से लकडी की पतली डंडी के आघात से इसे बजाया जाता है।
- **मंजीरा :** पीतल और कांसे की मिश्रित धातु का गोलाकार रूप में बना मंजीरा तंदुरे, इकतारे आदि के साथ बजाया जाता है। दो मंजिरों को आपस में घर्षित करे ध्वनि उत्पन्न की जाती है। डूंगरपुर क्षेत्र में इसे बजाने की विशेष पद्धति तेरहताली कही जाती है। इसमें वादक सिर से पांव तक विभिन्न अंगों पर मंजीरे बांध लेते है और

भजन गाते हुए दोनों हाथों से मंजीरों पर आघात करके ध्वनि निकालते है। मंजीरे के विशाल रूप को झांझ कहा जाता है।

- **खड़ताल :** कहते है खड़ताल 'कर-ताल' से बना है। इस वाद्य में लकड़ी के दो टुकड़ों के बीच में पीतल की छोटी-छोटी गोल तश्तरियां लगी रहती है। लकड़ी के टुकड़ों को परस्पर टकराकर इसमें मधुर झंकार उत्पन्न की जाती है।

2.4.3 लोकनाट्य, लोकानुरंजन एवं लोक साहित्य:

लोकनाट्य, लोक साहित्य को आंचलिक धरोहर कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अंचल विशेष की संस्कृति, प्रथा, परम्परा और जीवनधर्मिता को साकार करते लोकनाट्य एवं लोक साहित्य के विविध रूप परम्पराओं से पोषित-पल्लवित होते हुये भी नित नवीन बने रहते है और सदैव प्रासंगिक भी। राजस्थान के लोकनाट्य, लोकानुरंजन एवं लोकसाहित्य की विविधता की छोटी सी बानगी -

लोक नाट्य :

लोक जीवन में विभिन्न रूप, खेल, ख्याल, सांग, स्वांग, संगीत, दंगल, तमाशा, लीला आदि नाम से पहचाने जाने वाले लोकनाट्य किसी भी खुले मैदान, चौक आदि में तख्तों पर खेले जाते हैं। लोकनाट्यों में दर्शकों ओर अभिनेता के बीच दूरियां प्राय: नहीं होती है। गीतों एवंनृत्यकी प्रधानता लिए लोकनाट्यों में प्रतीकात्मक साज-सज्जा से ही पात्रों की पहचान हो जाती है। कलंगी लगाए राजा, लाठी लिए सिपाही पात्रों के प्रवेश के समय शोर भी खुद होता है। इधर के वर्षों में ऐतिहासिक, पौराणिक, लोककथाओं के साध्य वर्तमान राजनैतिक, शासन व्यवस्था को भी लोक कलाकारों द्वारा लोकनाट्यों में व्यक्त किया जाने लगा है। अंचल विशेष की संस्कृति से जुड़े लोक नाट्यों में पुरूष ही मुक्ताकाश मंच मांडते है, स्त्रियों की भागीदारी नहीं होती। पुरूष ही स्त्री की वेशभूषा, आभूषण पहनकर अभिनय करते है। सभी नाट्य कथानक प्रधान होते है जिनमें ढोला मारू, हीर-रांझा, गोपीचंद, सुल्तान-निहालदे, अमर सिंह राठौड़ आदि प्रमुख है। इसी प्रकार भरतपुर की नौटंकियां और बीकानेर की रम्मतें प्रसिद्ध है।

लोकानुरंजन :

लोकानुरंजन में सामान्यता गीत, नृत्य, नाटक आदि को ही सम्मलित किया जाता है परन्तु राजस्थान में ऐसी बहुत सी पेशेवर जातियां है जो अपने करतबों से लोगों का अर्से से मनोरंजन करती आ रही हैं। मीणा, भीलों द्वारा मेजा गाड़कर किया जाने वाला स्त्रियों ओर पुरुषों का सम्मिलत होली का खेल हो या फिर नट-नटनियों द्वारा बांस गाड़कर उनमें रस्सी पर चलने का खेल आदि आरंभ से ही लोगों का मनोरंजन करते आ रहे हैं। बांस के सहारे कलाबाजी दिखाना, शरीर को उछालकर ढोल और गायन की ध्वनिल के साथ लोचशीलता का प्रदर्शन आदि लोकानुरंजन में ही आते हैं। बीन की धुन पर सांप कानृत्यकराकर लोगों का मनोरंजन करने, सांग बनकर घर-घर जाकर लोगों को अपनी भाव-भंगिमाओं से आकर्षित कर उनका मनोरंजन करने, कठपुतलियों के जरिए इतिहास को जीवित करने या फिर किसी प्रसंग आदि के जरिए कथानक कहने की समृद्ध परम्पराएं राजस्थान में आरंभ से ही रही है। यद्यपि बदलते समय के

साथ लोगों के मनोरंजन की इन क्रियाओं में निरंतर बदलाव आ रहा है ओर अब ये प्राय: लुप्त हों रही है तथापि ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी लोकानुरंजन के रूप में ये प्रचलन में हैं। लोक कलाओं की थाती लिए पेशेवर जातियों की कलाओं को संरक्षण दिया जाए तो पर्यटन की ये बेशकीमती धरोहर बन सकती है।

लोक साहित्य

लोक साहित्य की दृष्टिसे राजस्थान अत्यधिक समृद्ध है। लोककथाओं मुहावरे, लोरियां सबद, गजल, हरजस, प्रवाद आदि विविध रूपों में राजस्थान के लोक साहित्य में यहां का जीवन प्रतिबिम्बित होता है। राजस्थान के लोक साहित्य को निम्न भागों में मुख्य रूप से बांटा जा सकता है -

- **कहावतें एवं मुहावरे :** मुहावरेदार भाषा से पारस्परिक बातचीत को अधिक सक्षम और आकर्षक बनाया जा सकता है। मुहावरों का प्रयोग भाषा को एक वक्रता और व्यंजना-शक्ति प्रदान करता है। मुहावरों की तरह कहावतें भी लोक के अनवरत ज्ञान से भरी होती है। कहावतें गद्य और पद्य दोनों रूपों में मिलती है लेकिन पद्यात्मक कहावतों का प्रचलन अधिक है।कहावतों के वर्गीकरण किया जाये तो जातियों, त्यौहारों, स्त्रियों, खान-पान, शिक्षा, धर्म, लोकविश्वास, जीवन-दर्शन, शगुन, कृषि और वर्षा संबंधी कहावतें प्रमुख रूप से वर्गीकृत की जा सकती है।
- **उलटबांसी :** इन्हें गूढ़ा, आड़ी या सामान्य शब्द में कहें तो पहेलियां से भी जाना जाता है। पहेलियों से विनोद और ज्ञान की परीक्षा होती है। इसके वर्गीकरण किया जाये तो काव्यगत और दार्शनिक पहेलियां, बच्चों के मनोरंजन की पहेलियां, युवा प्रेमियों तथा सखी-सहेलियों के हास परिहास की पहेलियां, सुसराल में दूल्हे की बुद्धि परीक्षा के लिए पूछे जाने वाली पहेलियां, लोक मनोरंजन, ज्ञानवर्द्धन पहेलियां आदि प्रमुख है।
- **गाथायें :** लोक गाथायें वीरता, प्रेम, रोमांच, पौराणिक, निर्वेद, धर्म, संस्कृति आदि से संबंधित है। इनमें संगीतात्मकता का प्रमुख गुण होता है। वीर कथात्मक लोक कथाओं में बगड़ावत, पाबू गोगा, तेजा ,डूंगजी-जवारजी, गलालेंग आदि है। इसी प्रकार प्रेम गाथाओं में ढोला-मारू, जमाल-अना, नागजी-नागवन्ती सौरठ आदि है। रोमांचक गाथाओं में निहालदे, पौराणिक गाथाओं में लोक महाभारत, अहमानो, धूव और शिव-पार्वती संबंधी कथायें है। निर्वेद कथाओं में गोपीचन्द और भर्तहरि प्रमुख है।
- **प्रवाद :** यह एक प्रकार की ऐतिहासिक कथा होती है जो आकार में अपेक्षाकृत छोटी और घटना विशेष पर कही जाती है। प्रवाद ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों प्रकार के होते है। अनेक प्रवादों की कहावतें भी प्रचलित है। प्रवादों को वार्तालाप भी कहा जाता है।

  प्रवादात्मक गाथाओं की परम्परा, अतरैय शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रंथों, महाभारत, बौद्ध जातक, जैन ग्रंथों, कथाचरितसागर आदि ग्रंथों में प्रचुरता से मिलती है।

- **पवाड़े:** इसकी प्रवादों से उत्पत्ति मानी जाती है। किसी विशिष्टवीर द्वारा किये गये कृत्यों का गुणगान पवाड़े कहलाता है। इसका एक अन्य नाम परवाड़ा भी है। पाबूजी, मनगुजरी के पवाड़े विशेष रूप से प्रचलित है।
- **लोरियां :** लोक प्रचलित वास्तविक लोरियां बहुत कम मात्रा में मिलती है। लोरियों का उपयोग रोते हुए बच्चों को सुलाने और रिझाने के लिए किया जाता है। इसमें कल्पना का अभाव रहता है तथा तुके जोड़कर बनाई जाती है। कुछ वीर रसात्मक लोरियों की रचना भी की गयी है।
- **हरजस :** भगवान के गुणगान से संबंधित भक्ति भावना पूर्ण पद हरजस कहलाते है। स्त्रियों द्वारा इसे प्रभातकाल में चक्कियों पर आटा पीसते, विश्राम के क्षणों में मन्दिरों में आते-जाते, आंगन की तुलसी की पूजा करते और कार्तिक स्नान करते समय विशेष तौर पर गाया जाता है। मीरा, चन्द्रसखी, कबीर, सूरदास, निर्गुणी भक्तों आदि द्वारा रचित पदों को हरजस के रूप में गाया जाता है।
- **ख्याल :** यह नृत्यगीत से संबंधित विधा है जो खुले स्थान पर काठ के तख्तों या चबूतरों पर सम्पादित किया जाता है। सभी पात्र अपनी वेशभूषा में वाद्य-वादकों के साथ मंच पर बैठे रहते है। इसे नौटंकी, रम्मत, सांग, खेल आदि के नाम से भी जाना जाता है। ये प्राय ऐतिहासिक और प्रेम कथात्मक होते है। शेखावटी, कुचामणी,मारवाडी,मेवाडी,जैसलमेरी, अलवरी (तुर्रा-कलंगी) तथा अलीबक्षी ख्याल अधिक प्रसिद्ध है। ख्यालों का प्रचलन अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में प्रारंभ हुआ था। ख्यालों की बणगट मे लावणी, चौबोला, कवित्त आदि छन्दों का प्रयोग अधिक होता है जिसे विशेष लय में गाया जाता है।

2.4.4 लोकोत्सव, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मेले :

राजस्थान अपने लोकोत्सवों, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मेलों के कारण देशभर में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। उमंग, उत्साह के साथ मनाए जाने वाले लोकोत्सव, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मेलों में राजस्थान का जीवन स्पंदित होता है। कुछ प्रमुख लोकोत्सव, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मेले इस प्रकार से है -

लोकोत्सव:

राजस्थान को कला संस्कृति का घर कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। यहां का हर त्यौहार एवं मेला लोक जीवन के किसी प्रसंग से जुड़ा है। हर लोकोत्सव के अपनी गीत, अपनी परम्परा और अपनी संस्कृति है। कुछ प्रमुख लोकोत्सव इस प्रकार से है -

- **गणगौर :** होलिका दहन से दूसरे दिन प्रारंभ होने वाले गणगौर उत्सव का राजस्थान में विशेष महत्व है। अविवाहित युवतियां मनवांछित वर प्राप्त करने के लिये और विवाहित महिलाएं अपने सुहाग की दीर्घायु के लिये इस पर्व पर गणगौर यानी शिव-पार्वती की पूजा करती है। 'खोल ए गणगौर माता, खोल ए किवाडी...' बोल के गीत गाती युवतियों, स्त्रियों की टोलियां सोलह दिन तक गुलाल, कुमकुम

और मेहंदी से दीवार पर एक-एक स्वास्तिक और सोलह-सोलह बिंदियॉ लगाकर गणगौर की पूजा करती है। सोलह दिन बाद 'ईसर और गौर' का किसी नदी, सरोवर, कुएं पर विसर्जन किया जाता है।

- **तीज :** सावन-भादों की मनोरम ऋतु में मनाया जाने वाला तीज राजस्थान का सर्वाधिक लोकप्रिय त्यौहार है। श्रावण के महिने में तीज के अवसर पर नवविवाहिताएं पेडों पर झूला डालकर झूलती है साथ-साथ ऋतु श्रृंगार के गीत भी गाती है। हाथों में मेहंदी रचाए, सतरंगे-पंचरंगे लहरियों की ओढ़नी तथा आभूषण पहने महिलाएं उत्साह के साथ पार्वती की प्रतीक तीज की पूजा करती है और अपने सुहाग के लिये मंगलकामनाएं करती है। तीज का मेला भी लगभग सभी स्थानों पर भरता है। जयपुर, बीकानेर की तीज अत्यधिक प्रसिद्ध है। तीज का जयपुर में लगने वाला मेला विदेशों तक में खासा लोकप्रिय है। लोकगीतों की मधुर स्वर लहरियां इस त्यौहार पर यत्र-तत्र सर्वत्र सुनाई पडती है।
- **शीतलाष्टमी:** चैत्रकृष्णा अष्टमी को होली के आठवें दिन शीतलाष्टमी का त्यौहार पूरे राजस्थान में मनाया जाता है। इस दिन ठंडा किया जाता है। ठंडे का अर्थ है एक दिन पहले पकाया हुआ खाना ही शीतला माता के भोग लगाकर घरों में खाया जाता है। शीतला माता को मातृरक्षिका देवी के रूप में भी पूजा जाता है। जयपुर जिले से करीब 35 किलोमीटर दूर चाकसू कस्बे के पास स्थित शील डूंगरी स्थित शीतला माता मंदिर में इस दिन बड़ा मेला भी भरता है।
- **अक्षय तृतीया:** राजस्थान में अक्षय तृतीया का विशेष महत्व है। इसे आखातीज भी कहा जाता है। अक्षय तृतीया का अर्थ है अबूझ सावा। विवाह के लिये इसे अत्यधिक शुभ समझा जाता है। यही कारण है कि इस दिन राजस्थान में विवाहोत्सवों का शमा बंध जाता है। इस दिन बाजरा, गेंहू, चना, तिल, जौ आदि अन्नों की पूजा की जाती है और ईश्वर से अच्छी वर्षा की कामना की जाती है। आखातीज को हवा का रूख देखकर ही कहते है यह अनुमान लग जाता है कि जमाना अर्थात् फसलों के लिए वर्षा कैसी होगी। बीकानेर के लिए तो यह दिन वैसे भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस दिन बीकानेर की स्थापना दिवस होने के कारण आकाश पतंगों से भर उठता है। दूसरे स्थानों पर मकर संक्रांति को पतंगें उड़ाई जाती है जबकि बीकानेर निवासी इस दिन भयकर गर्मी के बावजूद छतों पर पतंगे उड़ाते, पेच लड़ाते और शोर करते मिलते है। इस दिन गेंहू और बाजरे का खींच भी तैयार किया जाता है। इमली के शीतल पेय भी विशेष रूप से पीया जाता है।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक मेले :

तीज-त्यौहारों की राजस्थान की अपनी परम्पराएं है तो क्षेत्र-विशेष स्थित मंदिर, मान्यता के अन्तर्गत आयोजित होने वाले धार्मिक एवं सांस्कृतिक मेलों का भी अपना महत्व है। कुछ प्रमुख धार्मिक एवं सांस्कृतिक मेले इस प्रकार से है -

- **पुष्कर का मेला:** अजमेर के निकट एक माऋ ब्रह्मा मंदिर वाले स्थान पुष्कर में वैसे तो आये दिन मेला ही लगा रहता है परन्तु कार्तिक पूर्णिमा को लगने वाले

मेले में यहां तिल रखने की जगह नहीं मिलती। दूर-दराज से यहां लोग आते है और पवित्र सरोवर में स्नान कर ब्रहमा जी एवं अन्य देवी-देवताओं के दर्शन करते है। मेले के दौरान दूर-दराज से आने वाले साधु-संत श्रृद्धालुकई-कई दिनों तक यहां डेरा डाले रहते है। अजमेर जिला प्रशासन, पर्यटन तथा कला एवं संस्कृति विभाग द्वारा मेले के दौरान राजस्थान की संस्कृति से ओतप्रोत सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते है। मेले की संध्या पुष्कर सरोवर में दीप-दान की भी परम्परा है। असंख्य दीपकों से सरोवर झिल-मिला उठता है।

- **कैलादेवी का मेला :** सवाई माधोपुर जिले से 18 किलोमीटर दूर स्थित कैला माता के मंदिर में चैत्र-शुक्ला अष्टमी को मेला भरता है जो कई दिनों तक चलता है। इसे लक्खी मेला भी कहा जाता है। मेले में कैला माता के दर्शनार्थ दूर-दराज से दर्शनार्थी आते है।
- **श्रीमहावीर जी का मेला:** सवाई माधोपुर के हिण्डौन कस्वे के निकट भी महावीर जी दिगम्बर जैन संप्रदाय का प्रमुख तीर्थ स्थल है। यहां प्रतिवर्ष चैत्रशुक्ला त्रयोदशी से वैशाख कृष्ण प्रतिपदा तक श्री महावीर जी का मेला भरता है। मेले में लाखों श्रावक-श्राविकाएं, साधु-साध्वियां, श्रमण-श्रमणियां एवं अन्य जन एकत्र होते है। मेले में जैन मतावलम्बियों के अलावा भी अन्य समुदाय के लोग बडी संख्या में भाग लेते है।
- **गणेश मेला :** सवाई माधोपुर जिले में रणथम्मौर के ऐतिहासिक किले का गणेश मंदिर अत्यधिक प्रसिद्ध है। इस मंदिर में प्रतिवर्ष गणेश चौथ पर भगवान गणेश का मेला भरता है।
- **बाबा रामदेव जी का मेला:** जैसलमेर जिले के पोकरण कस्बे के निकट भाद्रपदा में बाबा रामदेवजी का मेला भरता है। लोक देवता रामदेवजी के मेले में दूर-दराज से लोग पैदल चलकर मनौती मांगने आते है। हिन्दुओं के साथ-साथ मुसलमान भी बाबा रामदेव को मानते है। सांस्कृतिक एकता के प्रतीक इस मेले के दौरान मवेशियों का मेला भी आयोजित किया जाता है।
- **डिग्गी मेला :** जयपुर से 75 किलोमीटर दूर पर स्थित डिग्गी राजस्थान का लोकप्रिय तीर्थ स्थल है। श्री कल्याण जी अर्थात भगवान विष्णु का यहां सावन की आमावस्या को विशाल मेला भरता है। इस मेले में राजस्थान के अलावा बिहार, बंगाल, आसाम से भी यात्री अपनी मनौतियों की पूर्ति के लिये पहुंचते है।
- **भर्तृहरि का मेला:** अलवर के सरिस्का अभयारण्य के अंदर भर्तृहरि का मेला भरता है। वर्षा ऋतु के भाद्रपद माह में लगने वाले यहां के मेले में बाबा भर्तृहरि की जयकार से वातावरण गूंजायमान हो उठता है। देश के कोने-कोने से साधु-संत और बाबा लोग यहां आ धूणा रमाते है।

- **जीणमाता का मेला:** सीकर जिले के रेवास ग्राम में दक्षिण की तरफ गिरिमाला की उपत्यका में स्थित जीणमाता मंदिर में चैत्र मास और आश्विनी के माह में नवरात्रों के समय विशेष मेला भरता है।
- **करणी मेला:** बीकानेर से 30 किलोमीटर की दूरी पर स्थित देशनोक नामक स्थान की करणीमाता का मंदिर चूहों की देवी से भी विख्यात है। इस मंदिर में असंख्य चूहे आप किसी भी समय विचरण करते देख सकते है। चूहों की देवी माता करणी के मंदिर में नवरात्रों के अवसर पर विशेष मेला लगता है। मेले में देश-विदेश से लाखों की संख्या में देशनोक आते है और मनौती पूरी होने की कामना देवी से करते है।
- **कपिल मुनि का मेला:** बीकानेर से ही 50 किलोमीटर की दूरी पर कोलायत नामक स्थान सांख्य दर्शन के प्रणेता महर्षि कपिल की तपोभूमि से विख्यात है। कपिल की तपोभूमि कोलायत पर प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा को मेला भरता है। इस दिन यहां के पावन सरोवर में स्नान का विशेष महात्म्य है। दूर-दराज से लाखों श्रृद्धालु कोलायत आते है तथा कपिल सरोवर में स्नान कर पुण्य कमाते है। रात्रि को सरोवर में दीपदान की भी परम्परा है।

2.5 सारांश:

समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर लिए राजस्थान की धरती के कई रंग हैं। विषम भौगोलिक परिस्थितियां के बावजूद यहां की संस्कृति के रंग ही तो हैं जो जीवन में हर्ष, उल्लास एवं उमंग भरते हैं। अंग्रेजी में एक कहावत है कि सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। संस्कृति के दो पक्ष है- आन्तिरक और बाह्य। दृश्य और भव्य कलाएं तथा शिल्प बाह्य संस्कृति के यंत्र (उपकरण) मात्र है, जबकि हमारे चारित्रिक गुण आन्तरिक संस्कृति के। संस्कृति और समाज को एक-दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता। राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में तो यह स्पष्ट ही कहा जा सकता है कि यहां समाज और संस्कृति के परस्पर गहरे सरोकार आरंभ से ही रहे हैं।

राजस्थान की संस्कृति में चित्रकला की विभिन्न शैलियां हो या फिर मूर्तिकला और अन्य हस्तकलाओं की समृद्ध थाती। संगीत,नृत्य से झूमती राजस्थान की धरती के लोक नाट्य, लोक साहित्य, लोकोत्सव और धार्मिक मेलों से सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्सवधर्मिता यहां के जीवन का अंग हैं। उत्सवधर्मिता के प्रदेश राजस्थान की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर के बारे में ही आपको इस इकाई में बताने का प्रयास किया गया है। इसके माध्यम से आप राजस्थान की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को समझ सकेंगे।

बोध प्रश्न:

1. संस्कृति और समाज को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता।संक्षिप्त में इस कथन की विवेचना कीजिए

   .....

   .....

2. राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में चित्रकला, मूर्तिकला एवं हस्तकला पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

3. राजस्थान की संगीत परम्परा समृद्ध हैं। इस कथन की व्याख्या करते हुए संगीत, नृत्य एवं लोक वाद्यों के बारे में विवरण दीजिए।

.....

.....

4. राजस्थान के लोक नाट्य एवं लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

5. राजस्थान के लोकोत्सव एवं मेले आमजन के जीवन से गहराई से जुड़े हैं।" इस कथन की व्याख्या करते हुए लोकोत्सव एवं मेलों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

इकाई - 3 : राजस्थान की ऐतिहासिक इमारतें

रूपरेखा :

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 ऐतिहासिक इमारतें एवं राजस्थान

3.3 इतिहास के मूक साक्षी प्रमुख दुर्ग, गढ़ एवं किले

- 3.3.1 जूनागढ़ दुर्ग
- 3.3.2 मेहरानगढ़ दुर्ग
- 3.3.3 नागौर दुर्ग
- 3.3.4 जैसलमेर का सोनार किला
- 3.3.5 जालौर का स्वर्णगिरी दुर्ग
- 3.3.6 लक्ष्मणगढ़ किला
- 3.3.7 लोहागढ़
- 3.3.8 तारागढ़
- 3.3.9 चित्तौड़ का किला
- 3.3.10 जयगढ़ दुर्ग
- 3.3.11 नाहरगढ़
- 3.3.12 आम्बेर दुर्ग
- 3.3.13 अकबर का किला
- 3.3.14 अलवर दुर्ग
- 3.3.15 गागरोन का किला
- 3.3.16 रणथम्भौर
- 3.3.17 कुम्भलगढ़
- 3.3.18 सिवाणा का किला
- 3.3.19 अचलगढ़
- 3.3.20 मांडलगढ़
- 3.3.21 भटनेर दुर्ग

3.4 राजप्रासाद एवं महल

3.5 कीर्ति स्तम्भ

3.6 अढ़ाई दिन का झोंपड़ा

3.7 प्राचीन हवेलियां

3.8 देवी-देवताओं के मंदिर

3.9 स्मारक

3.10 सारांश

3.0 उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- राजस्थान की ऐतिहासिक इमारतों से अवगत हो सकेंगे।
- किले, गढ़ एवं दुर्गो की समृद्ध विरासत एवं उनके ऐतिहासिक महत्व के बारे में जान सकेंगे।
- स्थापत्यकला से समृद्ध राजस्थान के राजप्रासाद एवं महलों को जान सकेंगें।
- राजस्थान की विभिन्न ऐतिहासिक इमारतों, स्मारकों के बारे में जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना:

राजस्थान के गौरवमयी इतिहास की साक्षी हैं-यहां की ऐतिहासिक इमारतें। इन इमारतों में सोया हुआ है, राजस्थान का इतिहास, इतिहास की शौर्य गाथाएं। साथ ही राजा-महाराजाओं के स्थापत्य कला प्रेम की भी ये गवाह हैं। राजस्थान के लगभग सभी क्षेत्रों में वहां के राजा-महाराजाओं ने अपने निवास स्थान के लिए भव्य राजप्रासाद बनाने के साथ ही युद्ध की परिस्थितियां को दृष्टिगत रखते हुए अभेद्य किले, गढ़ एवं दुर्गो का भी निर्माण करवाया। दुर्गम स्थान पर होने के साथ ही इन किलों पर कभी हमलावरों ने दिनों, महिनों तक डेरा डाला है। तोप के गोलों तक से न ढ़हने वाले ऐसे दुर्गो, किलों, महलों के साथ ही राजस्थान का इतिहास देवी-देवताओं के प्राचीन मंदिरों, प्राचीन हवेलियां, अढाई दिन का झोंपडा, चित्तौड़ के कीर्ति स्तम्भ, शासकों की याद में बनाए स्मारकों की लम्बी श्रृंखला से भी गूंथा हुआ है। राजस्थान के इतिहास की गवाह यहां की ऐतिहासिक इमारतों के बारे में ही इस इकाई में आपको बताया जा रहा है। आईए, ऐतिहासिक इमारतों के आईने से झाकें राजस्थान के इतिहास में -

3.2 ऐतिहासिक इमारतें एवं राजस्थान:

राजस्थान शौर्य एवं बलिदान की ही भूमि नहीं है बल्कि भवन निर्माण के वैभव के कारण भी विश्वभर में जाना जाता है। दुर्ग, किले, महलों के निर्माण की यहां आरंभ से ही परम्परा रही है। वास्तुकारों का विभिन्न गवेशणाओं में शौर्य और कीर्ति की इस भूमि का इतिहास प्रारंभिक पाषाण युग से प्रारंभ होता है। राजस्थान के दुर्गो एवं ऐतिहासिक इमारतों में हिन्दु और मुगल स्थापत्य कलाओं का मिश्रण है। भारत के अन्य स्थानों की अपेक्षा यहां की इमारतों की स्थापत्य कला इसीलिए विशिष्ट कही जा सकती है कि उनमें विभिन्न कलाओं का एक साथ अद्भूत मिश्रण किया हुआ है। किले, महलों की निर्माण कला के अंतर्गत उनकी बड़ी-बड़ी चार दीवारियां गहरी खाइयां, प्रशिक्षण के लिए बड़े मैदान, सुन्दर राजमहलों की नक्काशी, उनका शिल्प सौन्दर्य देखते ही बनता है। इसी प्रकार मंदिरों का स्थापत्य वैभव भी मनोहारी हैं। राजस्थान की ऐतिहासिक इमारतों के बारे में यहां तक कहा जाता है कि वे विश्व की निर्माणकला का महानतम उदाहरण हैं। मरूस्थल में दुर्गम पहाड़ियों, घने जंगलों में बनी इन इमारतों के इतिहास में युद्ध, प्रेम, विरह, बलिदान, हर्ष, शोक आदि की ऐसी-ऐसी गाथाएं छुपी हैं

जिन्हें सुनकर, पढकर अचरज हुए बिना नहीं रहता। राजप्रासादों में बने फव्वारों, फुलवारियों, जलाशयों का सौन्दर्य भी देखते ही बनता है। इन ऐतिहासिक इमारतो का ही आकर्षण है कि यहां वर्षपर्यन्त देशी और विदेशी पर्यटकों की बाढ़ सी आयी रहती है।

3.3 इतिहास के मूक साक्षी दुर्ग, गढ़ एवं किले:

आन-बान ओर शान की गौरव गाथाओं को अपने में संजोए राजस्थान की धरती जितनी पराक्रम स्वाभिमान, साहस और युद्ध विजय की स्वर्णिम गाथाओं के लिए विख्यात है उतनी ही अपने ऑचल में सभ्यता एवं संस्कृति के इतिहास को समेटे अपने किलों, गढों, दुर्गों के लिए भी जानी जाती है। कालीबंगा से प्रारंभ यहां दुर्गों की श्रृंखला में हर 30-35 किलोमीटर के अन्तराल में किला, दुर्ग या गढ मिल ही जाता है। शौर्य, पराक्रम , त्याग, बलिदान की घटनाओं के मूक साक्षी राजस्थान के गढ और किले इस कदर खूबसूरत भी है कि इन्हें देखकर इनके निर्माण के पीछे की कहानियॉ में भी मन अनायास ही चला जाता है। यहां किले विविध रूपों में बने हैं। जल से घिरे दुर्ग यहां पर हैं, समतल जमीन पर बने दुर्ग यहां हैं तो बियाबान जंगल में पहाड़ों पर बने दुर्ग भी यहां हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, शुकनीतिसार आदि में दुर्ग के जितने भी प्रकार बताए गए हैं, लगभग वे सभी प्रकार के दुर्ग राजस्थान में भी बने हैं। चूंकि यहां विभिन्न राजवंश भिन्न-भिन्न स्थानों पर शासन करते थे, उन्होंने सामरिक महत्व के स्थानों पर या फिर सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए सुदृढ किलों का निर्माण अपने अपने समय काल में करवाया। पूरे देश में राजस्थान ही वह प्रदेश हैं जहां पर महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के बाद सर्वाधिक किले गढ और दुर्गु बने हुए हैं। स्थ्यू गणना के अनुसार राजस्थान में 250 से अधिक दुर्ग व गढ हैं।

राजस्थान में सर्वाधिक दुर्ग पहले मेवाड़ में थे। मेवाड़ के 84 किलों में से अकेले महाराणा कुम्भा ने 32 दुर्गो व गढियों का निर्माण कराया था। इसके बाद राज्य के ढूढांड़ इलाके में 50 से अधिक किले पाए गए। गौरवमयी अतीत को अपने ऑचल में समेटे राजस्थान के किले, गढ और दुर्ग आज भी इतिहास की गाथा सुनाते मानों आने वाले को मौन निमंत्रण दे रहे हैं, यह कहते- 'आईये प्रवेश करें। जानें अपने अतीत के गौरवमय इतिहास को और समझें सभ्यता व संस्कृति के विकास को।'

यूं तो राजस्थान में पग-पग पर किले, गढ एवं दुर्ग हैं परन्तु उनमें से अब कुछ तो संरक्षण के अभाव में सर्वथा लुप्त हो गए हैं तो कुछ का स्वरूप ही बदल चुका है। ऐतिहासिक महत्व के बहुत से किले अब भी अपनी उपस्थिति से इतिहास को जीवंत किए हुए हैं, उन्हीं में से कुछ प्रमुख किले, गढ़ एवं दुर्ग इस प्रकार से हैं -

3.3.1 जूनागढ़ दुर्ग:

बीकानेर का जूनागढ किला, राजस्थान के अजेय दुर्ग श्रृंखला की कड़ी में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। संवत् 1650 ई. में बना जुनागढ वास्तुकला का अनुपम उदाहरण है। कर्नल टॉड द्वारा लिखे राजस्थान के इतिहास के अनुसार संवत 1630 (1573 ईस्वी) में रायसिंह बीकानेर के राज सिंहासन पर बैठे। रायसिंह ने ही बीकानेर के वर्तमान जूनागढ किले

को विक्रम संवत 165o,, माघ सुदी 6 (ई0.स0 1594, तारीख 17 जनवरी) व बृहस्पतिवार के दिन सम्पूर्ण कराया। यह कार्य रायसिंह के मंत्री कर्मचन्द बछावत के निरीक्षण में 8 वर्ष की अवधि में हुआ। एक हजार 78 गज परिधि में 30 फीट चौडा प्रकारो से घिरा हुआ जूनागढ़ किला सात पोल और प्रतिलिकाओं से सुशोभित है। जैसलमेर के पीले पत्थरो से निर्मित दुर्ग का प्रवेश द्वार या यूँ कहे कि मुख्य द्वार सूरजपोल राजा रायसिंह द्वारा ही बनाया गया था। शिल्प सौन्दर्य की अनूठी मिशाल लिए जूनागढ़ किले का विकास प्रत्येक शासक ने अपने काल में किया। इसमे बने अलग-अलग महलों और उनके हॉल की बनावट मुगल स्थापत्य कला की बरबस ही याद दिलाती है। किले की मुख्य बनावट आगरा और दिल्ली के मुगल महलों या आमेर (जयपुर) के राजपूत महलो की तरह है।

किले की 1078 गज की परिधि के अंतर्गत चारो ओर सुदृवढ प्राचीर तथा खाई बनी हुई है, जो ऊपर से 30 फीट चौड़ी तथा 20-25 फुट गहरी है। किले में कुल 37 बुर्ज है, जिनके ऊपर. कभी तोपे रखी जाती थी। किले की दिवार पर कंगूरो में बंदूक, रामची व जुजर्बे चलाने के लिए जगह-जगह तरकस (छंद) बने हुए है। संभवत राजस्थान का यह एक मात्र ऐसा किला है जिसकी दिवारे महल सभी में शिल्प सौन्दर्य का अद्भूत मिश्रण है। महलों के बाहर के बरामदों में शाही जन्तुओं और शिकार के चित्र भी जीवंत से प्रतीत होते है। गंगा निवास जूनागढ़ का ऐसा हॉल है जिसमें पत्थर की बनावट तथा उस पर उत्कीर्ण कृष्णरासलीला इस शताब्दी के सुन्दरतम उदाहरण के रूप में है।

3.3.2 मेहरानगढ दुर्ग:

राज्य की सूर्यनगरी जोधपुर में ऊँची पहाड़ी पर बना हुआ है मेहरानगढ़ दुर्ग। मयूर की आकृति में बने इस दुर्ग को कभी मयूरध्वज और गढ चिन्तामणी से भी जाना जाता था। विक्रम संवत 1515 की ज्येष्ठ सूदी 11 और ईसवी सन् के हिसाब से 13 मई 1459 ई. में जोधपुर किले की नींव रखी गयी। पत्थरीली चट्टानी पहाड़ी पर मैदान से 125 मीटर ऊँचाई पर अवस्थित मेहरानगढ दुर्ग अपनी उन्नत प्राचीर और विशाल बुर्जो से दूर से ही आकर्षित करता है। किले की सुदृढ़ प्राचीरो ने चारों और फैलकर 100 फीट लम्बी तथा 750 फीट चौड़ी भूमि को घेर रखा है। किले की ये विशाल उन्नत प्राचीरें लगभग 20 से 120 फीट ऊँचाई की है, मोटाई इनकी 12 फीट से 70 फीट तक है। इनके मध्य स्थान-स्थान पर गोल और चौकोर बुर्जे बनी हुई है। किले की दिवारों के शीर्ष भाग पर तोपों के मोर्चे बने हुए हैं। मेहरानगढ किला दो मंजिला है। किले में लम्बी दूरी तक मार करने वाली अनेक तोपों का भी अपना गौरवमय इतिहास रहा है। इनमें किलकिला तोप, भवानी आदि तोपें अत्यधिक भारी और अद्भूत है। यही वह दुर्ग है जहां के नाबालिक महाराजा अजीतसिंह की हत्या के मुगलों के सभी प्रयासों को निष्फल कर दुर्गादास इतिहास में अमर हो गये। राव अजीतसिंह के समय में 1678 ई. में पुन: एक बार दुर्ग पर मुगलों का नियंत्रण हुआ। इस समय में स्वामिभक्त वीर शिरोमणि दुर्गादास के नेतृत्व में राठौड़ सरदारों ने अनवरत संघर्ष कर अपने प्रयासों से महाराजा अजीत सिंह को पुन: गद्दी पर बैठाया। इसके बाद 1818 ई. में अंग्रेजो द्वारा हस्तगत करने के पूर्व दुर्ग राठौड़ो के ही पास रहा।

3.3.3 नागौर दुर्ग:

सामरिक दृष्टि से अद्भूत नागौर किले के निर्माण में प्राचीन भारतीय वास्तु शास्त्र के नियमों का पालन विशेषरूप से किया हुआ है। बिजोलिया के शिलालेखों के अनुसार चौहानों के पूर्वज इसी किले में रहे थे। कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार किले में अंतिम निर्माण कार्य विक्रम संवत 1809 तक हुए लगभग 5 हजार फीट लम्बाई के परकोटे से घिरे नागौर के दुर्ग में 28 विशाल बुर्जे बनी हुई हैं। दोहरे रूप में बने किले के परकोटे के अंतर्गत पहला परकोटा भूमि से 25 फीट और दूसरा 50 फीट ऊँचा है। इसकी चौड़ाई आधार और चोटी पर क्रमश: 30 फीट, 8 इंच और 12 फीट 4 इंच है। प्राचीरों के चारो कोनों पर बनी बुजें सीधी खड़ी हैं तथा धरती से इनकी ऊँचाई प्राय: 150 फीट तक हो जाती है। पूर्व-पश्चिम में 64 गज चौडा व उत्तर दिशा में 102 गज लम्बा किले का मुख्य द्वार अत्यधिक भव्य हैं। लोहे के सीखंचो वाले बडे फाटक पर द्वार लगे हैं। दरवाजे के दोनों और विशाल बुर्ज और धनुषाकार तोरण के साथ ही शीर्ष भाग पर तीन द्वारों वाले झरोखे भी बने हुए हैं जिन पर छत उठी हुई है।

लाहौर और अजमेर के रास्ते में होने के कारण नागौर का किला बार-बार आक्रमणों को झेलता रहा है। दुर्ग को चौहानों से पहले पहल 1129 ई. में मुहम्मद गौरी ने छिना। दयालदास की ख्यात के अनुसार मंडोर के राव चूण्डा राठौड़ ने 1423 ई. में जलालखॉ खोखर को मारकर दुर्ग अपने अधिकार में ले लिया था किन्तु लड़ाई में मारा गया। वीर विनोद के अनुसार 1467 ई. में महाराणा कुम्भा ने नागौर दुर्ग को जीता तथा यहां से हनुमानजी की मूर्ति विजय प्रतीक के रूप में लेजाकर कुम्भलगढ के प्रमुख प्रवेश द्वार हनुमानपोल में स्थापित की। महाराणा कुम्भा की मृत्यु के पश्चात नागौर पर पुन: मुस्लिम शासकों का कब्जा हुआ। जोधपुर के राठौड़ नरेश राव मालदेव ने 1536 ई. में तत्कालीन मुस्लिम शासक मुहम्मद खॉ को मारकर इस पर अपना अधिकार किया। इसके बाद शेरशाह सूरी के अधिकार में रहने के बाद नागौर दुर्ग मुगल बादशाह अकबर के अधीन आ गया। कहते हैं अकबर ने यहां पर तीन शादियाँ रचाई। बाद में यह दुर्ग शाहजहाँ के पास भी रहा। शाहजहाँ ने यह दुर्ग जोधपुर नरेश राव गजसिंह के बेटे अमरसिंह राठौड़ को उसकी वीरता, साहस और पराक्रम को देखते हुए बाद में उपहार में दे दिया। वीर अमरसिंह राठौड़ अत्यधिक स्वाभिमानी थे, एक बार आगरे के किले के भरे दरबार में सलावत खॉ ने जब उन्हें अपशब्द कह कर अपमानित किया तो उन्होने वहीं पर कटार से उसका वध कर दिया। अमरसिंह के बाद जब बख्तसिंह का नागौर पर शासन हुआ तो उन्होने सर्वप्रथम किले का जिर्णोद्धार करवाया।

3.3.4 जैसलमेर का सोनार किला:

राजस्थान की स्वर्णनगरी कहे जाने वाले जैसमेर में रेगिस्तान के बीचो-बीच त्रिकुट पहाड़ी पर पीत पाषाणों से निर्मित जैसलमेर के किले को सोनार किले के नाम से अधिक जाना जाता है। दूर से देखने पर यह किला पहाड़ी पर लंगर डाले एक जहाज का आभास भी कराता है। दुर्ग के चारों ओर दुर्ग को ढकने के लिए बना घाघरानुमा परकोटा जिसे कमरकोट और स्थानीय भाषा में पाड़ा भी कहा जाता है. बनावट में अपने आप में अद्भुत भी है। इसे बनाने में

चूने एवं पत्थर का प्रयोग नहीं किया गया है बल्कि कारीगरों ने बडे-बड़े पीले पत्थरों को परस्पर जोड़ कर इसे बनाया है।

जैसलमेर की ख्यात के अनुसार विक्रमी संवत 1212 में श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि अर्थात् 12 जुलाई 1155 ई. को जैसलमेर के वर्तमान दुर्ग की नींव रखी गयी। राव जैसल, दुर्ग के एक भाग और एक दरवाजे का निर्माण ही पूरा कर पाये थे कि उनकी मृत्यु हो गयी। बाद में उनके अधूरे कार्य को उनके पुत्र शालिवाहन(द्वितीय) ने पूरा कराया। चक्राकार घूमती हुई प्राचीरों का त्रिकुटाकृति सोनार किला सात साल में बनकर पूर्ण रूप से तैयार हुआ। कालान्तर में सामरिक सुरक्षा व अन्य आवश्यकताओं के अनुसार इसका विस्तार भी इसके शासकों द्वारा निरंतर किया जाता रहा। राजस्थान का तीसरा प्राचीनतम दुर्ग माना जाने वाला जैसलमेर का सोनार किला पहाड़ी पर 250 फीट की ऊँचाई पर बना हुआ है। गोल गढगजों और कोनों पर बने भारी भरकम 99 वर्गाकार बुर्जो वाला यह किला 1500 फीट लम्बाई ओर 750 फीट चौडाई में फैला हुआ है। खास बात यह भी है कि किले की प्रत्येक बुर्ज लगभग 30 फीट ऊँची हैं। अपने निर्माण की एकरूपता और पहाडी के शीर्ष भाग की ऊँचाई प्राय. समान होने के कारण दुर्ग दूर से अत्यधिक आकर्षक और सम्मोहित करता है। जैसलमेर का किला इस रूप में भी खासा प्रसिद्ध है कि यहां पर दुर्लभ और प्राचीन पाण्डुलिपियों का अमूल्य संग्रह है।

3.3.5 जालौर का स्वर्णगिरी दुर्ग

जालौर दुर्ग के निर्माण के बारे में इतिहास में कई मत मिलते है। कई इतिहासकारों का मानना है कि परमार राजाओं ने इसे दसवी शती में बनवाया था। कई इतिहासकार ऐसा मानते हैं कि इसका निर्माण प्रतिहार राजा नागभट्ट (प्रथम) ने करवाया और बाद में परमारों के काल में इसका जिर्णोद्धार करवाया गया था। दुर्ग में मिले एक शिलालेख में संवत् 1051 अंकित पाया गया। इससे पता चलता है कि यह दसवीं शतीके उत्तरार्ध या इसके पहले बना था। मूलत: जालौर का किला पर्वतीय है।

गौरवमय इतिहास को अपने में संजोए वीर कान्हड़देव की भूमि जाबालि के जालौर दुर्ग ने आक्रमण भी कम नहीं देखे है। दुर्ग पर परमार, चौहान, सोलंकियों, मुस्लिम सुल्तानों व राठौर नरेशों का समय-समय पर अधिकार रहा है। दुर्ग के सबसे प्रतापी राजा के रूप में कान्हड़देव का नाम विशेषरूप से लिया जाता है। बाद में उनके नाम पर कान्हड़देव प्रबन्ध भी लिखा गया। कान्हड़देव प्रबन्ध के अनुसार दुर्ग पर सबसे बड़ा आक्रमण अलाउद्दीन खिलजी ने किया था। खिलजी ने 1311 - 12 ई. के लगभग इस दुर्ग पर अपना अधिकार किया था। जमीन से सोनगिरी पहाड़ी पर गोल आकृति में 425 मीटर ऊंचाई पर बना यह किला क्षेत्रफल की दृष्टि से 800 गज लम्बा और 400 गज चौड़ा है।

3.3.6 लक्ष्मणगढ किला:

बालूई रेत के बीच बेड़ नामक छोटी सी पहाड़ी की चोटी पर बना है - लक्ष्मणगढ का दुर्ग। इस दुर्ग का निर्माण अधिक पुराना नहीं है, फिर भी उपलब्ध तथ्यों के आधार पर माना

यह जाता है कि इसका निर्माण सन् 1800 के आरंभिक दशक में हुआ। दुर्ग के नाम के अनुरूप इसके निर्माण का श्रेय सीकर के राजा लक्ष्मणसिंह को जाता है। इस दुर्ग की यह भी खास ही बात है कि पूरे क्षेत्र में एक ही पहाड़ी है जो इतनी ऊँचाई लिए है। लगभग 350 फीट ऊँचाई की इस पहाड़ी पर किले का निर्माण इस खूबसूरती से किया गया है कि देखने वाले को आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता।

लक्ष्मणगढ का किला प्राचीन जल संग्रहण व्यवस्था की भी अनूठी बानगी देता है। छोटे से इस किले में जल संग्रहण की इतनी प्रभावी व्यवस्था की हुई थी कि वर्षा का जल महीनों तक समाप्त नहीं हो। दरअसल किले में 25 फीट गहराई में भूमिगत जल भंडार बने हुए हैं। इन भूमिगत जल भंडारों में चारों दिशाओं से पानी इकट्ठा होता है। जल एकत्र होने की आगोर इस रूप में खूबसूरत है कि ऊपर से भूमिगत जल भंडार अलग-अलग दिखायी देते हैं परन्तु अन्दर से सभी भंडार एक-दूसरे से मिले हुए हैं। वर्षा जल संग्रहण के बेहतरीन उदाहरण के साथ ही लक्ष्मणगढ का किला अपनी बनावट, प्राचीरों के स्थान पर सीधे ही बनाए गए बुर्जों, झरोखों आदि के कारण अनूठी पहचान रखता है। किले की बुर्ज इतनी मजबूत है निर्माण की दो शताब्दी के बाद आज भी बुर्जें अंगद के पैर की तरह सुदृढता से मानों किले के अतीत का स्मरण कराती है।

3.3.7 लोहागढ़:

भरतपुर के लोहागढ़ दुर्ग का निर्माण सन 1733 में महाराजा सूरजसिंह द्वारा करवाया गया था। इससे पहले सन 1708 में भरतपुर तहसील के लुहिया गांव के सोगरिया जाति के जाट खेमकरण ने एक मिट्टी की गढ़ी का निर्माण करवाया था। बाद में इसी गढ़ी को महाराजा सूरजसिंह ने लोहागढ़ के वर्तमान किले के रूप में परिवर्तित कर दिया। किले के प्रवेश द्वार पर अष्टधातु का बना हुआ कलात्मक और मजबूत दरवाजा आज भी लोहागढ का लोहा ,मनवाता प्रतीत होता है। इस कलात्मक दरवाजे को महाराजा जवाहरसिंह 1765 में दिल्ली पर विजय पाने के बाद वहां से उतार लाए थे।

लोहागढ़ पर निरंतर आक्रमण होते रहे परन्तु हर बार आक्रमणकर्ता को मुंह की खानी पड़ी। मुगलों और अंग्रेजो की आंख में आरंभ से ही चुभते रहे इस किले की अभेद्यता इसकी दीवारों की चौड़ाई हैं। किले की दीवारें इतनी चौड़ी है कि हाथियों के समूह एक साथ इन दीवारों से निकल जाए। अंग्रेज जनरल लार्ड लेक ने तो अपनी विशाल सेना ओर तोप खाने के साथ पांच बार इस किले की चढाई की परन्तु हर बार उसे पराजय का ही सामना करना पडा। किले में बने किशोरी महल, महल खास, कोठी खास, दादी मां का महल, वजीर की कोठी, बिहारी व मोहन जी के मंदिर आदि दर्शनीय इमारते हैं।

3.3.8 तारागढ:

बूंदी जिले के उत्तर में 1420 फीट ऊंची पहाड़ी पर स्थित तारागढ़ दुर्ग का निर्माण सन 1354 में राव राजा बरसिंह ने करवाया था। तकरीबन चार-पांच किलोमीटर की परिधि में फैले तारागढ़ के चारों ओर तीन-तीन परकोटे है जो इसके सुरक्षा कवच से प्रतीत होते हैं। किले की

बाहरी दीवार का निर्माण 18 वीं सदी में फौजदार दलील ने करवाया जो जयपुर रियासत के प्रतिनिधि के रूप में कुछ समय के लिए इसका शासक रहा था।

तारागढ़ दुर्ग पर मालवा के महमूद खिलजी ने 1449-50 में तीन बार आक्रमण किया था। मेवाड के महाराजा क्षेत्रसिह ने भी बूंदी पर आक्रमण कर इस पर अपना अधिकार किया था तो जयपुर के सवाई जयसिंह ने भी इस पर आक्रमण कर 1729 में यहां अधिकार जमाया था। कहते हैं इसके बाद 1748 में हाड़ा उम्मेदसिंह ने तारागढ़ के पुन: हासिल कर लिया था। तारागढ़ के महलों के भीतर सुन्दर चित्रकारी, हाड़ौती कला के सजीव रूप का प्रतिनिधित्व करती है। सुदृढ़ और उन्नत प्राचीर, विशाल प्रवेश द्वार तारागढ़ की शान को चौगुना करते हैं।

3.3.9 चित्तौड़ का किला:

राजस्थान के दुर्गों में क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा चित्तौड़ का दुर्ग अपनी शौर्य गाथाओं की कहानी कहता पूरे देश में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। लगभग 8 किलोमीटर लम्बे और 2 किलोमीटर चौड़े इस दुर्ग का कुल क्षेत्रफल 275 वर्ग किलोमीटर है। सात प्रवेश द्वारों के इस दुर्ग का निर्माण चित्रांगद मौर्य ने करवाया था ओर सिसोदिया राजा अजयमल ने 12 वीं सदी में इसका जिर्णोद्धार करवाया।

चित्तौड़ के किले पर पहला हमला 1303 में अल्लाउद्दीन ने रानी पद्मनी को हासिल करने के लिए किया। राणा भीमसिंह की पत्नी पद्मनी और अन्य राजपूत महिलाओं ने सतीत्व की रक्षार्थ धधकती आग में कूदकर तब जौहर किया था। राणा और।उनके साथी युद्ध में लडते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। कहते है कि युद्ध के दौरान 50 हजार व्यक्ति मारे गए। चित्तौड़ पर दूसरा हमला गुजरात के बहादुरशाह ने सन् 1535 में राणा विक्रमादित्य के शासन काल में किया। तीसरा हमला अकबर ने 1567 में राणा उदयसिंह पर किया। महाराणा प्रताप ने निंरतर युद्ध करते हुए इस पराजय का बदला लिया, हालांकि हल्दीघाटी में वे अकबर से हार गए थे परन्तु बाद में उन्होंने अपने राज्य के अधिकांश इलाकों पर फिर से कब्जा कर लिया। सन् 1615 में जहांगीर ने राणा अमरसिंह को यह दुर्ग इस शर्त पर लौटा दिया था कि इसमें कोई अतिरिक्त निर्माण कार्य नहीं करवाया जाएगा। दुर्ग में 17 वीं से 19 वीं सदी तक के अनेक मंदिर, स्तम्भ और प्रासाद स्थित है। सिसोदिया पत्ता की छतरी, रावत बाघसिंह के स्मारक व नोलखा भंडार दुर्ग के विख्यात स्थल हैं। बनवीर की दीवार के बाहय भाग में देवी-देवताओं व अनेक नृत्य मुद्राओं की मूर्तियां बड़े ही कलात्मक ढंग से तराश कर लगायी गयी है। दीवार के दक्षिण में राजपूत पद्धति के बने प्राचीन महल भग्नावस्था में विद्यमान हैं। इनका जिर्णोद्धार महाराणा कुम्भा ने करवाया था, इसी कारण से इन्हें कुम्भा महल से पुकारा जाता है।

पद्मनी का ऐतिहासिक जौहर, उदयसिंह का जन्म और पन्नाधाय द्वारा उदयसिंह की रक्षा हेतु अपने पुत्र का बलिदान, मील-कृष्ण की आराधना की ऐतिहासिक घटनाओं को अपने में संजोए चित्तौड़ के दुर्ग के मध्य में स्थित 122 फीट ऊंचा नौ मंजिला स्मारक 'विजय स्तम्भ ' भारतीय स्थापत्य कला का श्रेष्ठतम प्रतीक है। इस स्तम्भ के आंतरिक एवं बाहय भागों में देवी-देवताओं की सैकड़ो मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

3.3.10 जयगढ़ दुर्ग:

मध्ययुगीन भारत को कुछ प्रमुख सैनिक इमारतों में से एक जयगढ़ दुर्ग की यह खास बात ही है कि इसमें तोपे ढ़ालने का विशाल कारखाना है जो शायद ही किसी अन्य भारतीय दुर्ग में हैं। कहा जाता है कि इस किले में संजोकर रखी हुई 'जयबाण तोप' एशिया की सबसे बडी तोप है। तोपों के कारण ही नहीं जयगढ़ अपने विशाल पानी के टांको के कारण भी जाना जाता है। जल संग्रहण की खास तकनीक के अंतर्गत जयगढ़ किले के चारों ओर पहाड़ियों पर बनी पक्की नालियों से बरसात का पानी इन टांको में एकत्र होता है। यही नहीं जालियों के द्वारा टांको के पानी को छानने यानी फिल्टर करने का भी पूरा पूरा प्रबंध किले में है। दुर्ग में पानी का सबसे बड़ा टांका लगभग 54 फूट गहरा है।

वर्तमान में जहां जयगढ़ बना हुआ है, कहते हैं पहले इस स्थान को चिल्ह का टोला कहा जाता था। जनश्रुति के अनुसार सुरक्षा की दृष्टि से इस स्थान को महत्वपूर्ण मानते हुए कभी यहां राजा मानसिंह ने अपना खजाना छिपाया था। ऐसा माना जाता है कि मिर्जा राजा जयसिंह ने 1621 - 1667 के बीच इसके कुछ भागों का निर्माण करवाया था परन्तु जयगढ के वर्तमान स्वरूप के निर्माता सवाई जयसिंह माने जाते हैं। प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार सवाई जयसिंह ने विद्याधर द्वारा इसके महलों के निर्माण का कार्य सन् 1726 में करवाया। इसे रहस्यमय दुर्ग भी कहा जाता है, चूंकि इसमें कई गुप्त सुरंगे है जिनसे होकर महलों के अंदर के हिस्सों में घूमा जा सकता है। महलों, बगीचों, अन्न भंडार, शस्त्रागार, अनेक मंदिरों का निर्माण भी दुर्ग में किया हुआ है। जयगढ़ के फैले हुए परकोटे, बुर्ज और प्रवेश द्वार पश्चिमी क्षितिज को छूते प्रतीत होते हैं।

3.3.11 नाहरगढ़:

जयगढ. की पहाडियों के पीछे स्थित गुलाबी शहर जयपुर का पहरेदार सा प्रतीत होता है-नाहरगढ का किला। विशाल बुर्जों और भव्य महलों वाले इस किले को सुदर्शनगढ़ भी कहा जाता है। कहते हैं नाहरगढ़ नाम नाहसिंह भोमिया के नाम से पडा जिनका स्मारक किले के भीतर मौजूद है। ऐसा कहा जाता है कि इस किले का निर्माण सवाई जयसिंह ने मराठों के विरूद्ध सुरक्षा की दृष्टि से करवाया था।

3.3.12 आम्बेर दुर्ग:

सात सौ वर्षो से भी अधिक समय तक कछवाहों की राजधानी रहा आम्बेर दुर्ग देवी अम्बा माता के नाम पर बना हुआ है। यह दुर्ग अपने स्थापत्य की दृष्टि से अन्य दुर्गो से सर्वथा भिन्न हैं। प्राय: सभी दुर्गों में जहां राजप्रासाद प्राचीर के भीतर समतल भू भाग पर बने पाये गए हैं वहीं आम्बेर दुर्ग में राजमहल ऊंचाई पर पर्वतीय ढलान पर इस तरह बने हैं कि इन्हें ही दुर्ग का स्वरूप दिया लगता है। आम्बेर दुर्ग से ऊपर ही जयगढ़ दुर्ग बना हुआ है। दूर से देखने पर लगता है कि आम्बेर का पार्श्व जयगढ़ है। सुरक्षा व्यवस्था इस दुर्ग की इतनी सुदृढ रही है कि इसे भेदना किसी के भी लिए लगभग असंभव सा ही था। वैसे कछवाहा राजाओं

के अद्भूत शौर्य और केन्द्रीय मुगल शासकों से राजनैतिक मित्रता के कारण यह दुर्ग बाहरी आक्रमणों से सदैव बचा रहा है।

लगभग दो शताब्दी पूर्व राजा मानसिंह, मिर्जा राजा जयसिंह और सवाई जयसिंह द्वारा निर्मित आम्बेर के महलों, मंडपों, बगीचों और मंदिरों का स्थापत्य मानों बोलता है। आम्बेर दुर्ग के नीचे मावठा तालाब और दीलाराम का बाग इतना खूबसूरत है कि पर्यटक मंत्रमुग्ध हो उठते हैं। दुर्ग के राजप्रासादों पर जाने का मार्ग दुर्गम चढाई का है। पर्यटक पैदल और हाथियों पर सवार होकर राजप्रसाद तक पहुंचते हैं। दुर्ग में दर्शनीय खंभो वाला दिवान-ए-आम और एक दो मंजिला चित्रित प्रवेश द्वार, गणेश पोल आगे के प्रांगण में हैं। महलों में बारीक ढंग से की हुई जाली की चिलमन, बारीक शीशों और गचकारी का कार्य देखते ही बनता है। आम्बेर में बने शिलादेवी जगत शिरोमणि, अम्बिकेश्वर महादेव आदि के मंदिरों का भी अपना अलग आकर्षण है।

3.3.13 अकबर का किला:

बादशाह अकबर द्वारा 1570 ई. में अजमेर शहर के मध्य में बनवाया गये अकबर के किले को अकबर का दौलतखाना या मैगजीन के रूप में भी जाना जाता है। हिन्दू-मुस्लिम दुर्ग निर्माण पद्धति से इस किले के बारे में कहते हैं कि अजमेर के ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने हेतु अकबर ने इसे बनवाया। प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार सन् 1570 से 1579 के मध्य अकबर लगभग प्रति वर्ष अजमेर आया तथा इसी किले में ठहरा। 1576 में महाराणा प्रताप के विरूद्ध हल्दीघाटी युद्ध की योजना को भी उसने यहीं अंतिम रूप दिया था। मुगल बादशाह जहांगीर ने मेवाड़ के महाराजा अमरसिंह को हराने के अभियान का संचालन यहीं से किया था। इस कारण से उसे तीन साल यहीं रूकना पड़ा था। जहांगीर के बाद शाहजहां औरंगजेब तथा बहादुरशाह प्रथम ने भी सामरिक दृष्टि से इस किले का उपयोग किया। मुगलों के बाद राठौड़ राजपूतों तथा मरोठों का इस पर आधिपत्य रहा। सन् 1801 में अंग्रेजों ने इस पर अपना अधिकार कर लिया तथा किले की मजबूत बनावट के कारण बाद में उन्होंने इसे अपना शस्त्रागार यानी मेगजीन बना लिया। सन् 1857 के गदर के समय अंग्रेजों तथा यूरोपियन्स द्वारा इस किले में शरण ली गयी थी।

इस किले का सर्वाधिक आकर्षक भाग इसका भव्य एवं ऊंचा दरवाजा है जो 54 फीट ऊंचा तथा 43 फीट चौड़ा है। दरवाजे के मध्य में सुंदर जाली और झरोखे बने हुए है। किले के बीचों-बीच स्थापत्यकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण चौकार आकृतिका सुंदर भवन, कक्ष आदि आने वालों को अपनी कला से सम्मोहित करते से प्रतीत होते हैं। किले में स्थित संगमरमरी गुसल, हरम, आलीशान चित्रकारी, जनाने कक्षों की दिवारों में पच्चीकारी का महत्वपूर्ण कार्य किया गया था। राज्य सरकार द्वारा इसे वर्ष 1968 में संरक्षित स्मारक घोषित कर दिया गया था। वर्तमान में यहां राजकीय संग्रहालय चल रहा है।

3.3.14 अलवर दुर्ग:

अरावली की पहाडियों पर समुद्र तल से 1960 फीट ऊंचाई पर रिथत अलवर दुर्ग की नींव 1106 में आमेर नरेश कालिक के द्वितीय पुत्र अलघराय ने एक छोटी सी गढ़ी का निर्माण करवाकर डाली थी। दुर्ग की लम्बाई उत्तर से दक्षिण की ओर तीन मील तथा चौडाई पूर्व से पश्चिम तक एक मील ओर परिधि सात मील है। इसमें 15 बडी और 52 छोटी बुर्जे हैं। कहा जाता है कि अलघराय के पुत्र सागर से निकुम्भ क्षत्रियों ने यह गढ़ी छिन ली और फिर विस्तार से इस दुर्ग का निर्माण करवाया। निकम्मी से भी बाद में अलावत खान ने इस दुर्ग को छिन लिया और उसने यहां विशाल द्वार और परकोटा बनवाया।

अलवर दुर्ग का आधिपत्य बदलता रहा है। कहते हैं सन 1582 में बाबर-इब्राहिम लोदी के युद्ध में अलावत खां के मरने के बाद यह दुर्ग बाबर के अधिकार में आ गया। बाबर ने बाद में अपने सामंत चैन सुल्तान को यह दुर्ग संभला दिया। उन्होंने इस पर एक बुर्ज भी बनायी जिसे आज भी 'काबुल खुर्द' के नाम से जाना जाता है। मूगलों से इस दुर्ग को शेरशाह ने छिना। अलवर के महाराजा प्रतापसिंह ने सन 1832 में इस पर अधिकार कर लिया और उन्होंने सीतारामजी का मंदिर भी दुर्ग पर बनाया।

3.3.15 गागरोन का किला:

झालावाड़ जिले में स्थित गागरोन का किला पूरे देश का एकमात्र ऐसा किला है जो शुक नीति के 8 में से 5 गुण अपने में रखता हुआ कठोर चट्टान पर बना हुआ है। यही नहीं कालीसिंध और आहू नदियों के संगम पर बने इस किले के चारों ओर बहता गहरा जल, दुर्गम पथ, चौतरफा विशाल खाई तथा मजबूत दीवारों के कारण इसे अपने आप में अनूठा और अद्भूत भी कहा जाता है। गागरोन की गणना राज्य के प्राचीनतम दुर्ग चित्तौड़, रणथम्भौर, जालौर आदि के साथ की जाती है। इस किले का इस रूप में भी महत्व है कि यह शौर्य ही नही भक्ति और त्याग की गाथाओं का भी उदाहरण है।

महान संत रामांनद के शिष्यसंत पीपा इसी गागरोन के शासक रहे हैं जिन्होंने राजसी वैभव त्यागकर राज्य अपने अनुज अचलदास खींची को सौंप दिया था। गागरोन में मुस्लिम संत पीर मिट्ठें साहब की दरगाह भी है जिसका उर्स आज भी प्रतिवर्ष यहां मनाया जाता है। कहते हैं संत मिटते खुरासान से भारत आए थे।

गागरोन का जौहर भी विश्वप्रसिद्ध हैं। कहते हैं गागरोन के शासक अचलदास की महारानी उमादे इतनी सुदर थी कि उन्हें पाने के लिए 1436 में मालवा के सुलान महमूद खिलजी ने किले पर आक्रमण किया था। आक्रमण के दौरान हुए भीषण युद्ध में राजपूत वीरता से लडे फिर भी खिलजी जब परास्त नहीं हुआ तो केसरिया बाना पहनकर उन्होंने अंतिम सांस तक किले से बाहर युद्ध किया और किले के अंदर सभी स्त्रियों ने जौहर कर लिया।

3.3.16 रणथम्भौर:

राज्य के सवाईमाधोपुर जिले से लगभग 8 मील की दूरी पर अरावली पर्वत श्रृंखलाओं में रणथम्भौर विषम आकृतिवाली सात पहाडियों से घिरा है। इसका वास्तविक नाम रन्तःपुर

अर्थात् 'रण की घाटी में स्थित नगर'। इसे कभी रणस्तम्भ्पुर भी कहा जाता है। 'रण' दरअसल उस पहाडी का नाम है जो किले से कुछ नीचे है और थंभ वह है जिस पर यह किला बना है। कालान्तर में रणस्तम्भ्पुर, रणथम्भौर के नाम से पुकारा जाने लगा। रणथम्भौर किला चारों ओर से घने जंगल से घिरा है। प्रकृति के बीच में अभेद्य बने रणथम्मौर की किलेबन्दी गजब की है। दुर्ग का निर्माण चौहान राजा स्यालदक्ष ने 944 ई. में करवाया।

राणा हम्मीर की आन-बान के प्रतीक रणथम्भौर पर आक्रमण दर आक्रमण होते रहे है। सन् 1301 में अलाउद्दीन ने इस किले पर जबरदस्त हमला किया। राणा हम्मीर ने वीरता से हमले का सामना किया। रसद की कमी और अपने ही सरदार सुरजनसिह की धोखाधड़ी से हम्मीर को किले के द्वार खोलने पड़े और बहादुरी से लड़ते-लड़ते राणा वीरगति को प्राप्त हुए। सन् 1454 में मालवा के शासक ग्यासुदीन ने इसे जीतने का असफल प्रयास किया। राणा सांगा ने इसे अपने पुत्रों विकमादित्य ओर उदयसिंह को दिया। राणा रत्नसिंह ने भी इसे हथियाने का षडयंत्र रचा, इससे क्षुब्ध रानी कर्मावती ने इसे बाबर को देना चाहा परन्तु इससे पूर्व ही बूंदी के हाड़ा राजपूत राजा ने इसे अपने कब्जे में ले लिया। मुगल साम्राज्य के पराभव के उपरान्त यह दुर्ग जयपुर के महाराजा को सौंप दिया गया। गुलामवंशीय सुल्तानों से लेकर आधुनिक काल में मराठों तक रणथम्भौर पर हुए आधिपत्य के लिए हुए संघर्षो की लम्बी दास्तान हैं। दुर्ग में बने हम्मीर महल, रानी महल, हम्मीर की कचहरी, सुपारी महल, बादल महल, जीरा-भौंरा, 32 खंभों की छतरी, रनिहाड़ तालाब, जैन मंदिर तथा पूरे देश में प्रसिद्ध गणेशजी का मंदिर अपनी भव्यता के कारण दर्शनीय हैं।

3.3.17 कुम्भलगढ़:

कभी मत्सयेन्द्र दुर्ग के नाम से जाना जाने वाला कुम्भलगढ़ संभवत: भारत का पहला ऐसा किला भी है जिसकी प्राचीर 36 किलोमीटर तक फैली है, कहा तो यह भी जाता है कि चीन की दीवार के बाद दूसरी सबसे बड़ी दीवार कुम्भलगढ़ की ही है। किलेबन्दी में कुम्भलगढ़ चित्तौड के किले के बाद दूसरा देश का सबसे बड़ा दुर्ग है। दुर्ग रचना की दृष्टि से यह चित्तौड के दुर्ग से ही नहीं बल्कि भारत के सभी दुर्गों में विलक्षण और अनुपम हैं। मौर्य राजा संप्रति के समय में बने प्राचीन दुर्ग के भग्नावशेषों पर विक्रम संवत 1495 के शुभ मुहूर्त में आज के कुम्भलगढ़ का निमार्ण कार्य प्रारम्भ किया गया। इतिहासकार विनोद के अनुसार कुम्भलगढ़ का निर्माण कार्य विक्रम संवत 1515 तक विधिवत् चलता रहा। कई बार स्थानीय बाधाओं के बावजूद हजारों मजदूरों के सहयोग से अंतत: विक्रम संवत 1515 की चैत्र शुक्ला 13 को दुर्ग की प्रतिष्ठा की गई। महाराणा कुम्भा के प्रमुख शिल्पी और वास्तुशास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान मंडन की सूझ-बूझ और देख-रेख में बनाए गए कुम्भलगढ़ के प्रतिष्ठा के अवसर पर इसकी सारी प्राचीरों को दीपमालाओं से सजाया गया। महाराणा कुम्भा के नाम पर ही दुर्ग का नाम पहले 'कुम्भपुर' और कुछ समय बाद ' कुम्भलगढ़ ' पडा।

किले की विस्तृत प्राचीर के साथ नीलकंठ महादेव मन्दिर के साथ ही 52 जिनालय और बहुत से अन्य जैन मन्दिरों, भग्नावशेषों का समूह अत्याधिक आकृष्ट करता दिखलायी देता

है। दुर्ग में महाराणा कुम्भा से लेकर महाराणा राजसिंह का परिवार रहता आया है। यही वह दुर्ग हैं जहां पृथ्वीराज और इतिहास वीर राणा सांगा के बचपन के दिन बीते थे तो उदयपुर को बसाने वाले महाराणा उदयसिंह यहीं रहे। पन्ना धाय ने राणा उदयसिंह को कुम्भलगढ में ही छिपाकर पाला पोसा। महाराणा प्रताप ने इसी कुम्भलगढ़ से सैन्य शक्ति अर्जित की। हल्दीघाटी की हार के बाद महाराणा प्रताप काफी समय तक यहीं रहे थे, उस समय शंहशाह अकबर का सितारा बुलंदी पर था और अकबर के सेनापतियों ने कई बार कुम्भलगढ़ पर आक्रमण भी किया था। एक बार को छोड़कर यह दुर्ग अपराजेय ही रहा।

3.3.18 सिवाणा का किला:

जालौर जिले से 30 मील दूर पर्वत शिखरों के मध्य स्थित सिवाणा के किले का निर्माण प्रतापी पंवार शासक भोज के पुत्र वीरनारायण पंवार ने दसवीं शताब्दी में करवाया था। वीरता और शौर्य की रोमांचक गाथाओं को अपने में समेटे यह किला संकटकाल में मारवाड़ के राजाओं की शरणस्थली भी रहा है। राव मालदेव ने शेरशाहकी सेना द्वारा पीछा किए जाने पर इसी किले में आश्रय लिया था तो उनके पुत्र चन्द्रसेन ने इस किले को केन्द्र बनाकर मुगलों के विरूद्ध सम्पर्क किया था।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने 1310 ई. के लगभग सिवाणा किले पर आक्रमण किया था। हालांकि दुर्गाध्यक्ष सातलदेव ने खिलजी का डटकर मुकाबला किया परन्तु युद्ध भूमि में वे वीरगति को प्राप्त हुए। दुर्ग की ललनाओं ने जौहर का अनुष्ठान किया। सिवाना के साथ सातल-सोम और राठौड़ वीर कला की अद्भुत शौर्य गाथाएं भी जुडी हुई है।

3.3.19 अचलगढ:

पर्वतीय दुर्गो में अचलगढ की अपनी विशिष्ट पहचान है। आबू का पुराना किला परमार शासकों द्वारा बनवाया गया था परन्तु इस किले के क्षत-विक्षत होने पर प्राचीन भग्नावेषों पर 1452 के लगभग राणा कुम्भा ने नवीन अचलगढ दुर्ग का निर्माण करवाया। इस किले का विशेष सामरिक महत्व रहा है।

किले में बहुत से जैन मंदिर बने हुए है। अचलेश्वर महादेव मंदिर, मंदाकिनी कुण्ड, महाराव मानसिंह का स्मारक आदि यहां के प्रमुख ऐतिहासिक स्मारक है।

3.3.20 मांडलगढ:

भीलवाड़ा नगर से 52 किलोमीटर दूर उत्तर में अरावली पर्वत श्रृंखला के मध्य बना मांडलगढ़ कभी सिद्ध योगियों का प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। श्रृंगी ऋषि शिलालेख के अनुसार "मंडलाकृति" का होने के कारण ही संभवतया मेवाड़ के इस दुर्ग का नाम मांडलगढ पडा। इस किले को कभी अकबर ने महाराणा प्रताप के विरूद्ध सैनिक अभियान का केन्द्र बनाकर इस्तेमाल किया था तो 1576 ई. के प्रसिद्ध हल्दीघाटी युद्ध से पहले कुंवर मानसिंह ने लगभग एक माह तक मांडलगढ में रहकर शाही सेना को युद्ध के लिए तैयार किया था। जिन राजवंशों के अधीन यह किला रहा उन्होंने यहां भवन, मंदिर, मस्जिद व कई दर्शनीय स्थलों का निर्माण करवाया।

3.3.21 भटनेर दुर्ग:

भाटियों की वीरता का प्रतीक हनुमानगढ़ जिले का भटनेर दुर्ग घग्घर नदी के मुहाने पर बना हुआ है। कहा जाता है कि भाटी राजा भूपत ने तीसरी शताब्दी ई. में इस दुर्ग का निर्माण करवाया था। दुर्ग 52 बीघा भूमि के घेरे बना हुआ है तथा इसमें अनेक विशाल बुर्ज हैं। विशिष्ट सामरिक स्थिति के कारण भटनेर पर निरंतर हमले होते रहे हैं। महमूद गजनवी ने 1001 ई. में भटनेर पर अधिकार कर लिया था। भटनेर के किले पर हुमांयू के भाई कामरां का भी अधिकार रहा है। बाद में अधिकांश भटनेर बीकानेर के राजाओं के कब्जे में ही रहा।

3.3.22 नीमराणा का किला

अलवर जिले में स्थित यह किला आज पर्यटन की दृष्टि से खासा महत्वपूर्ण हैं। दिल्ली से करीब 122 किलोमीटर दूर जयपुर-दिल्ली रोड के पास ही बने इस किले को पंचमहल के नाम से भी जाना जाता है। किले का निर्माण 1464 में करवाया गया था। सन् 1920 तक पहुंचतेपहुंचते इसके स्वरूप में काफी परिवर्तन आ गया ओर चौहान शासकों का यह किला आजादी के बाद वीरान रहने लगा। लगभग तीन एकड़ पहाड़ी भूमि पर बने पांच मंजिला इस किले को इसके अंतिम उत्तराधिकारी राजा राजेन्द्र सिंह द्वारा छोड़े जाने के बाद यह धीरे-धीरे खंडहर का रूप लेने लगा था। किले को हेरिटेज होटल के रूप में परिवर्तित कर इसका जिर्णोद्वार करने के कारण ही आज यह पर्यटन की दृष्टि से अपनी विशिष्ट पहचान रखने लगा है।

3.4 राजप्रासाद एवं महल :

राजस्थान के भव्य राजप्रासाद, सुंदर मंदिर व स्तम्भ वास्तुकला के अनुपम उदाहरण है। राजस्थान व विभिन्न क्षेत्रों में बनी ऐतिहासिक इमारतों में मुगल एवं राजपूती शैली का प्रभावी समन्वय है। राज्य कायम करने के साथ ही रक्षा की दृष्टि से किले का निर्माण एवं किले में ही अथवा किले के नीचे तत्कालीन शासकोंने अपने-अपने राज्य में भव्य राजप्रासाद बनवाए। मुगल स्थापत्य के प्रभाव के पूर्व के राजप्रसाद जहां सादा छोटे कमरे वाले राजपूत स्थापत्य कला के मौलिक प्रतीक है वहीं राजपूत मुगल संबंधों के कारण राजभवनों में फेरबदल भी निरंतर होता रहा है। फव्वारों एवं जलाशयों से युक्त बाग-बगीचे, भव्य चित्रशालाएं, बारहदरियां, गवाक्ष-झरोखे, दीवाने आम आदि में कला की उत्कृष्टता देखते ही बनती है। जयपुर, उदयपुर, बीकानेर, जोधपुर, अलवर कोटा,बूंदी, जैसलमेर, भरतपुर, करौली आदि राजभवन स्थापत्य कला के अप्रतिम उदाहरण है।

अजमेर में पुष्कर झील के पास बना राजा मानसिंह का पूर्व निवास मान महल, पुष्कर महल, अलवर का विनय विलास महल तथा महाराजा जयसिंह द्वारा निर्मित विजय मंदिर पैलेस के अलावा सिलिसेढ पैलेस आज भी पर्यटकों के लिए असीम आकर्षण लिए है। बीकानेर का लालगढ पैलेस, गजनेर पैलेस, लक्ष्मी विलास पैलेस ,डूंगरपुर का उदय विलास पैलेस, जयपुर का सिटी पैलेस, आमेर महल, जोधपुर का उम्मेद भवन पैलेस, उदयपुर का सिटी पैलेस, सज्जनगढ

आदि अपने स्थापत्य सौंदर्य एवं वास्तुकला से इतने भव्य है कि आज भी जीवंत प्रतीक होते है। इनमें से कुछ तो अब हेरिटेज होटल के रूप में भी परिवर्तित हो चुके है।

3.5 कीर्ति स्तम्भ:

राजस्थान के चित्तौड़गढ दुर्ग में राणा कुम्भा द्वारा बनवाया गया कीर्ति स्तम्भ अथवा विजय स्तम्भ मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला का अप्रतिम उदाहरण है। चित्तौड़गढ के दुर्ग के मध्य में स्थित इस 120 फीट ऊंचे और नौ मंजिले स्मारक "कीर्ति स्तम्भ" का निर्माण लोक विश्वास के अनुसार महाराणा कुम्भा ने मांडू(मालवा) के सुल्तान महमूद खिलजी पर अपनी विजय के उपलक्ष्य में 1440 ई. में करवाया जिसकी प्रतिष्ठा 1488 ई. में की गयी थी।

कीर्ति स्तम्भ में ब्रहमा, विष्णु, शिव-पार्वती, अर्द्धनारीश्वर, दिक्पाल तथा रामायण महाभारत के पात्रों और विष्णु के प्राय: सभी अवतारों की अत्यन्त सजीव और कलात्मक देव प्रतिमाएं उत्कीर्ण है। स्तम्भ में अंदर से ऊपर तक सीढियां बनी है तथा प्रत्येक मंजिल पर चारों दिशाओं में वास्तुकला के बेहतरीन झरोखे बनाए हुए है। कीर्ति स्तम्भ को पौराणिक हिन्दू मूर्तिकला का अनमोल खजाना भी कहा जाता है। इसके सनातन सौंदर्य को दिल्ली की कुतुबमीनार और रोम के ट्रॉजन स्तम्भ से भी भव्य माना जाता है।

3.6 अढाई दिन का झौंपडा:

अजमेर में अढाई दिन के झोंपड़े के रूप में प्रसिद्ध एक इमारत भारतीय इस्लामी वास्तुशिल्प की बेहतरीन मिसाल है। अलग तरह के खंभे और ध्वस्त मीनारों के साथ अपनी मेहरानी चिलमन के कारण यह इमारत वास्तुशिल्प की उत्क भट कलाकृति प्रतीत होती है। शहर के बाहरी हिस्से में खाजा साहब दरगाह से कुछ ही दूरी पर स्थित "ढाई दिन के झौंपड़े" से प्रसिद्ध इस इमारत के नामकरण की भी रोचक दास्तां है। कहने में इसे निर्मित होने में मात्र अढाई दिन का समय लगा था। एक जनश्रुति यह भी है कि कभी यहां मुसलमान फकीर पंजाबशाह का ढाई दिन का उर्स लगता था तभी से यह अढाई दिन का झोपड़ा कहलाया।

मूल रूप से अढाई दिन का झोपड़ा दरअसल मंदिर के अंदर बनी एक संस्कृत पाठशाला थी। इस्वी सन् 1193 में मौहम्मद गौरी ने अजमेर पर विजय प्राप्त करने के बाद मात्र अढाई दिन में इस इमारत में खेमों युक्त दालान के सामने सात मेहराबों वाली दीवार बना कर इसे मस्जिद में परिवर्तित कर दिया था। इमारत के भग्नावशेषों से यह अनुमान स्वत: ही लगाया जा सकता है कि कभी यह स्थापत्यकला की बेहतरीन इमारत रही है।

3.7 हवेलियां:

राजस्थान में हवेलियों के निर्माण की स्थापत्यकला भारतीय वास्तुकला के अनुसार ही रही है। राजस्थान के नगरों में सामन्त और सेठ-साहुकारों ने भव्य हवेलियों का निर्माण किया है। शेखावटी हवेलियों के अंतर्गत सदारशहर, मण्डावा, झुंझुनू ,नवलगढ फतेहपुर, रामगढ, रतनगढ ,चुरू आदि की हवेलियां, के भित्ती चित्र तथा स्थापत्य में ऐसा जादू है कि आज भी विदेशों से केवल उन्हें देखने भर के लिए पर्यटक खींचे चले आते है। जैसलमेर की सालमसिंह हवेली, पटवों की हवेली, नथमल की हवेली के झरोखे, पत्थर की जाली आदि का बारीक कार्य

देखते ही बनता है। इसी प्रकार बीकानेर की रामपुरिया, डागा की हवेलियां, कोटा, भरतपुर, करौली की हवेलियां भी अपनी कलात्मकता के कारण विश्वप्रसिद्ध है।

3.8 देवी देवताओं के मंदिर:

राजस्थान में 700 ई. से 1000 ई. तक मंदिर निर्माण का विकास काल कहलाता है। इसके बाद 1000 ई. से 1300 ई. में तो मंदिर निर्माण की इतनी शैलियां विकसित हुई कि इस पूरे दौर को राजस्थान में मंदिर निर्माण का चरमोत्कर्ष काल कहा जाने लगा। राजस्थान में 8 वीं एवं 9 वीं शताब्दी के सर्वाधिक मंदिर ओसिया चित्तौड़गढ एवं आभानेरी में है। इसके अलावा भुण्डाना, वुचकला, पीपाड़, लाम्बा आदि में भी ओसियां कला के मिलते-जुलते मंदिर बने। गोठ मंगलोर का दधिमति माता, जयपुर के पास भवानीपुर में नकरीमाता नीमान में मगरमण्डी माता मंदिर, बालोतरा के पास खेड़ में कामेश्वर, रणछोड़ जी के मंदिर 9 वीं शताब्दी के बताये जाते है।

सीकर में हर्षनाल का मंदिर, सारिस्का के दक्षिण में पारानगर का मंदिर, किराडू का सोमेश्वर मंदिर, मेड़ता का जसनगर मंदिर आदि गुर्जर-प्रतिहार कला के अप्रतिम उदाहरण है। ये सभी 10 वीं से 11 वीं शताब्दी के माने जाते है। बाड़ोली का धारेश्वर मंदिर, उदयपुर का जगत अंबिका मंदिर, उदयपुर में एकलिंगजी के पास नागदा का सास-बहू मंदिर, मेवाड़ में तूसमंदेसर का सूर्य मन्दिर, आहाड़ का मीरा मंदिर, एकलिंगजी का लकुलीश मंदिर, सिरोही में ब्रहास्वामी आदि मंदिर हालांकि अब भग्नावशेष के रूप में है परन्तु आज भी अपने स्थापत्य सौंदर्य से ये अद्भूत आकर्षण लिए है।

राजस्थान में चित्तौड़गढ दुर्ग का समाधीश्वर मंदिर, ओसिया में सच्चियां माता का, विष्णु मंदिर, महावीर मंदिर, किराडू का शिव मंदिर, जालौर के तोपखाना देस, अजमेर के ढाई दिन के झोंपड़े आदि के प्राचीन मंदिर अपने' विशिष्ट प्रकार के द्वार, वैरीर्पट्ट में अन्तर्पट्ट के कारण अपनी अलग पहचान लिए थे। 10 वीं और 13 वीं शताब्दी में। राज्य में जैन मंदिर भी काफी संख्या में बनें। ओसियां, पाली जिले के सेवाड़ी, घाणोराव, पाली नाड़ौल-नारलाई, झालरापाटन आदि के साथ ही विभिन्न अन्य स्थानों प्राचीन जैन मंदिर आज भी अपने स्थापत्य के कारण आकर्षित करते है। आबूरोड के पास चंद्रावती के मंदिर नष्ट हो चुके है परन्तु माऊंट आबू के देलवाड़ा मंदिर समूह आज भी अपने स्थापत्य कला सौंदर्य से जगप्रसिद्ध है तथा निरंतर पर्यटकों को आकर्षित कर रहे है।

राज्य के भूमिज शैलीके मंदिरों में 1010 से 1075 ई. के मध्य बने मंदिर आज भी अपनी विशिष्ट पहचान लिए है। ऐसे मंदिरों में पाली का सेवाड़ी जैन मंदिर, मैनाल का महानालेश्वर मंदिर पंचटन व पंचलूम है। झालरापाटन का सूर्य मंदिर भी इसी शैली का है। पन्द्रहवीं शताब्दी में बने रणकपुर के सूर्य मंदिर, चित्तौड़ का अद्भुत्नाथ मंदिर अपनी विशिष्ट शैलीके कारण आज भी अपनी अलग शान रखता है। चौदहवीं शताब्दी एवं उसके बाद की मंदिर शैलीगुजरात के सोलंकियों के नाम से जानी जाती है। इस काल के बड़े मंदिरों में उदयपुर के

जगदीश जी, एकलिंग जी के मुख्य मंदिर, केशोरायपाटन के मंदिर और आमेर के जगत शिरोमणी मंदिर प्रमुख है।

3.9 स्मारक:

किसी घटना विशेष एवं व्यक्ति विशेष की स्मृति को चिरस्थायी रखे जाने के लिए स्मारकों का निर्माण किए जाने की हमारे यहां सुदीर्ध परंपरा रही है। राजस्थान की स्थापत्य कला में स्मारकों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बूंदी में राव अनिरूद्ध द्वारा बनवाया चौरासी खंभों का स्मारक हो या फिर जोधपुर में महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय की याद में सफेद संगमरमर से निर्मित शाही स्मारकों का समूह जसवंत थड़ा, पर्यटकों के लिए ये आकर्षण के केन्द्र है। इसी प्रकार उदयपुर का महाराणा प्रताप स्मारक, हल्दीघाटी में महाराणा प्रताप के घोड़े चेतक का स्मारक, बीकानेर में सागर तालाब के पास बनी वहां के महाराजाओं की छतरियां, जयपुर में चित्रकारी के कारण विख्यात आमेर के पास राजा मानसिंह प्रथम की छतरी, गैटोर की छतरियों का समूह आदि अपनी भव्यता के कारण पर्यटन की दृष्टि से विशेषमहत्व रखती है। कोटा का छत्रविलास बाग, जैसलमेर का बडा बाग, अलवर मे द्वी महारानी की छतरी, फतह गुम्बद, करौली में गोपालसिंह की छतरी, रामगढ में सेठों की छतरी आदि का स्थापत्य सौन्दर्य भी देखते ही बनता है।

3.10 सारांश:

राजस्थान के गौरवमयी इतिहास की गवाह यहां की ऐतिहासिक इमारते हैं। इन इमारतों में अतीत की गौरवगाथाएं ही नहीं छुपी है बल्कि उस जमाने की समृद्ध स्थापत्य एवं वास्तुकला भी सहज ही देखी जा सकती है। राजस्थान के किले, महल एवं गढ़ सुरक्षा की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं रहे हैं बल्कि अपनी बनावट एवं सुन्दरता के लिए भी पूरे विश्व में जाने जाते हैं। पूरे देश में राजस्थान ही वह प्रदेश हैं जहां पर महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के बाद सर्वाधिक किले, गढ और दुर्ग बने हुए हैं। एक गणना के अनुसार राजस्थान में 250 से अधिक दुर्ग व गढ़ हैं। इनमें से बहुत से तो संरक्षण के अभाव में जीण-शीर्ण हो चुके हैं परन्तु अभी भी कुछ महत्वपूर्ण अपनी उपस्थिति से इतिहास को जीवंत किए हुए हैं, उन्हीं के बारे में इस इकाई में जानकारी दी गयी है।

ऐतिहासिक इमारतों में किलों, गढ़ो एवं दुर्गो के अलावा यहां के राजप्रासाद एवं महल भी विशेषस्थान रखते हैं। राजप्रासाद एवं महलों की सुन्दरता देखते ही बनती है तो इतिहास प्रसिद्ध देवालय एवं मंदिरों का स्थापत्य सौन्दर्य भी मुग्ध करने वाला है। प्राचीन स्मारक, अपनी विशिष्ट बनावट की ऐतिहासिक इमारतों में कीर्ति स्तम्भ, ढाई दिन का झोपंड़ा आदि भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। इन सबके बारे में आपको इस इकाई में बताया गया है ताकि आप इनके संरक्षण एवं विकास में सहभागी बनने के साथ ही पर्यटन की दृष्टि से भी इनके महत्व को समझ सकें।

बोध प्रश्न :

1. “किले, गढ़ एवं दुर्ग इतिहास के मूक साक्षी हैं।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में राजस्थान के किलों, गढ़ो एवं दुर्गो पर प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

2. ढाई दिन का झौंपड़ा ′ किस प्रकार की इमारत है?

   .....

   .....

3. राजस्थान के प्राचीन स्मारकों के बारे में संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

4. कीर्ति स्तम्भ कहां स्थित है? यह किसलिए प्रसिद्ध है?

   .....

   .....

5. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में राजस्थान में देवी-देवताओं के मंदिरों के महत्व पर प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

इकाई - 4: राजस्थान के संग्रहालय

रूपरेखा :

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 संग्रहालयों का इतिहास

4.3 देश के प्रमुख संग्रहालय

4.4 राजस्थान में संग्रहालयो की स्थापना

4.5 प्रमुख संग्रहालय

- 4.5.1 राजपूताना संग्रहालय, अजमेर
- 4.5.2 राजकीय संग्रहालय, अलवर
- 4.5.3 राजकीय संग्रहालय, भरतपुर
- 4.5.4 राजकीय संग्रहालय, बीकानेर
- 4.5.5 करणी संग्रहालय, बीकानेर
- 4.5.6 लालगढ म्यूजियम, बीकानेर
- 4.5.7 राजकीय संग्रहालय,चित्तौड़
- 4.5.8 राजकीय संग्रहालय, डूंगरपुर
- 4.5.9 अल्बर्ट संग्रहालय, जयपुर
- 4.5.10 सिटी पैलेस संग्रहालय, जयपुर
- 4.5.11 राजकीय संग्रहालय, झालावाड़
- 4.5.12 मेहरानगढ संग्रहालय, जोधपुर
- 4.5.13 राजकीय संग्रहालय, जोधपुर
- 4.5.14 राजकीय संग्रहालय, कोटा
- 4.5.15 राजकीय संग्रहालय, माउंट आबू
- 4.5.16 राजकीय संग्रहालय, उदयपुर

4.6 कुछ विशिष्ट संग्रहालय

- 4.6.1 भारतीय लोक कला संग्रहालय, उदयपुर
- 4.6.2 गुड़ियाओं का संग्रहालय 'गुड़ियाघर '
- 4.6.3 जनजाति संग्रहालय, उदयपुर
- 4.6.4 लोक संस्कृति शोध संस्थान संग्रहालय, चुरू
- 4.6.5 प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय
- 4.6.6 वुड फौसिल पार्क, जैसलमेर

4.7 सारांश

4.0 उद्देश्य:

इस इकाई को पढने के बाद आप -

- भारत में संग्रहालयों की स्थापना के इतिहास को जान सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के संग्रहालयों के बारे में अपनी समझ बढ़ा सकेंगे।
- राजस्थान में संग्रहालयों की स्थापना के अतीत से अवगत हो सकेंगे।
- प्रमुख संग्रहालयों के बारे में जान सकेंगें।
- राजस्थान के विशिष्ट संग्रहालयों के महत्व से अवगत हो सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना:

किसी भी स्थान विशेष के इतिहास, वहां की संस्कृति, कला के बारे में वहां के संग्रहालयों से जाना जा सकता है। कला, संस्कृति और इतिहास की समृद्ध विरासत का वर्तमान से नाता जोड़ने, सांस्कृतिक स्त्रोतों को जानने के उत्सुक अनुसंधानकर्ताओं की इतिहास से संबद्धता स्थापित करने की सोच ने ही संभवत: संग्रहालयों की स्थापना को मूर्त रूप दिया। सभ्यता एवं संस्कृति के अनेक पहलूओं को अपने में समाए संग्रहालय दरअसल इतिहास की अनमोल धरोहर कहे जा सकते हैं। भारत में 19 वीं शताब्दी में अंग्रेजों ने संग्रहालयों की स्थापना की दिशा में पहल की। समृद्ध भारत की प्राचीन संस्कृति, विरासत के अन्वेषण के उद्देश्य से प्रारंभ हुई संग्रहालय स्थापना की पहल का ही परिणाम था कि देश में लगभग सभी प्रमुख स्थानों पर संग्रहालय दर संग्रहालय स्थापित होते चले गए। प्राचीन सिक्के, वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र, शिलालेख, पाषण एवं धातु की मूर्तियां, औजार, पाण्डुलिपियां, चित्रकला आदि इतिहास की अनेकानेक बेशकीमती धरोहर का संरक्षण संग्रहालयों में आज भी हमें हमारे इतिहास की जीवन्त दास्तान है। संग्रहालयों की स्थापना का क्या रहा है इतिहास, कैसे इस संबंध में पहले-पहल हुआ विचार, राजस्थान में संग्रहालयों के अतीत की क्या है कहानी, कौन-कौन से हैं राजस्थान के प्रमुख और विशिष्ट संग्रहालय आईए, जानें -

4.2 संग्रहालयों का इतिहास:

संग्रहालयों को इतिहास का जीवन्त दस्तावेज कहा जा सकता है। इतिहास में झांकना हो, इतिहास का अन्वेषण करना हो तो संग्रहालयों में संजोयी वस्तुओं की धरोहर विशेष रूप से उपयोगी हो सकती है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, यहां के गौरवमयी इतिहास की बानगी संग्रहालयों में देखी जा सकती है। अतीत की बेशकीमती धरोहरों का संरक्षण भारत के संग्रहालयों में देखा जा सकता है।

भारत के गौरवमयी अतीत, यहां की सभ्यता और संस्कृति, भौगोलिक दशाओं, वानस्पितिक धरोहर आदि के अन्वेषण के उद्देश्य से 19 वीं शताब्दी में अंग्रेजों ने देश में संग्रहालयों की स्थापना की नींव रखी। उन्होंने पहले-पहल देश में भारतीय भू सर्वेक्षण एवं वनस्पति सर्वेक्षण जैसी संस्थाओं की स्थापना की। इनके माध्यम से भारत की विविधता से भरी भौगोलिए दशाओं एवं वानस्पितिंक धरोहर का अन्वेषण जहां किया गया वहीं प्राचीन सभ्यता एवं

संस्कृति के अवशेषों के आधार पर अतीत को जानने की दिशा में पुरातत्व सर्वेक्षण एवं एशियाटिक सोसायटी जैसी संस्थाओं की स्थापना देश में की गयी। जैसे-जैसे अतीत से जुड़ी महत्वपूर्ण वस्तुओं का संग्रहण होता गया, उनके लिए स्थान-विशेष पर संग्रहालयों की स्थापना की जाने लगी।

भारत में सर्वप्रथम संग्रहालया की स्थापना 1875 में कोलकाता में की गयी। वायसराय लॉर्ड कर्जन एवं पुरातत्व सर्वेक्षण के अध्यक्ष सर जॉन मार्शल के प्रयासों से स्थापित देश के इस पहले संग्रहालय में इतिहास से जुडी बेशकीमती वस्तुओं का संग्रहण हैं। स्थान-विशेष में पायी जाने वाली वस्तुओं का संग्रहण वहीं पर किए जाने के उद्देश्य से देशभर में संग्रहालय दर संग्रहालय खुलते चले गए।

4.3 देश के प्रमुख संग्रहालय:

देश के लगभग सभी प्रमुख पर्यटन स्थलों पर संग्रहालयों की स्थापना की गयी हैं। वैसे तो देश के लगभग सभी संग्रहालयों में भारतीय संस्कृति की विरासत किसी न किसी रूप में संजोयी हुई हैं परन्तु अपनी विशिष्ट विशेषताओं के कारण कुछ संग्रहालय विश्वभर में अपनी पहचान रखते हैं। इनमें प्रमुख हैं-

- **राष्ट्रीय संग्रहालय :**

देश की राजधानी दिल्ली के इस संग्रहालय की स्थापना 1960 में की गयी थी। भारत की अमूल्य निधि इस संग्रहालय में विभिन्न वीथियों में संजोकर रखी गयी है। ऐतिहासिक कालक्रमानुसार व्यवस्थित इतिहास की बेशकीमती वस्तुओं क अंतर्गत राष्ट्रीय संग्रहालय में सिंधु घाटी सभ्यता, मौर्य शासनकाल, हड़प्पा आदि सभ्यताओं के मिले अवशेषों के साथ ही प्राचीन मूर्तियां और शुंग कला के नमूने रखे हुए हैं। संग्रहालय में सर आरेल स्टीन द्वारा खोज की गयी रेशम मार्ग की वस्तुओं का संग्रह है तो प्राचीन सभ्यताओं से संबद्ध बेशकीमती सामान भी विशेष रूप से संजोकर रखा गया है। संग्रहालय में सजायी हुई देश की बहुत सी अमूल्य निधियां पहले राष्ट्रपति भवन में सुरक्षित थी जिन्हें भी बाद में यहां स्थानान्तरित कर दिया गया।

- **राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय**

इस संग्रहालय में 1657 के बाद बने भारतीय चित्र एवं मूर्तियां का प्रदर्शन किया हुआ है। संग्रहालय की स्थायी कला दीर्घाओं में जहां समृद्ध कलाकृतियां संजोकर रखी हुई है वहीं कुछ अन्य कला दीर्घाओं में समकालीन कला के प्रदर्शन होते रहते हैं।

- **गांधी स्मारक संग्रहालय**

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की स्मृतियों से जुड़े राजधानी दिल्ली के राजघाट स्थित इस संग्रहालय में बापू के जीवन से जुड़ी वस्तुओं, सूचनाओं और चित्रों का प्रदर्शन किया हुआ है। संग्रहालय में महात्मा गांधी के लिखे पत्र, उनकी पुस्तकें आदि वस्तुएं करीने से सजाकर रखी हुई हैं।

- **वस्त्र संग्रहालय**

भारत के विभिन्न अंचलों में पहने जाने वाले वस्त्रों की झलक अहमदाबाद स्थित इस संग्रहालय में देखी जा सकती है। 1949 में स्थापित इस संग्रहालय में अलग-अलग स्थानों पर

वहाँ की संस्कृति के अनुरूप पहने जाने वाले महिला एवं पुरूष वस्त्रों की छोटी सी बानगी से पूरे भारत को जाना जा सकता है।

- **सालारजंग संग्रहालय :**

भारत में निजामो के अपने ठाट-बात रहे हैं। हैदराबाद स्थित इस संग्रहालय में उनकी शानौ-शौकत की अनूठी वस्तुओं का बेशकीमती संग्रह देखते ही बनता है। देशभर में विख्यात सालारजंग संग्रहालय जीवन से जुडी उम्दा किस्म की अद्भूत वस्तुओं का खजाना है।

4.4 राजस्थान में संग्रहालयों की स्थापना:

अतीत की गौरवशाली विरासत के संरक्षण, उसके प्रदर्शन की सोच से ही राजस्थान में स्वतंत्रता से पूर्व ही संग्रहालयों की स्थापना होने लगी। राजस्थान निर्माण के पूर्व ही विभिन्न रियासतों में दस से अधिक संग्रहालय दर्शकों के लिए खुल गए। पहला संग्रहालय राजस्थान में 1876 में खुला। जयपुर में महाराजा रामसिंह के शासनकाल में स्थापित इस पहले अल्बर्ट हॉल म्यूजियम की नींव प्रिंस अल्बर्ट ने रखी। उनके नाम से जयपुर के रामनिवास बाग के प्रवेश द्वार के ठीक सामने की दुनिया की बेहतरीन इमारतो में से एक में आज भी यह संग्रहालय देशी-विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बिन्दू है।

मेवाड़ में महाराणा फतहसिंह के शासनकाल में 1890 में तत्कालीन वायसराय लार्ड लेंस डाउन द्वारा विक्टोरिया हाल म्यूजियम का उद्घाटन किया गया। उदयपुर के गुलाब बाग में स्थापित इस संग्रहालय की अपनी शान है। अजमेर में 1908 में राजपूताना संग्रहालय की स्थापना इस मायने में महत्वपूर्ण थी कि पहली बार संग्रहालय की स्थापना में भारतीय विद्वानों की सेवाएं ली गयी। यह संग्रहालय डी. गौरीशंकर हीराचंद ओझा के सक्रिय सहयोग से स्थापित किया गया।

जोधपुर में 1909 में संग्रहालय की स्थापना की गयी। इसे 1916 में भारत सरकार की मान्यता मिली और कालान्तर में इसका नामकरण जोधपुर के महाराजा सरदारसिंह की स्मृति में "सरदार म्यूजियम" रखा गया। हाड़ौती क्षेत्र में पहला संग्रहालय 1915 में झालावाड़ में महाराजा भवानीसिंह के प्रयासों से स्थापित हुआ तो बीकानेर में इटली के विद्वान डी.एल. जी. टेसीरोटी की मेहनत और अनुसंधान कर लायी गयी वस्तुओं से 1937 में संग्रहालय की स्थापना हुई। इसी प्रकार 1940 में अलवर में तथा 1944 में भरतपुर रियासतों में संग्रहालय दर्शकों के लिए खोल दिए गए। कोटा में 1944 में तथा 1949 में आमेर संग्रहालय की स्थापना की गयी।

राजस्थान निर्माण के बाद वर्ष 1950 में प्रदेश में पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग की स्थापना हुई और विभाग ने संग्रहालयों के विस्तार की दिशा में कदम बढाने प्रारंभ कर दिए। पहले-पहल पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग के प्रयासों से 1959 में डूंगरपुर और 1961 में आहाड़ संग्रहालयों की स्थापना कर इस क्षेत्र की प्राचीन कला-संस्कृति, पुरावशेष, इतिहास की धरोहरों को संजोकर उनके आमजन के अवलोकनार्थ प्रदर्शन की व्यवस्था की गयी। इसके बाद से लगातार क्षेत्र विशेष की सांस्कृतिक विरासत और पुरासामग्री संबंधी बेशकीमती धरोहर का संरक्षण कर संग्रहालय के रूप में उनके प्रदर्शन की दिशा में सतत् प्रयास जारी है।

4.5 राजस्थान के प्रमुख संग्रहालय:

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में सरकार के साथ-साथ सामूहिक गैर राजकीय, संस्थागत और निजी स्तर पर बहुत से संग्रहालय स्थापित किए गए हैं। इन संग्रहालयों में इतिहास की बेशकीमती धरोहर, पुरा वस्तुएं, सांस्कृतिक परम्पपराओं आदि के बारे प्राचीन वस्तुओं का विशिष्ट संग्रह किया गया है। प्रदेश के कुछ प्रमुख संग्रहालयों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

4.5.1 राजपूताना संग्रहालय. अजमेर:

किसी समय मुगल सम्राट अकबर का शाही निवास रहा आज का राजपूताना संग्रहालय सन् 1908 में ब्रिटिश शासन के अंतर्गत संचालित हुआ था। संग्रहालय के मुगल व राजपूतों द्वारा युद्ध के दौरान इस्तेमाल किए जाने वाले सुरक्षा कवचों का बेहतरीन संग्रह है। पुरा महत्व की सामग्री यथा प्रस्तर प्रतिमाएं, शिलालेख, सिक्के, प्राचीन अभिलेखों के संग्रह के कारण भी इस संग्रहालय की विशिष्ट पहचान है।

4.5.2 राजकीय संग्रहालय, अलवर

अलवर के विनय विलास महल के उपरी हिस्से में स्थित राजकीय संग्रहालय को 1940 में स्थापित किया गया था। इस संग्रहालय में अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी के मुगल एवं राजपूत चित्रों का उत्कृष्ट संग्रह है। इस संग्रहालय की शान यहां संग्रहित अरबी, फारसी, उर्दू और संस्कृत की दुलर्भ प्राचीन पांडुलिपियां भी है। इन पाण्डुलिपियों में कुछ उल्लेखनीय एवं प्रमुख है - गुलिस्तां अर्थात् गुलाबों का बगीचा, वक्त-एं-बाबरी अर्थात् मुगल सम्राट बाबर की आत्मकथा, बोस्तां अर्थात् झरनों का बगीचा आदि। यही नही महाभारत की प्राचीन प्रति भी यहां संग्रहित है जिसे अलवर शैली के कलाकारों ने कभी चित्रित किया था।

संग्रहालय में भारतीय अस्त्र-शस्त्रों का भंडार भी अलग से आकर्षित करता है। प्राचीन प्रतिमाएं, पुरामहत्व की वस्तुओं आदि का भी संग्रहालय में अलग से संग्रह है।

4.5.3 राजकीय संग्रहालय, भरतपुर:

भरतपुर के लोहागढ किले के अंदर बने महल में 1944 से अस्तित्व में आए राजकीय संग्रहालय में भरतपुर के शासक रहे राजा-महाराजाओं की अनेकानेक वस्तुओं का भव्य संग्रह है। प्रदेश की कला संस्कृति और परम्पराओं से संबद्ध शिल्प, उत्कृष्ट मूर्तियां और प्राचीन शिलालेखों का भी समृद्ध भंडार इस संग्रहालय में है। संग्रहालय की कला दीर्धा भी दर्शनीय है। इसमें 17 वीं शताब्दी के मुगल चित्रों सहित फूलदान-पंखे, सडक, बर्तनों का भव्य संग्रह है। संग्रहालय में अलग से बनी जीव जंतु दीर्घा में मगरमच्छ, अफ्रीकन बंदर आदि का संग्रह है।

4.5.4 राजकीय संग्रहालय, बीकानेर:

गंगा गोल्डन जुबली म्यूजियम से भी इसे जाना जाता है। 5 नवम्बर 1937 में बीकानेर के पूर्व महाराजा गंगासिंह की गोल्डन जुबली (1887 से 1943) मनाए जाने के अवसर

पर स्थापित होने के कारण इसका नामकरण आरंभ से ही गंगा गोल्डन जुबली म्यूजियम किया गया था। राजस्थान के इस बेहतरीन संग्रहालय की यह खास बात भी है कि इसके विभिन्न कक्षों में इतिहास, संस्कृति, पुरामहत्व, प्राचीन वस्त्र, अस्त्र-शस्त्रों आदि को सुन्दरतम ढंग से संजोया हुआ है। संग्रहालय में हड़प्पा सभ्यता तथा गुप्त एवं कुषाण काल तथा उसके बाद की मूर्तियां एवं पुरा महत्व की बेशकीमती वस्तुओं का संग्रहण है।

बीकानेर का संग्रहालय टेराकोटा, बीकानेर एवं अन्य मुगल शैलियों के लघु चित्रों, प्राचीन सिक्कों आदि के संग्रहण के कारण भी अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। यहां संग्रहित पहलू से प्राप्त 100 वर्ष से भी अधिक प्राचीन सरस्वती की पाषाण प्रतिमा दुनियाभर में अपने आप में अपनी अलग पहचान रखता है। संग्रहालय में जहांगीर का अंगरखा, प्राचीन शासकों के जीवन से जुडी वस्तुएं आदि बरबस ही अपना ध्यान खींचती है।

4.5.5 करणी संग्रहालय, बीकानेर:

बीकानेर में ही जूनागढ दुर्ग स्थित करणी संग्रहालय बीकानेर के राजा-महाराजाओं के जीवन से जुड़ी विभिन्न वस्तुओं के संग्रहण का नायाब उदाहरण है। इस संग्रहालय में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान महाराजा द्वारा इस्तेमाल हेलिकोप्टर, शाही रेलगाडी के मॉडल आदि यहां आने वालों के लिए विशेष आकर्षण लिए है। बीकानेर के अंतिम महाराजा एवं सुप्रसिद्ध निशानेबाज डी. करणीसिंह के नाम पर स्थापित यह निजी संग्रहालय है।

4.5.6 लालगढ म्यूजियम, बीकानेर:

बीकानेर के लालगढ महल स्थित इस संग्रहालय में प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का अद्भुत संग्रहण है। संग्रहालय में अस्त्र-शस्त्रों के अलावा विवाह में दुल्हन के लिए सजायी जाने वाली डोलियां इक्के आदि भव्यतम रूप संजोये हुए है। लालगढ पैलेस के एक भाग में बना यह संग्रहालय भी निजी ट्रस्ट की सम्पत्ति है।

4.5.7 राजकीय संग्रहालय, चित्तौडगढ:

चित्तौड़ दुर्ग स्थित कुम्भा महल के प्रमुख द्वार "बड़ी पोल" से बाहर निकलते ही सामने उदयपुर के महाराणा फतहसिंह द्वारा निर्मित "फतह प्रकाश महल" है। इस महल में ही वर्ष 1969 में चित्तौड़गढ के राजकीय संग्रहालय की स्थापना की गयी थी। संग्रहालय में चित्तौड़ एवं आस-पास के इलाकों से प्राप्त पाषाणकालीन सामग्री, अस्त्र-शस्त्र एवं वस्त्र, मूर्तिकला के नायाब नमूने, सिक्के ऐतिहासिक एवं लोक संस्कृति से जुडी विभिन्न वस्तुओं का संग्रह है।

4.5.8 राजकीय संग्रहालय, डूंगरपुर:

डूंगरपुर के राजकीय संग्रहालय में प्राचीन देव मूर्तियों का भव्यतम संग्रह है। डूंगरपुर से संबद्ध पुरा वैभव की वस्तुओं का यहां अद्भुत संग्रह है। वर्ष 1959 में इस संग्रहालय की स्थापना की गयी थी।

4.5.9 अल्बर्ट हाल संग्रहालय, जयपुर:

जयपुर के रामनिवास बाग में प्रवेश करने पर ठीक सामने बनी भव्य इमारत "अल्बर्ट हाल" राजस्थान का बेहतरीन संग्रहालय है। भारतीय एवं फारसी शैली में बने अल्बर्ट हाल का शिलान्यास वेल्स के राजकुमार अल्बर्ट ने 1876 में किया था। उन्हीं के नाम पर इमारत का नाम अल्बर्ट हॉल रखा गया। इस संग्रहालय में प्राकृतिक विज्ञान के नमूनों, इजिप्ट की एक ममी और फारस के प्रख्यात कालीनों का नायाब संग्रह है।

" अल्बर्ट हाल" संग्रहालय में विभिन्न शैलियों के चित्रों, सज्जित बर्तनों, पीतल की सुंदर ढालें, उत्कृष्ट मूर्तियों के साथ ही जापान, चीन, सीरिया के प्रख्यात तेल चित्र भी संग्रहित है।

4.5.10 सिटी पैलेस संग्रहालय, जयपुर:

जयपुर के सिटी पैलेस स्थित इस संग्रहालय को सवाई मानसिंह द्वितीय संग्रहालय भी कहा जाता है। यहां राजस्थानी पोशाकों, पगड़ियों का विशिष्ट संग्रह है। यहां राजपूत एवं मुगल सैनिकों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले हथियारों विभिन्न रंगों व आकारों वाली तराशी हुई मूंढ़ वाली तलवारों का भी संग्रह है। विशेष रूप से मीनाकारी के जडाऊ काम वाली, जवाहारतों से अलंकृत शानदार जडी हुई म्यानें सिर्फ यही पर है। संग्रहालय में ही लघुचित्रों, कालीनों, शाही साजो-सामान लेटिन व संस्कृत में दुर्लभ खगोल विज्ञान का अध्ययन करने के लिए इन वस्तुओं को सवाई जयसिंह द्वितीय ने विभिन्न स्थानों से प्राप्त किया था। संग्रहालय में मीनाकारी की वस्तुएं, आभूषण, हस्तलिखित पाण्डुलिपियां भी संग्रहित हैं।

इनके अलावा जयपुर का आमेर महल स्थित संग्रहालय जहां आहड़ संस्कृति के उत्सनन से प्राप्त मिट्टी के पात्र एवं मूर्तियो के साथ ही प्राचीन प्रस्तर प्रतिमाओं के संग्रहण से प्रसिद्ध है वहीं हवामहल स्थित संग्रहालय ढूंढाड क्षेत्र की प्राप्त प्रतिमाओं, प्राचीन शिलालेख, सिक्कों आदि के कारण जाना जाता है। जयुपर के पास के कस्बे विराटनगर का राजकीय संग्रहालय पाषाण काल के पत्थर के औजार, मृदभाण्ड, बौद्धकालीन संस्कृति से जुडी वस्तुओं आदि के कारण खासा प्रसिद्ध हैं।

4.5.11 राजकीय संग्रहालय, झालावाड़:

ईस्वी सन् 1915 में महाराजा भवानीसिंह द्वारा स्थापित झालवाड़ का संग्रहालय राजस्थान के प्राचीनतम संग्रहालय में से एक है। इस संग्रहालय में दुर्लभ पाण्डुलिपियां, लक्ष्मीनारायण, विष्णु कृष्ण एवं अर्द्धनारीश्वर के साथ ही चामुण्डा, सूर्यनारायण नटराज व त्रिमूर्ति आदि की सुन्दर मूर्तिया संग्रहित है। गढ भवन पैलेस के मुख्य द्वार के पास स्थित इस संग्रहालय में ऐतिहासिक एवं पौराणिक महत्व की दैनिक उपयोग की वस्तुएँ, प्राचीन सिक्के तथा लघु चित्रों का भी अनूठा संग्रह है।

4.5.12 मेहरानगढ संग्रहालय, जोधपुर:

जोधपुर के मेहरानगढ किले में स्थित इस संग्रहालय में मारवाड़ राजवंश के सांस्कृतिक, शौर्य एवं ऐतिहासिक महत्व की दुर्लभ कलाकृतियां, वस्तुएं संग्रहित है। प्राचीन अस्त्र-शस्त्र, राजपरिवार के दैनिक उपयोग में आने वाली कलात्मक वस्तुएं, राजसी पोशाकों, झूलों, पालकियों आदि की अनेकानेक वस्तुएं इस संग्रहालय की शोभा बढाती है।

4.5.13 राजकीय संग्रहालय जोधपुर:

मारवाड़ के इतिहास की झांकी दिखाता जोधपुर का राजकीय संग्रहालय शहर से 8 किलोमीटर दूर मंडोर नामक स्थान पर 1968 में स्थापित किया गया। कभी इस स्थान पर बौद्ध शैली का भव्य मंडोर दुर्ग हुआ करता था, जिसके भग्नावशेष आज भी उसकी याद ताजा करते है। मंडोर संग्रहालय में मारवाड़ नरेशों के चित्र, प्राचीन मुद्राएं और पाषाण प्रतिमाएं आदि इतिहास को मानों जीवंत करती है।

इन संग्रहालयों के अलावा भी जोधपुर का उम्मेद भवन संग्रहालय पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र है। इस संग्रहालय में राजतंत्र की कीमती एवं विशिष्ट वस्तुओं का नायाब संग्रह है। इसी प्रकार जोधपुर के सार्वजनिक उद्यान में 1909 में "सरदार म्यूजिम" की स्थापना की गयी थी। इस संग्रहालय में लघु चित्र एवं कला कौशल की वस्तुओं के साथ ही अनेक प्रतिमाओं, सिक्कों आदि का संग्रहण है।

4.5.14 राजकीय संग्रहालय, कोटा:

कोटा की किशोर सागर झील के नजदीक ब्रज विलास महल में स्थित इस संग्रहालय को महाराव माधोसिंह संग्रहालय के नाम से भी जाना जाता है। इस संग्रहालय में दुर्लभ सिक्के, पाण्डुलिपियां और हाड़ौती की चुनी हुई मूर्तियों का विशिष्ट संग्रह है। संग्रहालय में बाडोली से लाया गया उत्कृष्ट तराशा हुआ बूत भी उल्लेखनीय है।

4.5.15 राजकीय संग्रहालय, माउंट आबू

माउंट आबू के राजकीय संग्रहालय की स्थापना 1965 में हुई थी। राजभवन स्थित इस संग्रहालय में 8 वीं से 12 वीं शताब्दी की पुरातत्वीय खुदाई में मिली वस्तुओं का संग्रह पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण लिए है। संग्रहालय में जैन कांसे की नक्काशी, पीतल के काम के बर्तन, सिरोही क्षेत्र की प्रतिमाएं, सिक्के आदि भी ध्यान आकृष्ट करते है।

4.5.16 राजकीय संग्रहालय, उदयपुर:

महारानी विक्टोरिया की पचास वर्षीय जुबली के अवसर पर महाराणा फतहसिंह ने 1887 ई. में उदयपुर में विक्टोरिया हाल स्थान का निर्माण करवाया था। यह सज्जन निवास बाग में स्थित हैं। एक नवम्बर 1890 को इस भवन में विक्टोरिया हाल म्यूजियम एवं पुस्तकालय का उद्घाटन भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड लेन्सडाउन ने किया एवं प्रसिद्ध इतिहासकार गौरीशंकर ओझा को यहां क्यूरेटर के पद पर पदस्थापित किया। सन् 1968 में यह

संग्रहालय सज्जन निवास बाग से राजमहल के कर्ण विलास में स्थानान्तरित किया गया और इसका नाम प्रताप संग्रहालय रखा गया। कुछ वर्षो से यह राजकीय संग्रहालय से ही जाना जाता है। संग्रहालय में पांच दीर्घाओं के अंतर्गत प्राचीन शिलालेख, कलाकृतियां, प्रतिमाएं आदि संरक्षित है। विशेष रूप से सन् 1622 में शहजादा खुर्रम अपने पिता जहांगीर से बगावत करके जब दक्षिण की ओर जाते कुछ समय उदयपुर रूका था तो उसने मेवाड के राणा कर्णसिंह से पगडी बदल अपना भाई बनाया था। यह यादगार पगडी इस संग्रहालय में संग्रहीत हैं तो मेवाड क्षेत्र से प्राप्त छठी शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक की पर्स्तर प्रतिमाएं भी अपना विशेष महत्व रखती हैं। संग्रहालय के विभिन्न शिलालेखों में फारसी शिलालेख, कादम्बरी, मालतीमाधव, गीत गोविन्द आदि पर आधारित लघु चित्र भी संगृहीत हैं।

4.6 कुछ विशिष्ट संग्रहलाय:

राजस्थान के इतिहास, यहां के जन-जीवन, सभ्यता और संस्कृति से जुड़े विभिन्न संग्रहालयों के साथ ही यहां स्थापित कुछ विशिष्ट संग्रहलाय देश-विदेश में अपनी पृथक पहचान रखते है। लोक कलाओं से जुड़ा उदयपुर का लोक कला संग्रहालय हो या फिर जनजातीय सभ्यता एवं संस्कृति से जुड़ा जनजातीय संग्रहालय या फिर जयपुर का गुड़ियाघर-सभी अपने आप में विशिष्टताएं लिए हुए है। राजस्थान के ये कुछ विशिष्ट संग्रहलाय इस प्रकार से है।

4.6.1 भारतीय लोक कला संग्रहालय, उदयपुर:

लोक संस्कृति से जुडी विभिन्न वस्तुओं का इस संग्रहालय में अद्भुत संग्रह है। संग्रहालय लोककलाओं से संबंधित दिलचस्प वस्तुओं के कारण भी आकृष्ट करता है। इसमें लोक पोशाकें आभूषण, नकाब, गुडिया, लोक वाद्य यंत्रों लोकदेवताओं सम्बन्धी सामग्री आदि का नायाब संग्रहण है।

लोक कलाविद् स्व. देवीलाल सामर के प्रयासों से स्थापित लोककला संग्रहालय में कठपुतलियों का भी अनूठा संग्रह है। लोककला संबंधी विषयों की मूर्तियां, मॉडल, चित्रों का संग्रह आने वालों को लुभाता है।

4.6.2 गुड़ियाओं का संग्रहालय गुड़ियाघर:

जयपुर में जवाहर लाल नेहरू मार्ग पर मूक बधिर विद्यालय के प्रांगण में बने 'गुड़ियाघर देश-विदेश की विभिन्न गुड़ियाओं का अद्भुत संग्रह है। इसे भगवानी बाई सेखसरिया चैरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर द्वारा स्थापित किया गया। वर्ष 1979 में इस संग्रहालय का उद्घाटन राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री भी भैरोसिंह शेखावत ने किया। संग्रहालय में भारत के विभिन्न अंचलों में प्रचलित गुड़ियाओं, कठपुतलियों का ही नहीं बल्कि विदेशी संस्कृति एवं लोक जीवन से परिचय कराता गुड़ियाओं का भी बेहतरीन संग्रह है। अलग-अलग देश प्रांत और वहां की संस्कृति से परिचय कराती गुड़ियाओं के इस घर से स्थान विशेष की सभ्यता, वहां की संस्कृति, रीति-रिवाज, वस्त्र, पोशाक का भी सहज परिचय होता है।

4.6.3 जनजाति संग्रहालय, उदयपुर:

राजस्थान की विभिन्न जनजातियों की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था को संरक्षित एवं प्रदर्शित करने के उद्देश्य से 30 दिसम्बर 1983 को उदयपुर में जनजाति संग्रहालय की स्थापना की गयी। माणिक्यलाल वर्मा जनजाति शोध संस्थान द्वारा स्थापित इस संग्रहालय में राजस्थान की विभिन्न जनजातियों के चित्र, वस्त्राभूषण, विभिन्न मूर्तियां, अस्त्र-शस्त्र, देवरे, इष्ट देवता, लोकसंस्कृति एवं कला को भव्यतम रूप में प्रदर्शित किया गया है।

संग्रहालय में जनजातियों के लोगों द्वारा बनाए जाने वाले विभिन्न वाद्ययंत्रों, उनके द्वारा मांडे जाने वाले मांडणों, उकेरे जाने वाले भित्ती चित्रों, सांझी, गोदना, लोकनृत्यों, मेले, उत्सवों आदि की शानदार प्रस्तुति है। आदिवासियों की संस्कृति उनके खान-पान, वेशभूषा, कला कृतियों को दर्शाते इस संग्रहालय में आदिवासी जीवन के दृश्य का ऑडियो-विडियो फिल्मांकन भी है।

4.6.4 लोक संस्कृति शोध संस्थान संग्रहालय, चुरू:

इतिहासकार श्री गोविन्द अग्रवाल के प्रयासों से 1964 में स्थापित चुरू की नगरश्री संस्था के लोक संस्कृति शोध संग्रहालय में लोक जीवन, परम्पराओं संस्कृति से संबद्ध दस्तावेज, पुरातत्व सामग्री, ताड़पत्रीय प्रतियां, हस्तलिखित पुस्तकें, प्राचीन बहिया आदि का दुर्लभ संग्रह है। नगरीय संस्थान के सुबोध अग्रवाल के व्यक्तिगत प्रयासों से आज इस संग्रहालय में सीकर, झुंझुनू चुरू, नागौर, बाड़मेर आदि जिले से संबद्ध लोक संस्कृति की बेशकीमती वस्तुएं संरक्षित है।

4.6.5 प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय:

प्राकृतिक इतिहास से आशय है जीवों और वनस्पतियों की उत्पति और विकास का वृतांत। जीव जगत के जीवन और व्यवहार तथा उनकी आवासीय परिरिथतियो को प्रदर्शित करने वाले संग्रहालय को 'प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय ' कहा जाता है।

हालांकि विश्व में पिछले 300 वर्षो से ऐसे संग्रहालय के निर्माण एवं विकास का कार्य होता आया है परन्तु भारत में ऐसे संग्रहालयों की तरफ पिछले 100 वर्षो से ही कार्य हो रहा है। मुम्बई में 115 वर्ष पहले 'बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी' द्वारा ऐसा पहला संग्रहालय स्थापित किया गया था।

राजस्थान में राजा महाराजाओं द्वारा 'प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय' स्थापित किए जाते रहे है। जोधपुर ,मंडोर, जैसलमेर, कोटा तथा बीकानेर रियासतों द्वारा इस तरह के संग्रहालय विशेष रूप से बनवाए गए थे। जयपुर में रामनिवास उद्यान के मध्य बने जंतुआलय, में विभिन्न प्रकार के डायरामा बनाकर टाईगर के प्राकृतिक आवास के साथ ही बघेरा, भालू चिंकारा, काला हिरण, मगरमच्छ वन्यजीवों के भूसा भरे माडल को प्राकृतिक अवस्था में दर्शाया गया है। संग्रहालय में जैव विविधता को दर्शाने वाले मॉडल्स चार्ट भी अलग से प्रदर्शित है।

4.6.6 वुड फौसिल पार्क, जैसलमेर:

जैसलमेर जिले से 17 किमी दूर बीकानेर मार्ग पर स्थित वुड फौसिल पार्क की ख्याति दूर देशों तक है। इस पार्क में 18 करोड़ वर्ष पूर्व के पुराने जीवाश्मों का अद्भुत संग्रहण है। पुराने जीवाश्मों के साथ जुरासिक समय में ले जाने वाले इस संग्रहालय से थार रेगिस्तान का विस्तृत भूगोलीय अध्ययन सहज ही किया जा सकता है

4.7 सारांश

किसी भी स्थान विशेष की सभ्यता एवं संस्कृति के साथ ही वहां की धरोहर के बारे में जानकारी प्राप्त करने में वहां के संग्रहालय विशेष रूप से उपयोगी होते हैं। संग्रहालयों में संग्रहित सामग्री से इतिहास का अन्वेषण ही नहीं होता बल्कि बीते समय की याद भी ताजा होती है। कला, संस्कृति और इतिहास की समृद्ध विरासत का वर्तमान से नाता जोड़ने, सांस्कृतिक उत्सव के रत्रोतो को जानने के उत्सुक अनुसंधानकर्ताओं की इतिहास से संबद्धता स्थापित करने की सोच ने ही संभवत: संग्रहालयों की स्थापना को मूर्त रूप दिया। भारत में 19 वीं शताब्दी में अंग्रेजों ने संग्रहालयों की स्थापना की दिशा में पहल की। समृद्ध भारत की प्राचीन संस्कृति, विरासत के अन्वेषण के उद्देश्य से प्रारंभ हुई संग्रहालय स्थापना की पहल का ही परिणाम था कि देश में लगभग सभी प्रमुख स्थानों पर संग्रहालय दर संग्रहालय स्थापित होते चले गए।

प्राचीन सिक्के, मूर्तियां, दस्तावेज, पुरा सामग्री, अस्त्र-शस्त्र, जन-जीवन से जुड़ी विभिन्न वस्तुएं आदि संग्रहालयों की अनमोल धरोहर हमें हमारे इतिहास की दांस्ता ही तो सुनाती हे। इतिहास में झांकना हो, इतिहास का अन्वेषण करना हो तो संग्रहालयों में संजोयी वस्तुओं की धरोहर विशेष रूप से उपयोगी हो सकती है।

भारत में सर्वप्रथम संग्रहालया की स्थापना 1875 में कोलकाता में की गयी। वायसराय लॉर्ड कर्जन एवं पुरातत्व सर्वेक्षण के अध्यक्ष सर जॉन मार्शल के प्रयासों से स्थापित देश के इस पहले संग्रहालय में इतिहास से जुड़ी बेशकीमती वस्तुओं का संग्रहण हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय, आधुनिक कला संग्रहालय, गांधी स्मारक, हैदराबाद का निजाम संग्रहालय आदि देश के प्रमुख संग्रहालय हैं। यहां की बेशकीमती वस्तुओं का संग्रह सुदूर देशों से भी पर्यटकों को यहां खींच लाता है।

देश के प्रमुख संग्रहालयों की बात करें तो राजस्थान का नाम भी पहले-पहल लिया जाता है। यहां बहुत से संग्रहालयों की स्थापना आजादी से पूर्व ही कर दी गयी थी। पहला संग्रहालय राजस्थान में 1876 में खुला। जयपुर में महाराजा रामसिंह के शासनकाल में स्थापित इस पहले अल्बर्ट हॉल म्यूजियम की नींव प्रिंस अल्बर्ट ने रखी। मेवाड़ में महाराणा फतहसिंह के शासनकाल में 1890 में तत्कालीन वायसराय लार्ड लेंस डाउन द्वारा विक्टोरिया हाल म्यूजियम का उद्घाटन किया गया। अजमेर में 1908 में राजपूताना संग्रहालय की स्थापना इस मायने में महत्वपूर्ण थी कि पहली बार संग्रहालय की स्थापना में भारतीय विद्वानों की सेवाएं ली गयी। जोधपुर में 1909 में संग्रहालय की स्थापना की गयी। इसे 1916 में भारत सरकार कमी मान्यता मिली और कालान्तर में इसका नामकरण जोधपुर के महाराजा सरदारसिह की स्मृति में

"सरदार म्यूजियम" रखा गया। हाड़ौती क्षेत्र में पहला संग्रहालय 1915 में झालावाड़ में महाराजा भवानीसिंह के प्रयासों से स्थापित हुआ तो बीकानेर में इटली के विद्वान डी. एल. जी. टेसीरोटी की मेहनत और अनुसंधान कर लायी गयी वस्तुओं से 1937 में संग्रहालय की स्थापना हुई। इसी प्रकार 1940 में अलवर में तथा 1944 में भरतपुर रियासतों में संग्रहालय दर्शकों के लिए खोल दिए गए। कोटा में 1944 में तथा 1949 में आमेर संग्रहालय की स्थापना की गयी। राजस्थान निर्माण के बाद वर्ष 1950 में प्रदेश में पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग की स्थापना हुई और विभाग ने संग्रहालयों के विस्तार की दिशा में कदम बढाने प्रारंभ कर दिए। आज राज्य के लगभग सभी प्रमुख शहरों में वहां के संग्रहालय देशी-विदेशी पर्यटकों के आकर्षण के केन्द्र बने हुए है। निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के इन संग्रहालयों का अपना विशिष्ट महत्व है।

राजस्थान के भी कुछ विशिष्ट संग्रहालयो में जयपुर का गुड़ियाघर, जैसलमेर का वुड फोसिल पार्क, भारतीय लोक कला संग्रहालय आदि हैं जिनमें राजस्थान की संस्कृति से जुड़ी बेशकीमती धरोहर संजोयी हुई है।

बोध प्रश्न :

1. "संग्रहालय अतीत के जीवंत दस्तावेज होते हैं।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में संग्रहालयों के इतिहास पर प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

2. राजस्थान में संग्रहालयों की स्थापना का इतिहास क्या रहा है?

   .....

   .....

3. राजस्थान के प्रमुख संग्रहालय कौन-कौन से हैं? प्रमुख संग्रहालयों पर संक्षेप मे प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

4. भारतीय लोक कला संग्रहालय किसलिए प्रसिद्ध हैं?

   .....

   .....

5. राजस्थान के विशिष्ट संग्रहालयों के बारे में संक्षेप में जानकारी दीजिए।

   .....

   .....

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें :

खंड 1 के अंतर्गत इकाई संख्या 1 से 4 तक आपने राजस्थान के ऐतिहासिक परिदृश्य के साथ ही पर्यटन विरासत के संबंध में सविस्तार जानकारी प्राप्त की है।

इस खंड के संदर्भ के लिए आपको निम्न पुस्तकें सुझायी जा रही है -

1. द रीडल्स ऑफ द यूनिवर्स, राजपूताना का इतिहास – जगदीश गहलोत
2. राजस्थान स्टडीज – जी.एनशर्मा
3. कल्वरल हेरिटेज ऑफ राजस्थान – मनोहर प्रभाकर
4. लोक संस्कृति रूप और दर्शन – लक्ष्मी कुमारी चूड़ावत
5. एनल्स एण्ड एक्टीवीटीज ऑफ राजस्थान – जेम्स टॉड
6. कलात्मक राजस्थान – एच, भीष्म पाल
7. म्यूजियम इन इण्डिया – शोभित पंजा

खण्ड - 2 : राजस्थान के पर्यटन उत्पाद

इकाई - 05	राजस्थान के पर्यटन उत्पाद
इकाई - 06	प्रदर्शनकरी कलाएं
इकाई - 07	लोक संगीत एवं नृत्य

इकाई - 5: राजस्थान के पर्यटन उत्पाद

रूपरेखा :

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 पर्यटन उत्पाद से आशय

5.3 पर्यटन उत्पाद के प्रकार

- 5.3.1 मानव निर्मित उत्पाद
- 5.3.2 प्रकृति निर्मित उत्पाद
- 5.3.3 मानव-प्रकृति निर्मित उत्पाद
- 5.3.4 घटना आधारित पर्यटन उत्पाद

5.4 पर्यटन उत्पाद एवं उपभोग प्रवृति

5.5 राजस्थान के पर्यटन उत्पाद

- 5.5.1 इतिहास
- 5.5.2 संस्कृति
- 5.5.3 वास्तु एवं स्थापत्य
- 5.5.4 मूर्तिकला
- 5.5.5 चित्रकला
- 5.5.6 संगीत एवं नृत्य
- 5.5.7 हस्तकलाएं
- 5.5.8 त्यौहार, मेले एवं पर्व
- 5.9.9 वन्य जीव
- 5.5.10 साहसिक खेल

5.6 सारांश

5.0उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- पर्यटन उत्पाद के बारे में अपनी समझ बढ़ा सकेंगें।
- मानव एवं प्रकृति निर्मित एवं पर्यटन उत्पादों से अवगत हो सकेंगें।
- पर्यटन उत्पाद एवं उनके उपभोग की प्रवृति के बारे में जान सकेंगे।
- राजस्थान के विविध पर्यटन उत्पादों से अवगत हो सकेंगें।

5.1 प्रस्तावना:

पर्यटन भ्रमण का वह निर्धारित कार्यक्रम होता है जिसमें व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा थोडे समय के लिए अपने निवास स्थान को छोडकर अन्य स्थान या स्थानों की यात्रा प्राकृतिक सौंदर्य, धार्मिक आस्था स्वास्थ्य लाभ, मनोरंजन, शिक्षा, साहसिक खेलों में भागीदारी आदि के उद्देश्य से की जाती है। यात्रा के दौरान स्थान-विशेष का इतिहास, वहां की संस्कृति, परंपराएं, लोग, उनका खान-पान, रहन-सहन आदि सभी कुछ पर्यटकों की संतुष्टि के तत्व बनते है। पर्यटक इनका उपयोग उत्पादक के रूप में न करके उपभोक्ता के रूप में करता है। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि पर्यटन उत्पाद एक भूदृश्य, व्यक्ति या घटना, वन्य जीव धर्म, लोग तथा उनकी परम्पराओं से जुड़े उत्सव एवं मेले, वहां का इतिहास, संस्कृति, हस्तकलाएं आदि होते है। पर्यटकों की भ्रमण में रूचि से संबंधित आवश्यकताओं की पूर्ति, यात्रा की सुखद अनुभूति आदि से संबद्ध सभी क्रियाएं पर्यटन उत्पाद में आती है।

राजस्थान पर्यटन उत्पाद की दृष्टि से समृद्ध राज्य है। यहां का गौरवमयी अतीत, समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराएं, किले, गढ़ एवं महल, दूर तक पसरा रेगिस्तान, हस्तकलाएं, ग्रामीण जन जीवन, स्थापत्य आदि सभी। कुछ पर्यटन कों बढावा देने वाले है। पर्यटन उत्पाद के क्या है आधार? कौन से वे तत्व है जिनसे पर्यटन उत्पाद की प्रकृति का निर्धारण होता है? किन आधारों पर पर्यटन उत्पादों का वर्गीकरण किया जा सकता है और कौन-कौन से है राजस्थान के प्रमुख पर्यटन उत्पाद? आईए, जानें -

5.2 पर्यटन उत्पाद से आशय :

किसी स्थान का इतिहास, वहां की जलवायु, प्राकृतिक सौंदर्य, वहां की पुरातत्व महत्व की वस्तुएं संस्कृति, परम्पराएं, मेले-उत्सव, लोग, उनका रहन-सहन, खान-पान, हस्तकलाएं आदि पर्यटन आकर्षण से जुड़े तत्व होते है। पर्यटकों की संतुष्टि, उनकी अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए किए जाने वाले मौखिक प्रयास भी पर्यटन प्रेरणा के मुख्य कारक होते है। ऐसे में यह कहा जा सकता है कि पर्यटन स्थल तथा वहां मौजूद पर्यटन तत्वों के साथ ही पर्यटकों की यात्रा को सफल बनाने वाली सेवाएं भी पर्यटन उत्पाद में आती है, चूंकि इनसे ही पर्यटकों की यात्रा को सुखद, सुविधादायक बनाया जाता है।

पर्यटन उत्पाद को सामान्यतया जटिल कहा जाता है। इसका कारण यह है कि इसमें विविध व्यक्तियों के विभिन्न स्तरों के प्रयास सम्मिलित होते हैं। किसी एक के प्रयास को पर्यटन उत्पाद नहीं कहा जा सकता। इसे इस रूप में समझा जा सकता है कि किसी स्थान का आकर्षण, वहां की जलवायु, इतिहास, संस्कृति, प्राकृतिक, वन्य जीव आदि के कारण होता है तो आकर्षण के ये तत्व पर्यटन उत्पाद कहलाएंगे। इसी प्रकार इन आकर्षण तत्वों का उपयोग पर्यटक तब कर पाता है जब उस स्थान पर अस्थायी आवास, भोजन, संचार, गाईड आदि की समुचित व्यवस्था हो। यहां पर्यटक सुविधाओं से जुड़े ये तत्व भी पर्यटन उत्पाद ही होंगे। सुविधाओं के अलावा पर्यटन स्थल तक पहुंच की विभिन्न औपचारिकताएं यथा ट्रेवल एजेन्सी की मदद, वीजा, पासपोर्ट, विनिमय, परिवहन से जुड़ी समस्त क्रियाएं भी पर्यटन उत्पाद ही

कहलाएगी। पर्यटन स्थल पर पर्यटकों द्वारा क्रय की जाने वाली वस्तुएं यथा हस्तशिल्प, मूर्तियां, आभूषण चित्रकारी, खान-पान की विशिष्ट वस्तुएं आदि ही पर्यटन उत्पाद कही जाती है परन्तु पर्यटन उत्पाद समग्रत: बहुत से तत्वों का सम्मिश्रण होता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पर्यटन उत्पाद भौतिक वस्तु नहीं होकर बहुत से तत्वों का सम्मिश्रण है। इस सम्मिश्रण में उत्पाद की कार्यशैली के अलावा उसका स्तर भी अपना विशिष्ट महत्व रखता है। एक ट्रेवल एजेन्ट आधार उत्पाद के रूप में यात्रा कार्यक्रम, टूर पैकेज बनाने के साथ ही यात्रा टिकट खरीदने, सहायक सेवा के रूप में पासपोर्ट, वीजा बनवाने में मदद करने के कार्य करता है तो स्थानीय तौर पर पर्यटन स्थल पर बेची जाने वाली हस्तकला, शिल्प की वस्तुएं सामान्य पर्यटन उत्पाद के तौर पर पहचानी जाती है।

5.3 पर्यटन उत्पाद के प्रकार:

पर्यटन उत्पाद मानव निर्मित, प्रकृतिनिर्मित या फिर दोनों के ही मिश्रित स्वरूप यानी मानव-प्रकृतिनिर्मित हो सकता है। सामान्यत: पर्यटन उत्पाद को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है -

5.3.1 मानव निर्मित उत्पाद:

पर्यटन गंतव्य पर पर्यटकों के आकर्षण से संबद्ध वस्तुएं यथा वहां की वास्तुकला, मूर्तिकला, हस्तकलाएं, रंग-बिरंगे परिधान, उत्सव, मेले, सम्मेलन, जन्तुआलय, संग्रहालय, स्मारक, मंदिर, तालाब, बावड़ी, फन पार्क आदि सभी कुछ मानव निर्मित पर्यटन उत्पाद में आते हैं। साधारण अर्थो में यह कहा जा सकता है कि किसी स्थान पर मानव निर्मित कार्य या फिर अन्य आकर्षण इस प्रकार से पैदा किया जाए कि वहां पर आगमन के लिए लोगों में रूचि जगने लगे, मानव निर्मित पर्यटन उत्पाद होता है। यहां यह कहा जा सकता है कि कोई स्थान अपनी जलवायु, प्राकृतिक सौंदर्य की बजाय किसी विशेष स्मारक, दुर्ग या किले, वास्तुकला की उत्कृष्ट इमारत, मंदिर स्थापत्य के साथ ही वहां की विशेषता से जुडी हस्तकला की वस्तुओं, विशिष्ट परम्पराओं, वहां लगने वाले मेले और उत्सव के कारण अपनी पहचान बना लेता है तो वहां पर्यटन आकर्षण पैदा होने लगता है।

5.3.2 प्रकृति निर्मित उत्पाद:

किसी स्थान का प्राकृतिक परिवेश, वहां बहने वाली नदियां, झीलें, झरने ,रेत का अथाह समन्दर, हरितिमा से आच्छादित धरती, पर्वत, जलवायु, वनस्पति, वन्यजीव,बर्फ से ढके धवल पहाड़ आदि के निर्माण के लिए किसी प्रकार के प्रयास नहीं किए जाते। प्रकृति स्वयं इस प्रकार का वातावरण बनाती है। इस प्रकार के वातावरण में जाने की चाह ही पर्यटन का कारण बनती हे। पर्यटक प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद लेने, प्रकृति गोद में स्वास्थ्य लाभ लेने, सुकून की तलाश में जाते हैं। प्राकृतिक सुन्दरता, प्रकृतिनिर्मित वह उत्पाद है जो स्वत: ही पर्यटकों को अपनी ओर खींचता हैं।

5.3.3 मानव-प्रकृति निर्मित उत्पाद:

किसी गंतव्य पर प्राकृतिक सुन्दरता असीम रूप से हो और बाद में वहां जब मानव निर्मित आकर्षण के तत्व भी पैदा कर दिए जाएं तो वह मानव-प्रकृति निर्मित पर्यटन उत्पाद बन जाता है। मसलन कश्मीर सहज रूप में ही अपनी प्राकृतिक सुषमा के कारण धरती का स्वर्ग कहा जाता है परन्तु वहां पर्यटकों के लिए डल झील में हाउस वोट, शिकारों आदि की व्यवस्था किए जाने के साथ ही चश्मेशाही निशात-शालीमार जैसे गार्डन विकसित कर दिए गए। ऊपर पहाड़ी पर शंकराचार्य का मंदिर निर्मित किया गया इससे वहां के आकर्षण में और बढोतरी हो गयी। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध पर्वतीय, प्राकृतिक दृष्टि से सुरम्य वातावरण वाले स्थानों पर वास्तुकला की दृष्टि से संपन्न इमारतों का निर्माण कर दिया गया। पर्यटकों के लिए इस प्रकार के प्राकृतिक स्थानों पर वहां का वातावरण ही आकर्षक उत्पाद नहीं होता बल्कि वहां निर्मित इमारतें, मंदिर, स्मारक आदि भी पर्यटन के उत्पाद हो गए। इस प्रकार प्रकृति और मानव निर्मित पर्यटन उत्पाद वे है जिनमें प्रकृति के साथ-साथ मानव के प्रयास भी सम्मलित होते हैं। वन्य प्राणी विहार, जल क्रियाएं आदि भी इसी प्रकार के उत्पाद में आते है, चूंकि इनमें प्रकृति के साथ-साथ मानव प्रयास भी सम्मलित होते है। वन्य प्राणी विहार, जल क्रियाएं आदि भी इसी प्रकार के उत्पाद में आती है, चूंकि इनमें प्रकृति के साथ-साथ मानव प्रयास भी सम्मलित होते है।

इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि राजस्थान में रेत का अथाह समन्दर है। यह प्रकृति की देन है। रेत के अथाह समन्दर में ऊंट की सवारी से मीलों की दूरी तय की जाती है। जब परिवहन के साधनों का विकास नहीं हुआ था तब लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने ले जाने में ऊंट का ही उपयोग होता था। आधुनिक समय में रेत के धोरों में ऊंट सफारी प्रारंभ कर दी गयी, तो यह पर्यटन आकर्षण की बात हो गयी। इसी प्रकार जैसलमेर में उपलब्ध करोड़ों वर्षो के जीवाश्मों का अलग से वुड फौसिल पार्क बना दिया गया। यह भी प्रकृति-मानव निर्मित पर्यटन उत्पाद है।

5.3.4 घटना आधारित पर्यटन उत्पाद:

कसी स्थान का आकर्षण वहां घटित घटना विशेष से होता है। मसलन मेवाड़ की हल्दीघाटी इसलिए प्रसिद्ध पर्यटन स्थल है कि वहां पर महाराणा प्रताप और अकबर के बीच युद्ध हुआ था। इसी प्रकार पोर्ट ब्लेयर की सेल्यूलर जेल इसलिए प्रसिद्ध है कि वहां पर अंग्रेजी शासन में क्रांतिकारी वीरों या स्वतन्त्रता सेनानियों को कभी काले पानी की सजा दी जाती थी। कई बार घटना विशेष के कारण उस स्थान पर होने वाले उत्सव भी पर्यटन आकर्षण के केन्द्र बन जाते है यथा खुजराहों का नृत्य उत्सव, बीकानेर का ऊंट महोत्सव, जयपुर का हाथी समारोह, तीज उत्सव आदि।

पर्यटन उत्पाद के उपरोक्त वर्गीकरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनमें पर्यटकों या यूं कहें कि इनके उपभोग करने वाले उपभोक्ताओं की संतुष्टि और आकर्षण का तत्व ही महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक सौंदर्य, वहां मानव निर्मित कला कृतियां, भवन, इमारतें, खेले

जाने वाले साहसिक खेल, उत्सव-मेले आदि सभी पर्यटन उत्पादों में जब तक आकर्षण तत्व की मौजूदगी नहीं होगी, पर्यटक इनके उपभोग में रूचि नहीं लेंगे। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पर्यटन उत्पाद में आकर्षण तत्व का अधिकाधिक समावेश करके ही उसका प्रभावी विपणन किया जा सकता है। पर्यटन आकर्षण के तहत पर्यटन उत्पाद को सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, पुरातात्विक, वन्य जीव आदि विभिन्न श्रेणियों में विभक्त कर विकसित किया जा सकता है। उत्पाद का बुनियादी कच्चा माल स्थान का इतिहास, प्राकृतिक सौंदर्य, जलवायु, संस्कृति और वहां रहने वाले लोग ही होते हैं।

5.4 पर्यटन उत्पाद एवं उपभोग प्रकृति:

पर्यटन उत्पाद के उपभोग की प्रकृति पर्यटकों की सक्रियता, पर्यटन परिभ्रमण, पर्यटन पैकेज, गंतव्य सुविधा आदि पर निर्भर करती है। पर्यटन उत्पाद चाहे प्रकृतिनिर्मित हो या फिर मानवनिर्मित, घटना विशेष से संबद्ध हो या फिर अन्य किसी तत्व से संबंधित, उसके पर्यटन उपभोग को निम्न तत्व प्रभावित करते है -

- **सक्रियता :** कोई पर्यटक प्राकृतिक दृश्यावलियों के आकर्षण में बंधकर पर्वतीय स्थानों की सैर करता है या फिर रेत के समंदर में गोते लगाने के लिए मरूस्थली इलाकों में जाता है परन्तु वहां कैमल सफारी या फिर पर्वतारोहण, जल क्रिड़ा, हैंग ग्लाइडिंग आदि साहसिक खेलो में भाग लेना, उसकी सक्रियता पर निर्भर करता है। इसी प्रकार किसी स्थान विशेष से संबंधित हस्तकलाएं, शिल्प आदि की वस्तुओं का क्रय भी पर्यटकों की रूचि, उसकी सक्रियता पर निर्भर है। पर्यटन उत्पाद का उपभोग पर्यटकों की रूचि पर इस रूप में भी निर्भर है कि बहुत से लोग प्रकृति उत्पाद का ही उपभोग करने के लिए पर्यटन करते हैं तो बहुत से लोगों का रूझान वहां की प्रकृति निर्मित चीजों में न होकर वहां से संबंधित खास हस्तकला, संस्कृति या परम्परा में होता है।
- **पैकेज:** कई बार पर्यटक स्थान विशेष के आकर्षण की बजाय पर्यटन पैकेज के अंतर्गत दी जाने वाली सुविधाओं, मनोरंजन आदि के उपभोग के आकर्षण के वशीभूत भी अन्य पर्यटन उत्पादों में रूचि लेते है। एक निश्चित मूल्य पर पर्यटन पैकेज के तहत दी जाने वाली सुविधाओं में खाना-पीना, घूमना, साथ-साथ रहना, मनोरंजन आदि सम्मलित होते है। पर्यटकों को पर्यटन स्थल के प्रकृति एवं मानव निर्मित उत्पादों के साथ ही इस प्रकार के पैकेज संबंधी पर्यटन उत्पाद भी पर्यटन कराते है।
- **नवाचार :** पर्यटन उत्पाद का उपभोग इस बात पर भी निर्भर करता है कि उसमें नवाचारों का समावेश कितना है। प्रकृतिक- मानव निर्मित या घटना एवं स्थान आधारित पर्यटन उत्पाद के अंतर्गत नवाचार का समावेश उत्पाद के उपभोग की प्रवृति को बढ़ाते है। मसलन राजस्थान में "पैलेस ऑन व्हील" का संचालन। राजा-महाराजाओं की शानो-शौकत से जुड़े गौरवमयी प्रदेश राजस्थान में "पहियों पर राजमहल" नामक शाही रेल चलाए जाने के अंतर्गत पर्यटन स्थलों की सैर के लिए विशेष सुविधाओं का सृजन किया गया। राजमहलों जैसी भव्यता एवं साधन लिए इस रेल के प्रति इतना आकर्षण हुआ कि विदेशों में आज यह सर्वाधिक लोकप्रिय पर्यटन उत्पाद

में गिनी जाती है। नवाचारों से पर्यटन स्थलों और राजस्थान की सांस्कृतिकसम्पदा के उपभोग के प्रति ही आकर्षण नहीं बढता बल्कि पर्यटन उद्योग भी अत्यधिक समृद्ध होता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि पर्यटन उत्पाद पर्यटकों की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं की अधिकतम संतुष्टि करने वाला होगा तभी उसके उपभोग की प्रवृति बढेगी। इसी से पर्यटन उद्योग विकसित होने का मार्ग प्रशस्त होगा। इसमें भी गौरतलब बात यह है कि पर्यटन उत्पाद के प्रस्तुत करने वालों और उसको प्राप्त करने वाले दोनों की ही परस्पर संतुष्टि होनी चाहिए। इस दृष्टि से पर्यटन उत्पाद की निम्न विशेषताएं उसके उपभोग को सुनिश्चित करती है-

- उत्पाद सदैव प्रस्तुत किया जाए। किसी गंतव्य को जब पर्यटन स्थल बनाया जाता है तो जो भी विकास क्रियाएं होती है वे पर्यटन उत्पाद को प्रस्तुत करने वाली ही होती है।
- क्रेता की आवश्यकता की संतुष्टि उत्पाद का प्रमुख लक्ष्य हो। पर्यटन उत्पाद के क्रेता पर्यटक होते है, ऐसे में जितना बेहतर ढंग से उसे प्रस्तुत किया जाएगा या आकर्षक बनाया जाएगा उतना ही उसका विपणन होगा।
- विनिमय तत्व की मौजूदगी हो अर्थात् पर्यटन उत्पाद को वस्तु अथवा धन तत्व से विनिमय किया जा सके। पर्यटन उत्पाद में सेवा तत्व भी होता है और इस परिप्रेक्ष्य में धन के विनिमय से पर्यटक यानी उपभोक्ता उसका उपभोग कर सकता है।

5.5 राजस्थान के पर्यटन उत्पाद:

राजस्थान पर्यटन उत्पाद की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध है। यहां का गौरवमयी इतिहास, समृद्ध संस्कृति, किले, गढ एवं महल, जीवन के उल्लास से जुड़े मेले और त्यौहार, हस्तकलाएं, प्राकृतिक दृश्यावलियां सुरम्य परिवेश, आदि सभी कुछ इस कदर आकर्षक है कि पर्यटक इस भूमि पर बार-बार आना चाहते है। धार्मिक आस्था एवं सतरंगी संस्कृति के पावन तीर्थ, वन्य जीव, पर्वत-पहाड़, झीलें, नदियां और तो और दूर तक लहराता रेत का समन्दर और रेत के धोरों में लोक कलाकारों की स्वर लहरियां... सभी कुछ इतना सम्मोहक है कि यहां आने वाला मानों यहीं रच बस जाने की चाह रखने लगता है। अनमोल विरासत को अपने में संजोए राजस्थान की चित्ताकर्षक धरती के बारे में सुप्रसिद्ध कवि कन्हैयालाल सेठिया ने इसलिए कहा है - 'आ तो सरगा ने सरमावै, इण पर देव रमण ने आवै-धरती धोरा री।' धोरों की धरती राजस्थान के पर्यटन आकर्षण के कुछ महत्वपूर्ण पहलू इस प्रकार से है।

5.5.1 इतिहास

गौरवमयी इतिहास की वीर भूमि राजस्थान, आंरभ से ही देशी-विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। महाराणा प्रताप के स्वाभिमान, पन्ना धाय के त्याग, मीरां की भक्ति, पद्मनी के जौहर, कुंभा के पराक्रम, हमीर की दृढता और ढोला-मरवन के अजर-अमर प्यार की अनेकानेक कहानियां अपने आंचल में समेटे राजस्थान का इतिहास देशी विदेशी पर्यटकों को मानो मौन निमंत्रण देता है।

राजस्थान के विभिन्न भागों में किए उत्खनन से प्राप्त अवशेष इस बात के साक्षी है कि यहां की प्राचीन सभ्यता सिंधु घाटी जितनी ही प्राचीन है। ऋग्वेद के अनुसार राजस्थान में कभी सरस्वती नदी बहा करती थी। सन् 1800 ई. में जार्ज थामस ने पहले-पहल इस प्रदेश के भू भाग को राजपूताना कहा और जेम्स टॉड ने 1829 में लिखी अपनी पुस्तक ' एनाल्स एण्ड एन्टीक्यिरीज ऑफ राजस्थान ' में इसे राजस्थान कहा। कालीबंगा-आहड़ आदि सभ्यताओं के इस प्रदेश में 605-647 ई. में राजा हर्षवर्धन के समय चीनी यात्री हेनसांग के आने के प्रमाण भी मिले है। 1191 में तराईन के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की विजय, 1192 में तराईन के द्वितीय युद्ध में मुहम्मद गौरी द्वारा चौहान साम्राज्य को नष्ट कर तुर्की राज्य की स्थापना राजस्थान के इतिहास की मुख्य घटनाएं है। 1292 मे रणथम्मौर पर सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी का हमीर से युद्ध, पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए 1303 में अलाउद्दीन खिलजी का चित्तौड पर आक्रमण के साथ ही 1527 ई. में बाबर और राणा सांगा के मध्य खानवा का युद्ध, राजस्थान के इतिहास के प्रमाण है। 1576 ई. का हल्दीघाटी का युद्ध तथा 1615 के दिवेर के युद्ध के बाद मुगल मेवाड संघी का साक्षी राजस्थान का इतिहास वीरता और साहस की गाथाओं से भरा पड़ा है। 1857 की क्रांति से लेकर वर्तमान राजस्थान निर्माण तक अंग्रेजी राज्य को भारत से जडों से मिटाने और देश की प्रारंभ में राजस्थान 'ब श्रेणी का राज्य था किंतु बाद में पुनर्गठन अधिनियम 1956 के लागू होने के बाद यह 'अ' श्रेणी का राज्य बना।

यहां के इतिहास के गवाह है -किले, गढ और दुर्ग। सामरिक दृष्टि से ही इनका महत्व नहीं रहा है बल्कि अपने निर्माण की भव्यता, वास्तुकला और स्थापत्यकला के भी उत्कृष्टतम उदाहरण हैं। महाराष्ट्र की भांति यहां पग-पग पर किले, दुर्ग एवं महल है। मौर्यवंशीय चित्रांगद द्वारा निर्मित चित्तौड़ का दुर्ग राजस्थान का दक्षिणी पूर्वी द्वार रहा है। मालवा और गुजरात से राजस्थान की रक्षा करने वाला यह दुर्ग जयमल और पत्ता की वीरता, पद्मिनी के जौहर, मीरां की भक्ति का साक्षात् गवाह है। दुर्ग स्थित कीर्ति स्तम्भ आज भी राजस्थान की गौरव पताका फहराता प्रतीत होता है। महाराणा कुम्भा द्वारा निर्मित कुम्मलगढ महाराणा सागा के बचपन, उदयसिंह के राजतिलक और महाराणा प्रताप की वीरता का मूक साक्षी है तो आठवीं शताब्दी के आस-पास बना आन-बान का प्रतीक रणथम्भौर दुर्ग दुर्गाधिराज से जाना जाता है।

जैसल भाटी द्वारा 1156 ई. में त्रिकुट पहाडी पर बने 99 दुर्गो वाले जैसलमेर दुर्ग की अपनी शान है जो भाटियों के शोर्य और पराक्रम का साक्षी रहा है। हनुमानगढ का भटनेर दुर्ग, झालावाड़ के समीप तीन तरफ से काली सिंध व आडू नदियों के जल से घिरा गागरोन का जल दुर्ग पूरे भारत में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। लाल पत्थरों से निर्मित जोधपुर का मेहरानगढ मरूधरा के राठौड़ राजपूतों के शौर्य और साहस का साक्षी है तो परमार शासकों द्वारा निर्मित जालौर का दुर्ग पश्चिमी राजस्थान के सुदृढ किलों में से एक होने के साथ ही आस-पास की भूमि से 1200 फीट उंचा है। भरतपुर का लोहागढ लोहे की भीमकाय इमारत के रूप में जाना जाता है तो मुगल साम्राज्य के उदय से पहले निर्मित अलवर के किले में कभी बाबर ने एक रात बितायी थी और अपने निष्कासित समय के दौरान अकबर का बेटा जहांगीर यहीं रहा था। नागौर का दुर्ग अमरसिंह की वीरता का प्रतीक है तो बीकानेर का जुनागढ दुर्ग धरती के

जेवर के रूप में वास्तुकला का अनुपम उदाहरण है। सिवाणा, अजमेर का तारागढ ,बूंदी का तारागढ, आबू का अचलगढ, मेवाड का माडलगढ ,जयपुर का आम्बेर, जयगढ़ और नाहरगढ, दौसा, बयाना, तीजात ,सौजत, कुचामन, हाड़ौती का शेरगढ, सिरोही के बसंतगढ आदि विभिन्न दुर्ग, किले एवं गढ इतिहास के मूक साक्षी है। इनसे जुड़ी वीरता, साहस, त्याग और बलिदान की घटनाओं से ही बना है राजस्थान का इतिहास।

देश विदेश के पर्यटक राजस्थान के गौरवपूर्ण इतिहास की गाथाएं सुनकर इतिहास से जुडे किले-गढ, दुर्ग, स्मारक आदि देखने राजस्थान आने हेतु लालायित हो उठते है। पर्यटन उत्पाद के रूप में राजस्थान के इतिहास के प्रतीक इन स्थानों में ही जीवंत है यहां की सभ्यता और संस्कृति।

5.5.2 संस्कृति:

राजस्थान की संस्कृति के विभिन्न रंग है। समृद्ध लोक संस्कृति के परिचायक है - यहां के तीज त्यौहार, उमंग व उल्लास के प्रतीक मेले, आस्था और विश्वास के केन्द्र यहां के मंदिर, मस्जिद एवं अन्य उपासना स्थल। लोक नृत्यों की भाव-भगिमाएं, गीतों के बोल और रेत पर थिरकता जीवन, वाद्यों की झंकार और मधुर तान पर मानों राजस्थान सैलानियों का निरंतर ही आगाज करता है। 'पधारो म्हारे देस' के निमंत्रण की संवाहक है यहां की हस्तकलाएं, मूर्ति शिल्प, चित्रकलाएं, परिधान, खान-पान आदि। सांस्कृतिक वैभव वाले इस प्रदेश की सौरभ इसलिए विदेशों तक फैली है।

5.5.3 वास्तु एवं स्थापत्य:

कालीबंगा, गणेश्वर आहड़, नोह आदि संस्कृतियों से यह स्पष्ट हो गया है कि मोहनजोदड़ो, हड़प्पा एवं सिंधु घाटी सभ्यता की भांति राजस्थान का नगर विन्यास एवं भवन शिल्प उत्कृष्ट कोटि का रहा है। राजस्थान के किले, राजमहल कला के महत्वपूर्ण अंश है जिनमें फव्वारों से युक्त बाग बगीचे, भव्य चित्रशालाएं, गवाक्ष-झरोखे, रंगमहल आदि इस कदर खूबसूरत बने है कि देखने वाला देखता ही रह जाता है। सांस्कृतिक समृद्धता के द्योतक राजस्थान के उदयपुर का सिटी पैलेस, सज्जनगढ अजमेर का अढाई दिन का झोपड़ा, शाहजहां की मस्जिद, मेयो कॉलेज, अलवर का विनय विलास महल, विजय मंदिर पैलेस, सिलीसेढ झील एंव पैलेस, बाडमेर के किराडू के मंदिरों के भग्नावशेष, भरतपुर के डीग के जल महल, बीकानेर का लालगढ, गजनेर एवं लक्ष्मीविलास पैलेस, देशनोक का करणीमाता मंदिर, बूंदी की बावडियॉ स्थापत्य और शिल्पकला के उत्क भट उदाहरण है। यही नहीं शेखावाटी, जैसलमेर, बीकानेर के झरोखें एवं गवाक्ष की बारीक कार्य लिए पत्थर की हवेलियां, मूर्तिया एवं वास्तुकला का अप्रतिम चित्तौड़गढ का विजय स्तंभ एवं पद्मिनी, कुम्भा के शानदार महल, बारीक ढंग से तराशे हुए खंभों एवं पट्टियों में आकर्षक आगन ब्रेकेट वाली खिडकियॉ और शानदार मेहराबों से युक्त राजपूत वास्तुकला का अनुपम डूंगरपुर का उदय विलास पैलेस, देव सोमनाथ का मंदिर, जयपुर का सिटी पैलेस, जंतर-मंतर, सरगासूली, अल्बर्ट हॉल, मोती डूंगरी, घाट की गुणी, आमेर महल, झालावाड़

की भवानी नाट्यशाला, चंद्रभागा मंदिर, झालरापाटन बौद्ध गुफा का स्तूप, जोधपुर का उम्मेद भवन पैलेस, कोटा का चंबल गार्डन, जग मंदिर, बाडोली के मंदिर, राजसमन्द की नौचो की झील, रणकपुर के जैन देवालय, माऊन्ट आबू के देलवाड़ा के जैन मन्दिर, पुष्कर का ब्रह्म मंदिर आदि वास्तु एवं स्थापत्य कला के अप्रतिम उदाहरण है।

5.5.4 मूर्तिकला:

मूर्तिकला की दृष्टि से राजस्थान अत्यधिक समृद्ध प्रदेश है। यहां की सभ्यताओं के उन्खनन से प्राप्त मूर्तियां कलाकारों के गौरवमयी इतिहास की साक्षी है तो वर्तमान में भी मूर्तिकला प्रदेश में एक व्यवसाय के रूप में विकसित हुई है। पत्थर की मूर्तियों के लिए जयपुर, राजस्थान का प्रमुख केन्द्र है। यहां संगमरमर की मूर्तियां बनाने का काम होता है। खजाने वालों का रास्ता में अनेक मूर्ति निर्माण की कार्यशालाएं है। ऐसा अनुमान है कि लगभग 5000 मूर्तिकार जयपुर में मूर्ति निर्माण का कार्य करते है। देवी-देवताओं, नर्तक-नृत्यांगनाओं, पशु-पक्षियां, स्त्री-पुरूष की जयपुर की शानदार कला की प्रतीक मूर्तियां विदेशी सैलानियों के आकर्षण का केन्द्र है। जयपुर के अलावा डूंगरपुर में तथा बांसवाडा के तलवाड़ा गांव के मूर्तिकारों द्वारा काले पत्थर को कांट-छांटकर बनायी मूर्तियां भी खासी प्रसिद्ध है। आबू पर्वत, उदयपुर, कोटा, सिरोही आदि नगरों के आस-पास के इलाकों में रहने वाले मूर्तिकारों द्वारा नरम पत्थर पर उत्कीर्ण मूर्तियां भी देश-विदेश में खरीदी जाती है।

चित्तौड़, उदयपुर, जयपुर, कोटा, बूंदी, जोधपुर, करौली, बीकानेर आदि में काष्ठ कला की मूर्तियां बनायी जाती है। काष्ठ की मूर्तियां अधिकतर पुतलियों के रूप में बनती है। राजस्थान में निर्मित कठपुतलियों के अलावा लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊंट, बंदर, मोर आदि के मनमोहक खिलौनों का आकर्षण सुदूर देशों तक है। पीतल, तांबा ,कासा, स्वर्ण तथा अष्टधातु के प्रयोग से बनायी जाने वाली मूर्तियां के मामले में भी राजस्थान अग्रणी है। जोधपुर जहां जस्ते की सुंदर मूर्तियों का केन्द्र है वहीं जयपुर की सोने चांदी की मूर्तियां विदेशों में निर्यात होती है। इसी प्रकार मिट्टी से बनायी जाने वाली मूर्तियों में राजस्थान की विशेष ख्याति है। यहां नाथद्वारा के निकट के गांव 'मोलेला' की टेराकोटा (मृणमूर्तियां) इतनी सुंदर होती है कि उन्हें देखकर अचरज होता है। चिकनी मिट्टी को कूट धोकर गीली मिट्टी से फलक तैयार किया जाता है, इस फलक पर फिर मिट्टी की लोईयां बनाकर आकृतियों का निर्माण किया जाता है फिर उन्हें पकाया जाता है। विभिन्न देवी-देवताओं, पशु-पक्षी, रेलगाडी बैलगाड़ी आदि विविध रूपों में निर्मित राजस्थान की मिट्टी की मूर्तियों की अपनी विशिष्ट पहचान है। पारम्परिक मूर्तिकला के साथ लोक एवं समकालीन मूर्तिकला में भी राजस्थान अत्यधिक समृद्ध है।

5.5.5 चित्रकला:

मूर्तिकला के साथ, राजस्थान की समृद्ध चित्रकलाएं पर्यटन के महत्वपूर्ण उत्पाद है। कई बार विदेशों से पर्यटक केवल इसलिए भारत और विशेषकर राजस्थान आते है कि राजस्थान की विविध चित्र शैलियों के चित्र खरीदकर ले जा सके। राजस्थान के भित्ती चित्र, मांडणे, देवत

,पथवारी, सांझी कपड़े पर निर्मित चित्र पर चित्र पिछवाई, फड़, कागज पर निर्मित चित्र, पाने, लकड़ी पर निर्मित चित्र कावड़, पक्की मिट्टी पर निर्मित चित्र पात्र, लोक देवी-देवता व खिलौने, मानव शरीर पर चित्र गुदना, मेहंदी आदि के प्रति पर्यटकों में अत्यधिक आकर्षण है।

उदयपुर, भीलवाड़ा और शाहपुरा में लगभग पांच सौ वर्ष पुरातन पर चित्रण परम्परा आज भी जीवित है। राजस्थानी में फड़ के नाम से जानी जाने वाली इस चित्र शैली में असंख्य घटनाओं को एक सतह पर दर्शाया जाता है। फड़ शैली के चित्र, राजस्थान की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत इस रूप में है कि इनके अंतर्गत लोक नाट्य, गायन, वादन, मौखिक साहित्य, चित्रकला व लोक धर्म का सुंदर संगम है।

प्रदेश की किशनगढ शैली, मारवाड़, नाथद्वारा, मेवाड़, अलवर, बूंदी, जयपुर, कोटा, बीकानेर आदि शैली के चित्रों की अपनी अलग विशिष्टताएं है। इन शैलियों के चित्रकारों द्वारा निर्मित चित्र पर्यटकों की पहली पसंद होते है।

5.5.6 संगीत एवं नृत्य:

राजस्थान की सांगीतिक परम्पराएं आरंभ से ही समृद्ध रही है। शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत ध्रूपद, ख्याल शैली के साथ-साथ विभिन्न संगीत घरानों के विकास में राजस्थान का ही योगदान रहा है। वाद्य संगीत में प्रसिद्ध सितार का सेनिया घराना कहते है राजस्थान से ही विकसित हुआ। बीन, मोहन वीणा आदि राजस्थान की ही देन है।

राजस्थान अपने लोक संगीत, लोक नृत्यों और लोक वाद्यों की विशिष्ट परम्पराओं से पूरे देश ही नहीं विदेशों तक में पहचाना जाता है। लोक संगीत की मांड राग की गूंज तो सुदूर देशों तक पहुंची है। भारतीय फिल्म संगीत में भी यहां के लोक संगीत का विशेष प्रभाव है। विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले लोक गीत, सारंगी ,जंतर, रावण हत्था, तंदुरा, बांसुरी, अलगोजा, पूंगी, शहनाई, इकतारा, मशक, नड़, मोरचंग, मृदंग, ढोलक, ढोल ,नगाड़ा मारत, नौबत, खंजरी, मंजीत, झांझ, थाती, खड़ताल आदि लोक वाद्यों की विशिष्ट पहचान है। पर्यटन स्थलों पर इन वाद्य यंत्रों को बजाते कलाकारों को देखते पर्यटक मानो मंत्रमुग्ध हो उठते हैं। यही नही राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में वहां की परम्परा के साथ लोकनृत्यों की छटा भी देखते ही बनती है। लोकनृत्यों में शेखावटी का गीदड एवं चंग नृत्य, मेवाड़-बाडमेर क्षेत्र में ज्यादा प्रसिद्ध गैर नृत्य, मारवाड़ का डांडिया नृत्य, जालौर का ढोल नृत्य, जसनाथी संप्रदाय के लोगों द्वारा अंगारों पर किया जाने वाला अग्नि नृत्य, अलवर-भरतपुर का बम नृत्य ,मांगलिक अवसरों पर किया जाने वाला घूमर, वनवासियों, घुमन्तु जातियों द्वारा किए जाने वाले नृत्य इतने मोहक होते है कि इन्हें देखकर पर्यटक ठगे से रह जाते हैं। तेज लय पर थाली के किनारों, कांच के टुकडों, तलवारों ,कीलों आदि पर कलाकारों द्वारा शारीरिक क्रियाओं के अद्भुत चमत्कारों के साथ किया जाने वाला भवाई नृत्य भी खासा प्रसिद्ध है। भवई के साथ लोक देवता बाबा रामदेव की आराधना में तानपुरा और चौतारे की धुन पर तेरह मंजीरों की सहायता से किया जाने वाला तेरह ताली नृत्य भी देशी विदेशी पर्यटकों में अत्यन्त लोकप्रिय है।

राजस्थान में लोक नाट्य भी यहां की संस्कृति की समृद्धता को दर्शाते है। कुचामनी ख्याल, शेखावटी ख्याल, जयपुरी ख्याल, गवरी बीकानेर की अमरसिंह राठौड़, हेड़ाऊ मेदी की रम्मते, जयपुर का तमाशा, स्वांग ,भोपों द्वारा खेली जाने वाली फड़, लीला, नौटंकी आदि लोकनाट्यों में राजस्थान की संस्कृति एवं परम्परा के विविध रंग समाए हुए है।

5.5.7 हस्तकलाएं

हस्तकलाओं की दृष्टि से राजस्थान पूरे विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। यहां पर कपड़े की बुनाई, रंगाई-छपाई व बंधेज के कार्य की अलग ही पहचान है तो संगमरमर की प्रतिमाएं, जवाहरात की कटाई चांदी के आभूषण, हाथी दांत व चंदन की कृतियां, गलीचा बुनाई, लाख का काम, जालौर-जोधपुर के चमड़े की जूतियां आदि को देशी-विदेशी पर्यटक अत्यधिक पसंद करते है। प्रदेश के पर्यटन स्थलों पर ही नहीं बल्कि दूसरे राज्यों के पर्यटन केन्द्रों पर भी राजस्थान की हस्तकलाओं की मांग रहती है।

5.5.8 त्यौंहार, मेले एवं पर्व:

उत्सवधर्मिता का प्रदेश राजस्थान अपने पारंपरिक मेलों, त्योहारों एवं पर्वों से भी देश-विदेश में विख्यात है। इनके माध्यम से राजस्थान के जन जीवन को बारीकी से समझा जा सकता है। राजस्थान को अगर नजदीक से देखना हो, महसूस करना हो तो मेले-पर्वों में भाग लेना किसी सुखद अनुभव से कम नहीं होगा। अजमेर के निकट पुष्कर में भरा जाने वाला पशु मेला, करौली के निकट कैला देवी का लक्खी मेला, रणथम्भौर का गणेश मेला, देशनोक में करणी माता का मेला, पोकरण में रामदेवरा मेला, विश्नोई संप्रदाय का नोखा में लगने वाला जम्भोजी का मेला, जयपुर का शीतला माता मेला, हनुमानगढ में गोगाजी का, डूंगरपुर में बेणेश्वर मेला, अलवर का भृतहरी मेला, अजमेर में उर्स का मेला आदि स्थानीय संस्कृति को ही उजागर नहीं करते बल्कि आस्था और विश्वास की अटूट भारतीय परम्पराओं को भी इनसे समझा जा सकता है। राजस्थान के गणगौर, तीज, अक्षय तृतीया, शीतलाष्टमी मकर सक्रांति, बच्छ बारस, उबछकट आदि लोक त्यौहारों में जन जीवन की महक है।

पिछले कुछ वर्षों से राज्य के विभिन्न स्थानों की परम्पराओं ओर संस्कृति को दृष्टिगत रखते हुए राज्य सरकार द्वारा पर्यटन मेलों का भी आयोजन किए जाने की पहल हुई है। इनमें उदयपुर का मेवाड़ समारोह, बीकानेर का ऊंट महोत्सव, नागौर का पशु मेला, माऊन्ट आबू का ग्रीष्म समारोह, झालावाड़ का चन्द्रभागा मेला, पुष्कर मेला, कोटा का दशहरा उत्सव आदि अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन के नक्शे पर दर्ज हो चुके है।

5.5.9 वन्य जीव:

विषम जलवायु, भौगोलिक परिस्थितियों के बावजूद वन्यजीवों की दृष्टि से राजस्थान अत्यधिक समृद्ध प्रदेश है। राजस्थान में वन्य जीव संरक्षण के लिए राष्ट्रीय उद्यान एवं 25 वन्यजीव अभयारण्य एवं 32 आखेट निषेद्ध क्षेत्र घोषित हुए है। वन्य जीव अभयारण्यों के अलावा जंतुआलयों की दृष्टि से भी राजस्थान की अपनी अलग पहचान है। वर्ष व 876 में

जयपुर में स्थापित जंतुआलय राज्य का सबसे बड़ा चिड़ियाघर हैं। इसी प्रकार 1878 में स्थापित उदयपुर के गुलाब बाग, 1922 में पब्लिक पार्क स्थित बीकानेर का जंतुआलय, 1936 मं जोधपुर में तथा कोटा में 1954 में स्थापित जंतुआलयों में आज भी बाहर से आने वाले पर्यटकों का तांता लगा रहता है।

राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले में प्रख्यात रणथम्भौर दुर्ग के चारों ओर रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान में देश की सबसे कम क्षेत्रफल की बाघ परियोजना है। इस उद्यान में बाघ, बघेरे, चीतल, नीलगाय, रीछ एवं चिंकारों को स्वच्छन्द विचरण करते देखा जा सकता है। इसी प्रकार भरतपुर में एशिया की सबसे बडी पक्षियों की प्रजनन स्थली केवला देव (घाना) राष्ट्रीय पक्षी उद्यान है। यूनेस्को ने इसे विश्व प्राकृतिक धरोहर में सम्मिलित किया है। यहां काँमन क्रेन, दुर्लभ साइबेरियाई सारस, पोचार्ड, बैगरेल ,गीज आदि पक्षियों के समूह पाये जाते है।

राज्य के अभयारण्यों में अलवर में बाघ परियोजना हेतु संरक्षित सारिस्का वन्य जीव अभयारण्य में शेर, बाघ के अलावा सांभर, चितल जंगली सुअर, चिंकारा आदि स्वच्छंद विचरण करते है। इसी प्रकार करोड़ो वर्षों से पृथ्वी के गर्भ में दबे जीवाश्मों को संरक्षण प्रदान करने की दृष्टि से जैसलमेर व बाड़मेर के तीन हजार वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले राष्ट्रीय मरू उद्यान में प्रकृति के अद्भुत करिश्में के रूप में लाखों वर्ष पूर्व के सागरीय जीवन के बूड फासिल्स देखे जा सकते है। कोटा का दर्रा वन्य जीव अभयारण्य सांभर, हिरण के कारण जाना जाता है तो कुम्भलगढ वन्य जीव अभयारण्य रीछ, जंगली सुअर, मुर्गा एवं भेड़ियों के लिए प्रसिद्ध है। जयसमंद अभयारण्य बघेरे, लकडबग्धे, सियार के कारण, वन विहार आ मोर, सांभर के कारण, सीतामाता अभयारण्य उड़न गिलहरियों के कारण, नाहरगढ जैविक उद्यान चिंकारों, काले हिरण, के कारण, जमवारामगढ अभयारण्य लंगूरों के कारण ,चम्बल अभयारण्य घड़ियालो के कारण, रामगढ अभ्यारण्य राष्ट्रीय पशु बाघ के कारण, गजनेर अभयारण्य इम्पीरीयल सेन्डगाउज के लिए, ताल छापर काले हिरणों के लिए विश्व प्रसिद्ध है। इनके अलावा फूलवारी की चाल, भैंसरोढगढ बस्सी, सज्जनगढ शेरगढ, बंध बारेठा, रावली हाडगढ़, कैला देवी अभयारण्य, पार्क, आबू अभ्यारण्य आदि में विविध वन्यजीवों को स्वच्छन्द विचरण करते देखा जा सकता है।

वन्य जीवों में राजस्थान, आसाम के बाद दूसरा देश का सबसे समृद्ध प्रांत है। यहां के अभयारण्यों के प्रति आकर्षण का ही परिणाम है कि पर्यटकों से इनके आस पास के क्षेत्र सदैव भरे रहते है।

5.5.10 साहसिक खेल:

पिछले कुछ वर्षों से राजस्थान साहसिक खेलों की दृष्टि से भी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बनता जा रहा है। वाटर स्पोर्टस, पर्वतारोहण, हैंग ग्लाइडिंग, पैरासिलिंग आदि साहसिक खेलों के लिए भी राजस्थान अब पहचाना जाता है। हाल ही में बूंदी में "साहसिक खेल महोत्सव" का आयोजन भी किया गया था। इस महोत्सव में नौकायन, वाटर स्कूटर राईड, होरस पैगिंग, पैरासिलिंग आदि की प्रतिस्पर्धाएं करवायी गयी।

राज्य के पर्वतीय क्षेत्र उदयपुर, कुंभलगढ चित्तौड़, माऊंट आबू के चारों और के क्षेत्र के साथ अलवर में सारिस्का और जयपुर में आमेर और रामगढ की पहाडियों में पर्वतारोहण के शौकीन लोग छोटे-छोटे समूहों में पर्वतारोहण करते देखे जा सकते है। हाल ही में जयपुर में अन्तर्राष्ट्रीय बैलून समारोह का आयोजन भी यहां के साहसिक पर्यटन की संभावनाओं के नए रास्ता खोलने वाला है। पहाड़ी और मैदानी इलाकों में पेरासेलिंग और पैराग्लाइडिंग के प्रति भी अब आकर्षण बढ़ा है। जयपुर में नाहरगढ की पहाड़ियों में पैरासेलिंग और ग्लाइडिंग काफी समय से की जा रही है। इसी प्रकार कोटा की चम्बल नदी, अलवर में सिलिसेढ उदयपुर में जयसमंद में वाटर स्पोर्टस का प्रचलन बढ़ा है तो रेगिस्तानी क्षेत्रों बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर आदि में कैमल, जीप सफारी का आनंद लेते पर्यटकों को देखा जा सकता है। जयपुर अब प्रसिद्ध केन्द्र बनता जा रहा है। इसके अलावा घुड़सवारी वॉल क्लाइम्बिंग आदि साहसिक खेलों की दृष्टि से राजस्थान पर्यटकों की पसंद बनता जा रहा है।

5.8 सारांश:

पर्यटन करते समय पर्यटक स्थान विशेष की दृश्यावलियों का ही आनंद नही लेता बल्कि वह पर्यटन स्थल पर मिलने वाली विभिन्न वस्तुओं को भी यादगार के रूप में ले जाना चाहता है। पर्यटन उत्पाद के अंतर्गत प्राकृतिक दृश्यावलियां, पहाड़, रेगिस्तान, स्थान विशेष का इतिहास भी होता है तो मानव निर्मित इमारतें, चिड़ियाघर, संग्रहालय भी आते है। पर्यटन उत्पाद मानव एवं प्रकृति निर्मित होने के साथ ही घटना आधारित भी होते हैं। मसलन किसी स्थान पर किसी सांस्कृतिक समारोह का आयोजन निर्धारित समय पर होता है, इसलिए भी पर्यटक वहां जाना पसंद करते हैं। धीरे-धीरे वह घटना पर्यटन का कारण बनने लगती है। ऐसे में घटनाएं भी पर्यटन उत्पाद का कार्य करती है। कुल मिलाकार पर्यटन से संबद्ध सभी प्रकार की प्रकृति एवं मानव निर्मित स्थितियां पर्यटन उत्पाद में आती है।

पर्यटन के निरंतर बढ़ते महत्व के संदर्भ में यह जरूरी है कि पर्यटन उत्पादों में इस प्रकार से वृद्धि की जाए कि वह सकारात्मक पक्ष लिए पर्यटन उद्योग को सभी प्रकार से लाभ पहुंचा सके। राजस्थान के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि राजस्थान अपने गौरवमयी इतिहास, कला-संस्कृति, विविधताओं से भरी जलवायु, प्राकृतिक धरोहर, स्थापत्य कला से समृद्ध इमारतों, वन्य जीव अभ्यारण्यों आदि सभी में अत्यधिक समृद्ध हैं। इस रूप में राजस्थान के पर्यटन उत्पाद विश्व स्तर पर अपनी पहचान बना चुके हैं। इस इकाई में आपको राजस्थान के पर्यटन उत्पादों के बारे में ही जानकारी प्रदान की गयी है ताकि आप पर्यटन उद्योग के प्रभावी कियान्वयन में पर्यटन उत्पादों के महत्व से अवगत हो सकें

बोध प्रश्न :

1. पर्यटन उत्पाद के विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

2. पर्यटन उत्पाद के उपभोग को कौन से तत्व प्रभावित करते है व साथ ही पर्यटन उत्पाद की कौन सी विशेषताएं उसके उपभोग को सुनिश्चित करती है। स्पष्ट करें।

.....

.....

3. राजस्थान के पर्यटन उत्पादों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

.....

.....

इकाई - 6 : प्रदर्शनकारी कलाएं

रूपरेखा:

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 कला: अर्थ एवं परिभाषा
6.3 प्रदर्शनकारी कला से आशय
6.4 विविध प्रदर्शनकारी कलाएं
6.5 राजस्थान की प्रदर्शनकारी कलाएं
6.5.1 राजस्थानी काव्य, गीत
6.5.1.1 राजस्थान की काव्य परम्परा
6.5.1.2 लोकगीत
6.5.2 संगीत-कला
6.5.2.1 शास्त्रीय संगीत
6.5.2.2 लोक संगीत
6.5.3 नृत्य एवं लोकनाट्य कलाएं
6.5.3.1 शास्त्रीय नृत्य
6.5.3.2 लोक नृत्य
6.5.3.3 लोक नाट्य
6.5.4 रंगकर्म
6.5.5 कठपुतली कला
6.5.6 अन्य प्रदर्शन कलाएं
6.6 सारांश

6.0 उद्देश्य:

इस इकाई को पढने के बाद आप -

- कला का अर्थ एवं परिभाषा जान सकेंगे।
- प्रदर्शनकारी कलाओं से अवगत हो सकेंगे।
- राजस्थान की विविध प्रदर्शनकारी कलाओं के बारे में जान सकेंगे।
- राजस्थान की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर से परिचित हो सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना:

कला संस्कृति की दृष्टि से राजस्थान देश भर में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। दूर तक लहराता यहां का रेत का समन्दर, लोक कलाओं में गूंथा परिवेश, समृद्ध साहित्य आदि सभी कुछ इस कदर आकर्षक, मनोरम है कि पर्यटक यहां के सम्मोहन में बंध कर रह जाते है। 'केसरिया बालम आओ नी, पधारो म्हांरे देस...' की स्वर लहरियों के साथ राजस्थान अपने

आतिथ्य सत्कार के लिए देशभर में अपनी अलग पहचान रखता आया है। यहां की विदिध कलाएं मनभावन तो है ही, मनुष्य की चेतना का गुणात्मक विकास करने वाली भी है। विशेष अवसरों पर गाए जाने वाले गीत, लोकसंगीत, नृत्य एवं रंगमंच की समृद्ध परम्पराएं, कठपुतलियां आदि का प्रदर्शन, दरअसल, यहां के जीवन का ही दर्शन है। इन्हीं में समाया है- यहां का परिवेश। कला का क्या है अर्थ, राजस्थान की प्रदर्शनकारी कलाओं की क्या है विशेषताएं, कैसे उनका जन जीवन से है जुड़ाव और किस-किस रूप में वे लुभाती है? आईए जानें-

6.2 कला - अर्थ एवं परिभाषाएं:

कल्पना की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति या यूं कहें कि मानवीय भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति ही दरअसल कला है। भारतीय परम्परा में आरंभ से ही कहा गया है- ' लीयते परमानन्दे ययाडत्मा सा परा कला। ' अर्थात जो कला परम आनंद प्रदान करती है, वही सच्ची व श्रेष्ठ कला है और वही कल्याणकारी भी होती है।

कला का लक्ष्य आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार तथा परम तत्व की ओर उन्मुख होना है। यह सही है कि प्राचीन काल से ही भारतीय कला मुख्यत: धर्म एवं आध्यात्मिक चिन्तन को समर्पित रही है परन्तु इसके साथ ही उसमें तत्कालीन सामाजिक जीवन भी विभिन्न स्तरों पर स्पन्दित हुआ है। कुल मिलाकर कला में कल्पना की अभिव्यक्ति ही महत्वपूर्ण होती है। यह अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से एवं विभिन्न माध्यमों के द्वारा हो सकती है।

टालस्टायॅ के अनुसार - 'कला एक मानवीय चेष्टा है, जिसमें एक मनुष्य अपनी अनुभूतियों को स्वेच्छापूर्वक कुछ संकेतों के द्वारा दूसरों पर प्रकट करता है।

हर्बर्ट रीड के मतानुसार- " एक साधारण सा शब्द कला, साधारणतया उन कलाओं से जुड़ा होता है, जिन्हें हम 'रूपकंर ' या 'दृश्य' कलाओं के रूप में जानते है। वस्तुत: इसके अंतर्गत साहित्य एवं संगीत कलाओं को भी शामिल किया जाना चाहिए, क्योकिं सभी कलाओं में कुछ तत्व एक समान होते है।"

डॉ श्याम सुन्दर दास के शब्दों में- "जिस अभिव्यक्ति में आंतरिक भावों का प्रकाशन और कल्पना का योग रहता है, वहीं कला है।"

विश्व कवि रविन्द्र नाथ टैगोर का कहना था- "जो सत् है, जो सुन्दर है, वही कला है।"

इन परिभाषाओ के परिप्रेक्ष्य में यह सहज ही कहा जा सकता है कि कला में कल्पनाशक्ति के जरिये आत्म प्रकाश और आत्मनिर्णयक शक्ति का विकास होता है।

कला का अर्थ उसके प्रभाव में निहित होता है। वैसे भी कलाएं ही मानव को शिक्षित, सुसंस्कृत बनाकर संस्कार प्रदान करती है। इन्द्रियों के आधार पर कलाओं का विभाजन भी किया जा सकता है। मुख्यत: कलाओं को विद्वानों ने दो प्रकार से वर्गीकृत किया है। प्रथम उपयोगी कला और दूसरे प्रकार की ललित कलाएं। उपयोगी कलाओं का संबंध जहां हमारी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति से है वहीं ललित कलाएं मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति, सौंदर्य बोध और आध्यात्मिक चेतना से संबंध रखती है। ललित कलाओं के अंतर्गत काव्यकला, संगीतकला,

चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्यकला आती है तो उपयोगी कला के अंतर्गत का ठकला, स्वर्णकारी दस्तकारी आदि वे कलाएं आती है जो जीवन को संवारती, सजाती और जीवित रखती है।

हीगल ने कलाओं का जो विभाजन किया है, वह वर्तमान समय में अधिक प्रासंगिक है। उनके अनुसार दृश्य और श्रव्य रूप में कलाओं को विभक्त किया जा सकता है। नृत्य, चित्र, मूर्ति एवं वास्तुकला को दृश्य कला कहा जा सकता है तो संगीत एवं काव्य को श्रव्य कलाओं के अंतर्गत रखा जा सकता है।

थोड़ा और गहराई में जाएं तो ललितकलाओं को भी दृश्य अथवा रूपंकर कलाओं तथा प्रदर्शनकारी कलाओं के रूप में बांटा जा सकता है। यहां इस इकाई में आपकों प्रदर्शनकारी कलाओं के बारे में विस्तार से जानकारी दी जा रही है।

6.3 प्रदर्शनकारी कला से आशय:

प्रदर्शनकारी कलाओं के विविध स्वरूप है। ये जीवन को आनंदित ही नहीं करती बल्कि विविध रंगों से भरती भी है। दरअसल, प्राचीन भारतीय परम्पराओं को पुष्ट करती है-प्रदर्शनकारी कलाएं।

प्रदर्शनकारी कलाएं वे है जो दर्शकों के सन्मुख प्रदर्शित की जाती है। इस प्रकार की कलाओं के अंतर्गत गायन, वादन, नृत्य आदि को सम्मिलित किया जाता है। प्रदर्शनकारी कलाओं को श्रव्य-दृश्य कलाएं भी कहा जाता है, चूंकि इनके अंतर्गत सुनने और देखने का कार्य होता है। लोक गीत, लोकनृत्य, शास्त्रीय नृत्य, नृत्याभिनय ,नाट्यकलाओं, वाद्य संगीत, रंगमंच, कठपुतली प्रदर्शन आदि को दृश्यकलाओं की श्रेणी में रखा जा सकता है।

6.4 विविध प्रदर्शनकारी कलाएं:

प्रदर्शनकारी कलाओं के अंतर्गत मुख्यत: काव्यकला, संगीत एवं नृत्य तथा नाट्यकलाओं को सम्मिलित किया जाता है। काव्य कला के बारे में यह कहा जा सकता है कि शब्दों के संयोग से भाषा का निर्धारण होता है और भाषा की साधना ही 'काव्य' को जन्म देती है। भारतीय परम्परा में काव्य के घटक तत्व शब्द और अर्थ है जो कि अलग-अलग न होकर एक ही वस्तु के दो अंग है। राजस्थान की काव्य परम्परा अत्यधिक समृद्ध है। यहां के लोकगीत, छन्द आदि इतने समृद्ध है कि वर्षो से चली आ रही इनकी परम्पराएं आज भी जीवन्त है।

प्रदर्शनकारी कलाओं का दूसरा रूप संगीत है। संगीत का अर्थ है- सम्यक गीत। गीत और वाद्य की अन्वति ही संगीत है। वैदिक काल से ही भारतीय संगीत की परम्परा देश में चली आ रही है। काव्य की ही भांति संगीत भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। राजस्थान के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि संगीत यहां के कण-कण में विराजमान है। लोक संगीत की स्वर लहरियों में मानो राजस्थान अपनी विरासत की पहचान कराता है।

नृत्य एंव नाट्यकला भी प्रदर्शनकारी कलाओं का ही रूप है। भारतीय परंपरा में नाट्यकला को 'रस ब्रहमवाद ' से अभिहित किया गया है तथा नृत्य या नर्तन को नाट्यकला का ही अंग माना गया है। नाट्यकला में वाक्यों को अभिनय के माध्यम से दर्शाया जाता है।

यद्यपि भारतीय नृत्य संगीत का ही अंग माना जाता है तथापि सैद्धान्तिक रूप में वह शुद्ध और स्वतंत्र कला है। राजस्थान में शास्त्रीय और लोकनृत्यों की परम्परा आरंभ से ही रही है।यहां की लोकनाट्य शैलियां भी अत्यधिक समृद्ध है तो कठपुतली प्रदर्शन के जरिए भी यहां के जीवन का बारीकी से चित्रण किया गया है। पारसी रंगमंच से शुरूआत हुए यहां के थिएटर की भी पहचान सुदूर प्रदेशों तक है।

प्रदर्शनकारी कलाओं के अंतर्गत भावों की अभिव्यक्ति की अनुभूति देखने एवं सुनने वालों को करायी जाती है। गीत, संगीत, नृत्य, नाटक आदि जीवन में रस ही नहीं घोलते बल्कि सुखानुभूति भी कराते है।

6.5 राजस्थान की प्रदर्शनकारी कलाएं:

राजस्थान की प्रदर्शनकारी कलाएं यहां के जन-जीवन से जुड़ी है। यहां का गीत-संगीत, नृत्य, नाट्यकलाएं, सभी कुछ मनभावन है। राजस्थान के गौरवमयी इतिहास, कला संस्कृति, यहां की जलवायु, भौगोलिक परिवेश आदि से किसी न किसी रूप में जुड़ी विभिन्न प्रदर्शनकारी कलाओं का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितनी यहां की सभ्यता। प्रत्येक वर्ग, जाति, क्षेत्र और काल की सीमाओं के बीच प्रदर्शनकारी कलाओं की परम्पराएं आज भी जीवंत है।

राजस्थान की प्रमुख प्रदर्शनकारी कलाओं को निम्न श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

- राजस्थानी काव्य, गीत परम्परा
- संगीत कला
- नृत्य एवं नाट्यकला
- रंगकर्म
- कठपुतली कला

6.5.1 राजस्थानी काव्य, गीत परम्परा :

राजस्थानी काव्य, गीतों की परम्परा अत्यधिक समृद्ध है। इतिहास की गाथाओं, जीवन के विभिन्न पहलूओं, विरह, श्रृंगार आदि सभी रूपों में यहां का काव्य सुदूर देशों तक पहुंचा है तो लोकगीतों में गूंथी यहां की जीवटता भी विशिष्टता लिए है। राजस्थानी काव्य एवं गीत परम्परा को दो भागों में विभक्त कर इनका अध्ययन किया जा सकता है। प्रथम राजस्थान की काव्य परम्परा के रूप में तथा दूसरी राजस्थान के लोक गीतों की वर्षों से चली आ रही परम्परा के रूप में।

6.5.1.1 राजस्थान की काव्य परम्परा:

राजस्थान की शुरूआती काव्य परम्परा में नरपति नाल्ह रचित 'बिसलदेव रासो' चन्द्रबरदाई रचित 'पृथ्वीराज रासो', राठौड़ पृथ्वीराज रचित 'किसन रूक्मणी री वेली' आदि प्रसिद्ध काव्य कृतियां है। प्रारंभिक दौर के अन्य कवियों में शालिभद्र सूरी, चंद्र के पुत्र जल्हान, विजयपाल रासो के रचयिता नल्ला सिहं भट्ट आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। सोलहवीं एवं

सत्रहवीं सदी के अंत तक का काल राजस्थानी काव्य का स्वर्णिम काल कहा जा सकता है। इसी काल में यहां बोली जाने वाली डींगल भषा मानक साहित्यिक रूप में विकसित हुई है।

दादू सुंदरदास, वाजिन्द, चरणराम, दयाबाई, हरिदास, पारसराम जैसें संत कवियों ने राजस्थान की संत काव्य परम्परा को ही समृद्ध नहीं किया बल्कि यहां के नैतिक जीवन को भी मान्यता प्रदान की। कवियों द्वारा प्रयुक्त राजस्थानी पिंगल, सधुक्कडी, मारवाडी भषाओं का अद्भूत मिश्रण भी है। मीरा की रचनाएं यद्यपि सार्वभौमिक है फिर भी उनकी कुछ श्रेष्ठ रचनाएं राजस्थानी ही समझ सकता है। डिंगल में 'वीरगाथा काव्य' लिखने वालों में बीकानेर के पृथ्वीराज राठोड़, सोजत के दुरसा अरहा का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

आधुनिक राजस्थानी काव्य की शुरूआत उन्नीसवीं सदी से मानी जाती है। सूर्यमल्ल मिश्रण की 'वंश भास्कर', 'वीर सतसई', इसी दौर में सामने आयी। युद्ध कला का जीवन्त चित्रण इन काव्य ग्रंथों में है। इसी काल में गणेशपुरी की 'वीर विछोह', उमेरदान, मुरारीदान की रचनाएं भी चर्चित रही। केसरीसिंह बारठ, उदयराज उज्जवल, गणेशीलाल व्यास 'उस्ताद', कन्हैयालाल सेठिया, सत्यप्रकाश जोशी, गजानन वर्मा, मेघराज मुकुल रेवतराम चारण, पं. भरत व्यास, नारायणसिंह भाटी, किशोर कल्पनाकांत, मनुज देपावत, चद्रसिंह, गंगाराम पथिक, हरीश भादानी, नन्द भारद्वाज, ताराप्रकाश जोशी, सावर दईया, तेजसिंह जोधा, मो.सद्दीक ,आईदानसिंह भाटी आदि बहुत से कवियों ने राजस्थानी काव्य को निरंतर पुष्ट किया है।

6.5.1.2 लोकगीत :

राजस्थान के लोक गीतों की परम्परा अत्यधिक पुरानी है। वाल्मिकी और व्यास, भास, कालिदास तथा कबीर, सूर, तुलसी की कविताओं का तो समय निश्चित है परन्तु लोकगीतों की रचना का कोई समय निश्चित नहीं है। वैसे यह कहा जा सकता है कि उल्लसित लोक मानस से निकलने वाली अटूट धारा ही गीत है, जिनका लोक प्रतिभा द्वारा विभिन्न अवसरों पर सृजन एंव गान होता आया है। राजस्थान के लोक गीत लोक के मनोभावों की ही मनोहारी अभिव्यक्ति है। इनका रचना विधान भी शास्त्रीय छंदोविधान से भिन्न होता है। इनमें मानव समाज की आदि मनोवृतियां और भावनाएं, उसके हर्ष एवं उल्लास, शोक-विषाद, प्रेम-ईष्या, भय-आशंका, घृणा, ग्लानि, आश्चर्य, विस्मय, भक्ति, निवृति आदि भाव अपने सरल से सरल और विशुद्ध रागात्मक रूप में प्रकाशित होते है।

समाज में जो नर-नारी विशेषकाम करते है, जनता उनके गीत भी गाने लगती है। इनकी ध्वनियों में भी लोक संगीत के तत्व मौजूद होते है। राजस्थानी लोक गीतों में यहां के चित्ताकर्षक स्थानों सुंदर वस्तुओं कारीगरी, रीति-प्रथाओं के बारे में भी विशेषवर्णन है। आधुनिक कविता की कृत्रिमता की अपेक्षा लोकगीतों की स्वाभाविकता एवं सहजता मानव मन पर अधिक शीध्र और स्थायी होती है। लोकगीतों के बारे में यह कहा जा सकता है कि ये चेतन-अचेतन रूप में व्यक्त हुई भावनाओं के प्रतीक है। स्थानीय जन जीवन के साथ घुले-मिले राजस्थान के लोकगीतों को नवसर हार, कंठ का आभूषण ओर कानों का श्रृंगार कहा जा सकता है। लोकगीतों की समृद्ध राजस्थान की परम्परा में जन्म से मृत्यु तक के गीत मौजूद है। वृद्ध की मौत पर

जहां हर के हिंडोले गाये जाते है तो शिशु की मौत पर ' छेड़े ' प्रचलित है। विरह के इन गीतों को झुरावा या झोटावा भी कहा जाता है।

विशुद्ध भावों से परिपूर्ण राजस्थान के तीज और भात के लोकगीत किसी भी भाई-बहिन को विहल कर देते है और तो और कितनी ही ऐसी काव्य व्यंजनाएं इन लोकगीतों में है जो पारिवारिक संबंधों को सशक्त बनाती है। दामपत्य प्रेम के लिए ' आंखो, 'इमली', 'नीमड़ली' 'ओलू ', ' पनजी ', 'मरवो, 'अल', 'सूवटौ', 'सपनो', 'कुरजां, 'कसुंभौ, लहरियो, 'जल्लौ', 'उमराव', 'नींबू ' आदि लोकगीतों को सुनकर मन भाव-विभोर हो उठता है। इनमें पारिवारिक व्यक्तियों के उपमान एवं विशेषण बेजोड़ रूप में उपस्थित है। पति को भंवरजी, कंवरजी, पन्नामारू, ढोलामारू, बादीलो, हठीलौ, बिलालो जैसे विशेषणों से जहां विभूषित किया गया है वहीं पत्नी को गीतों में धण, गोरी, मरवण, नाजी, मृगनैणी ,मिजाजण, सदा सुरंगी नार आदि नामों से पुकारा गया है। लोकगीतों में स्नेहपूर्ण विलाप में भी लयात्मक संगीतात्मकता है।

जीवन का कोई भी ऐसा पहलू नहीं है जिस पर लोकगीत न हो। घर में, खेत में या कुएं से पानी लाते समय के गीतों के साथ ही धार्मिक और भक्तिगीत जिन्हें हरजस कहा जाता है, अत्यधिक मनोहारी है। इतिहास, युद्ध की कहानियां, विलाप, करूणा से भरपूर गीत है तो मरूस्थल में निरंतर पड़ने वाले अकाल को भी इन गीतों से महसूस किया जा सकता है।

राजस्थानी लोकगीतों में प्रश्नोत्तर की कला भी विशेषरूप से मिलती है। बायरौ, कव्वाली ,पणिहारी, कुरजां, सुपनौ, औलूं आदि लोकगीतों में सवाल-जवाब की प्रस्तुतियां देखते ही बनती है। इसी प्रकार पशु-पक्षियों को संबोधन के लोकगीत भी अपना विशिष्टस्थान रखते है। काग, कबूतर, मोरियो, तीतर, रूणझूण बैल, लीली घोड़ी, कमेड़ी, सूवो, मिरगलौ ,मिनड़ी आदि का संबोधन इतना मधुर है कि गीत सुनते रहने का मन करता है। मेले, त्यौंहार, देवी-देवताओं, सिद्ध पुरूषों, ऐतिहासिक पात्रों, शक्तियों और बायो, पितर-पितरानियों संबंधी भी अनेक गीत उपलब्ध है। भिन्न-भिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न गीत गाए जाने की राजस्थान में समृद्ध परम्परा है। यहीं नहीं जन्म, गर्भाधारण विवाह, सरकार के गीत आज भी जब गाए जाते है तो पूरा वातावरण उल्लासमय हो उठता है।

लोकगीत दरअसल लोक साहित्य के ही साधन नहीं है बल्कि ये जन-जन की मनोरंजित एंव जाग्रत व्याख्या है। लोक के शाश्वत, स्वस्थ एवं निश्च्छल मानवीय भावों की सरस, सहज अभिव्यक्ति के प्रतीक लोकगीत जन-जन के मुख से उद्भूत होकर पीढ़ी दर पीढी को सदुपदेश देते है।

6.5.2 संगीत कला:

संगीत के अंतर्गत राजस्थान की प्रदर्शनकारी कलाओं को दो भागों में बांटा जा सकता है। पहले भाग के अंतर्गत शास्त्रीय संगीत की परम्परा को लिया जा सकता है तथा दूसरे भाग में लोक संगीत की परम्परा को। दोनों के ही बारे में यहां बताया जा रहा है-

6.5.2.1 शास्त्रीय संगीत

संगीत राजस्थान के कण-कण में व्याप्त है। यहां के अनेक शासक स्वयं संगीतविद् थे। उदयपुर के महाराणा कुंभा ने तो 'संगीत राज' और ' संगीत मीमांसा ' जैसे ग्रंथों की रचना की थी। जयपुर के कला रसिक राजा प्रतापसिंह ने 'संगीतसार व रागमंजरी ' जैसे उत्कृष्ट संगीत ग्रंथ रचे तो बीकानेर राज्याश्रित कवि भावभट्ट ने 'अनूप संगीत विलास' और 'अनूप रत्नाकर' जैसे ग्रंथ लिखे। विश्व प्रसिद्ध संगीतज्ञ स्वामी हरिदास डागर की अद शैली को राजस्थान के संगीतकारों ने ही बचाया। ध्रुपद की चार शेलियांगोबरहारी, डागुरी, खण्डारी और नौहारी का विकास अकबर के समय से माना जाता है। इन चार में खण्डारी और नौहारी वाणियों का विकास राजस्थान से ही माना जाता है।

ध्रुवपद धमार के डागर घराने का विकास राजस्थान से ही हुआ तो ख्याल गायकी का भी राजस्थान प्रमुख केन्द्र रहा है। ख्याल गायकी का मेवाती घराना राजस्थान से ही विकसित हुआ। पटियाला घराने के निर्माण में भी राजस्थान की ही प्रमुख भूमिका रही है। वाद्य संगीत में प्रसिद्ध सितार का सेनिया घराना भी यहीं विकसित हुआ तो जयपुर का बीनकार घराना भी खासा प्रसिद्ध है।

6.5.2.2 लोक संगीत

लोक संगीत जन-मानस के स्वाभाविक भावों का उद्गार है। संस्कृति का सुखद संदेश देने वाले राजस्थान के लोक संगीत में जीवन का स्पन्दन है। लोक संगीत का मूल आधार लोकगीत है जिन्हें विभिन्न अवसरों पर गाया जाता है।

राजस्थान में लोक संगीत के क्षेत्र में गायन एवं वादन की दृष्टि से अनेक जातियों का अस्तित्व मिलता है। लोक संगीत, यहां की परम्परा, रहन-सहन, रीति रिवाज, वेशभूषा, खान-पान, देवी-देवताओं, पर्व उत्सव आदि को अभिव्यंजित कर यहां की संस्कृति को ही मानो साकार करता है। स्वर, ताल और लय में बद्ध होकर लोक संगीत की धुनें मिलन-विरह, हास्य-व्यंग्य, रोष-भय घृणा और विवशता, भक्ति-वैराग्य, वीरते-भीरूता आदि सुक्ष्म मनोभावों की मनोहारी अभिव्यक्ति करती है।

लोक संगीत की पेशेवर जातियों के अंतर्गत लंगा जाति अपने परम्परागत लोक संगीत के लिए सुदूर देशों तक में विख्यात है। बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर आदि जिलों से संबद्ध लंगा जाति के लोक गायक अपने पारंपरिक वाद्यों के साथ प्रस्तुति देते है तो दर्शक एवं श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते है। सारंगी से मिलता जुलता वाद्य 'कमच्या' लंगाओं का प्रमुख वाद्य है। लंगा मांड शैली में अपने गीतों की प्रस्तुति देते है। मांड शैली में प्रस्तुत लंगाओं का निंबूड़ा तो अब इनकी पहचान से ही जुड़ गया है।

मांड शैली की राजस्थान की सुविख्यात लोक गायिका पद्मश्री अल्लाह जिलाई बाई की आवाज में गुंजा 'पधारो म्हारे देस' आज भी पर्यटकों के निमंत्रण का प्रतीक है। राजस्थान के लोकसंगीत में दरअसल राग-सौरठ, देश, आदि का ही अधिक प्रयोग हुआ है। तालों में दादरा,

रूपक, कहरवा ही अधिक प्रयोग में लायी गयी है। हालांकि लोकगीतों में रागो का पूर्ण दिग्दर्शन नहीं हो पाता फिर भी इनकी प्रस्तुति में अद्भूत लयात्मकता होती है।

वैदिक ऋचाओं के गायन की जो पद्धति सामवेद में वर्णित है, उसका आभास राजस्थान की जन-जातियों के सामूहिक गीतों के स्वर संचालन में देखा जा सकता है। जिस प्रकार वेदपाठी लोग अपना स्वर संचालित करते है वैसे ही भीलों आदि में लोकगीतों का स्वर संचालन देखा जा सकता है।

राजस्थान की पेशेवर संगीत जातियों के अंतर्गत ढोली, मिरासी, लंगा, ढाढी, कलावंत, भार, राव, जोगी,कामड़ वैरागी, भोपे, कालबेलिया, राणा आदि है। संगीत द्वारा जीविकोपार्जन का उद्देश्य होने के कारण ही इन जातियों ने अपने गीतों को सजा-सवांरकर कलात्मक रूप दिया। शास्त्रीय संगीत की भांति इन पेशेवर गायकों के गायन में स्थायी व अंतरों का ही स्वरूप नहीं दिखायी देता बल्कि ख्याल और झूमरी की तरह इन्हें छोटी छोटी तानों, मुरकियों एवं विशेषझटकों से भी सजाया जाता है।

यहां की लोकधुनों ने तो विश्व भर में अपनी पहचान बनायी है। स्वर मार्धुय के कारण यहां के लोकवाद्यों का प्रयोग भारतीय एवं विदेशी चित्रपट संगीत में भी विशेषरूप से किया गया है।

राजस्थानी लोकवाद्यों के अंतर्गत तार वाद्यों में अलग-अलग आकारों के रावणहत्था, एकताल, सारंगी का प्रयोग लोकगीतों के साथ होता है। जैसलमेर के लोग सारंगी की ही तरह 'सिंधी सारंगी' का उपयोग गीतो के साथ करते है। रावण हत्थे में एक डंडे में घुंघरू बंधे होते है जो तारों के साथ घर्षण करते हैं तो मधुर स्वर लहरियां निकलती है। रेगिस्तान के जत्थों का सतारा, गुजरों के भोपों का जन्तर, मांगणियारों का कामाइचा महत्वपूर्ण लोक वाद्य यंत्र हैं। तंदूरा, चेतारो निशान आदि तार वाद्य यंत्रों के अलावा मुहं से बजाये जाने वाले कई अन्य वाद्य यंत्र भी राजस्थान के लोक संगीत की पहचान है। इनमें बांसुरी, अलगोजा, शहनाई, टोटो, पूंगी, नाद, मशक, नड़, मोरचंग आदि प्रमुख है। इसी प्रकार अन्य वाद्ययंत्रों में मृदंग, ढोलक, ढोल, नगाड़ा, नौबत, मारल, खंजरी, चंग आदि के साथ ही मटकी, डमरू, ताशा आदि के वादन की भी विशिष्ट परम्परा है।

6.5.3 नृत्य एवं लोकनाट्य कलाएं:

राजस्थान नृत्य कला का प्रमुख केन्द्र रहा है। राजस्थान में नृत्य कला दो तरह से पनपी - एक शास्त्रीय स्वरूप में और दूसरी लोक सम्पति के रूप में। शास्त्रीय कलाएं प्राय. राज्याश्रित थी तो लोक सम्पत्ति के अंतर्गत लोक नृत्यों, लोकनाट्य शैलियों का विकास हुआ।

6.5.3.1 शास्त्रीय नृत्य:

शास्त्रीय नृत्य परम्परा की दृष्टि से राजस्थान आरंभ से ही समृद्ध रहा है। प्रमुख शास्त्रीय नृत्य कथक का उद्गम स्थल राजस्थान ही रहा है। कथक नृत्य शैली का विकास राजस्थान के साथ-साथ मुगल दरबारों में भी हुआ परन्तु राजस्थान में इस शैली का परम्परागत धार्मिक रूप में विकास हुआ और इस शैली ने श्रृंगारिक रूप धारण कर लिया। कथक का जयपुर

घराना पूरे देश में प्रसिद्ध है। कथक के जयपुर घराने के अंतर्गत पं. दुर्गालाल, प्रेरणा श्रीमाली, शकुंतला नागर, उर्मिला नागर आदि विश्वभर में अपनी प्रस्तुतियों से राजस्थान का नाम रोशन किया है। जयपुर घराने की कथक परम्परा के संवर्द्धन एवं संरक्षण के लिए ही राज्य सरकार द्वारा यहां 1978 में कथक केन्द्र की स्थापना भी की गयी। यह केन्द्र आज कथक नृत्य में दक्षता के प्रशिक्षण का देश का प्रमुख केन्द्र है।

6.5.3.2 लोक नृत्य:

लोक नृत्यों में शास्त्रीय नृत्य की तरह ताल, लय आदि की कड़ाई और अनुशासन नहीं होता। समय-समय पर प्रसंग विशेष के अनुसार जन मानस द्वारा ही रचे गए लोकनृत्यों में मानव जीवन का सहज चित्रण है। लोक उत्सव, पर्व, तीज-त्योंहार, लोकानु ठान आदि के मौकों पर अलग-अलग प्रकार की वेशभुषा और स्थान विशेषकी परम्पराओ के अनुरूप लोकनृत्यों की परम्पारा अर्से से चली आ रही है।

राजस्थान के लोक नृत्यों को जनसामान्य के नृत्य एवं पेशेवर या अभिरूचि से किए जाने वाले विशिष्ट लोकनृत्यों तथा लोकानुरंजन अथवा लोकानुष्ठान के लिए किए जाने वाले रूपों में देखा जा सकता है। लोकानुरंजन या लोकानुष्ठान के लिए किए जाने वाले लोकनृत्यों में अभ्यास एवं कुशलता का संयोग निश्चित रूप से रहता है। ऐसे लोकनृत्यों में तेराताली, रण नृत्य, पांच पदा एवं कच्छी घोड़ी को लिया जा सकता है। ये नृत्य विशिष्ट अवसरों पर किये जाते है तथा इनका मुख्य प्रयोजन धार्मिक रंजन अथवा सामाजिक अनुरंजन होता है। तेराताली राजस्थान की कामड़ जाति द्वारा किया जाता है। इस जाति के लोग मुख्यतया मारवाड, मेवाड एवं बीकानेर क्षेत्र के है। एक या अधिक महिलाएं तेराताली में अपने बाहों एवं पावों के विभिन्न स्थानों पर मंजीरों को बांध लेती है और दोनों हाथों में एक लम्बी रस्सी से बंधे मंजीरों से आवाज करती है। बैठे हुए किये जाने वाले इस नृत्य में हाथों के संचालन द्वारा कुछ विशिष्ट भावों की अभिव्यंजना भी की जाती है। नृत्य के साथ चौतारा, ढोलक व ताल का भी प्रयोग होता है और हरजस, हेली, वाणी को गाया जाता है।

राजस्थान के मध्य भाग में कच्छी घोड़ी का नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस नृत्य में बांसों की खपच्चियों से घोड़े का ढांचा बनाया जाता है जिसे पुरूष अपनी कमर पर पहिन लेता है। अंग संचालन द्वारा घोड़े पर बैठे सवार का आभास मिलता हैं। तलवारों के युद्ध का सुंदर अभिव्यंजन इसमें होता है। दो, चार, छः या आठ की संख्या में भी कच्छी घोड़ी का नृत्य किया जाता है।

डूंगरपुर-बांसवाड़ा क्षेत्र में जोगियों द्वारा पांचपदा नामक पांच वाद्यो के साथ नृत्य किया जाता है। नृत्यकार इस नृत्य में ढोलक बजाते हुए अपने शरीर को संचालित करते दुहरा होकर जमीन पर पड़े रूमाल ओर छोटे सिक्कों को उठाता है।

जसनाथियों का अग्नि नृत्य भी राजस्थान की विशिष्ट पहचान है। जसनाथी संप्रदाय के लोग इस नृत्य के अंतर्गत हल्की हिप्टोनिक प्रभाव वाली विलम्बित लय के नगारे वादन के साथ जलते हुए अंगारों पर नृत्य करते है। इधर के वर्षों में बीकानेर में होने वाले अन्तराष्ट्रीय ऊंट महोत्सव के अंतर्गत वहां से करीब 40 किलोमीटर की दूरी पर स्थित कतरियासर गांव में

पर्यटकों के लिए अग्नि नृत्य का विशेषरूप से प्रदर्शन किया जाता है। जसनाथी संप्रदाय के नर्तक इस नृत्य के दौरान अंगारों पर नृत्य ही नही करते बल्कि कभी-कभी अंगारों का मूंह में डालकर हैरतअंगेज करतब भी दिखाते हैं।

घूमर राजस्थानी लोकनृत्यों का शिरमौर है। मलमल के झीने तारों का लम्बा घूंघट डाले, पल्लू के लहंगे की तह मे भली प्रकार ढाबे, कंचूकी के बंधों को कसकर, पायल की ठुमक और झनक के साथ, नीचे झुक-झुककर अंगों को लचकाती हुई और दोनों हाथों से आल्हाद की मुद्रा को चुटकियों से व्यक्त करती तरूणी इस नृत्य में हमजोलियों की टोली में घूम-घूम कर नृत्य करती थिरकती है। गणगौर, नवरात्रि तथा विशिष्टपर्व-उत्सव पर 'म्हारी घुमर छे नखराली ऐ माय' के साथ इस नृत्य को किया जाता है तो राजस्थान मानों जीवन्त हो उठता है।

गैर भी ऐसा ही सामूहिक नृत्य है जो होली के अवसर पर किया जाता है। खेरवाड़ा तथा डूंगरपुर की मीणा जाति में प्राय: होली के तीसरे दिन किया जाने वाला नेजा नाम की संगीतमय नृत्य किड़ा भी प्रसिद्ध है।

पणिहारी मेंहदी, भवाई, लूर्रा-कलंगी आदि विभिन्न लोकनृत्यों में राजस्थान के जन जीवन को गहराई से समझा जा सकता है। बीकानेर, शेखावाटी, में डांडिया लोकनृत्य भी प्रचलन में है। इस नृत्य के अंतर्गत होली के दिनों में मैदान में नगाड़ा लेकर वादक बैठ जाता है, उसके चारों और विभिन्न वेशभूषाओं में हाथों में डंडे भिड़ाते युवक घूमते है। इसी प्रकार हाडौती में चंग की थाप पर तेज रफ्तार में चक्राकार घुम कर किया जाने वाला चकरी नृत्य भी अत्यन्त लोकप्रिय है।

6.5.3.3 लोक नाट्य:

राजस्थान के लोकनाटकों को काव्यात्मक विशिष्टताओं और संवाद के आधार पर तीन भागों में बांटा जा सकता है। पहले भाग के अंतर्गत ख्याल माच तुर्राकलंगी, रासधारी, रामलीला, रासलीला, भवाई एवं रम्मत आदि लोकनाट्यों को लिया जा सकता है। इनमें विभिन्न धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक विषयों का समावेश रहता है। दूसरे भाग के अंतर्गत रासलीला एवं रामलीला को लिया जा सकता है। इसके अंतर्गत मुख्यतया क भण या राम चरित्र का कथानक ही प्रमुखता में होता है। तीसरे प्रकार के लोकनाट्यों में भवाई एवं रम्मत को ले सकते है। लोकनाट्य दरअसल किसी ने रचे नहीं बल्कि इनकी परम्परागत कथाएं, संवाद या गीत इनमें भाग लेने वालों को कंठस्थ रहते हैं। लोकगीतों, लोक कथाओं की तरह वर्षो से जन मानस द्वारा रची गयी लोकनाट्य शैलियों में वेशभूषा पात्रों के संवाद जन मानस को उद्वेलित करने वाले होते हैं। होली के दिनों में बीकानेर के चौक-मौहल्लों में खेली जाने वाली रम्मतें लोक नाट्य का ऐसा स्वरूप है जिसमें ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक कथानक ही नहीं है बल्कि इधर के वर्षो में राजनीति, स्थानीय विषयों का भी समावेश कर रम्मतों का मंचन किया जाने लगा है। रात-रात भर होने वाली इन रम्मतों में लोगों का आकर्षण भी विशेषरूप से होता है। इनमें महिला पात्र की भूमिका पुरूष ही अक्सर निभाते है। इन सभी नाट्य रूपों में प्रमुख बात यह है कि कथोपकथनों का गेय रूप में व्यक्त किया जाता है। संपूर्ण नाटक गीतों की भावपूर्ण

कड़ियों में विभक्त होता है। इस नाट्य-अभिव्यक्ति को हम विदेशीय 'ओपेरा ' के समकक्ष मान सकते है। इन नाटकों में नगारे वादन का अन्यतम स्थान होता है और सभी पात्र अपने गायक (कथोपकथन) के पश्चात नृत्य द्वारा कला का प्रदर्शन करते है।

तुर्रा- कलंगी एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रयोग है। इस लोक नाटक में रंगमंच दो भागों में विभक्त होता है। एक भाग को जमीन से डेढ-दो फीट ऊंचा रखा जाता है और उसके पीछे आठ नौ फीट ऊंचा एक मचान रहता है। इस प्रकार दो मंजिल के रंगमंच का आभास हमें प्राप्त होता है। दूसरी और रावभें की रम्मत में मंच के लिए ऊंची सतह का प्रयोग ही नहीं किया जाता। सामान्य भूमि को ही मंच स्थल के रूप में बरता जाता है और दर्शक मंच के चारों और बैठते है।

भरतपुर, अलवर, करौली आदि भागों में होने वाली रासलीला अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनमें भाषा स्थानीय होती है तथा हास्य-व्यंग्य के साथ संवाद अत्यन्त मनोरंजक होते है। इसी प्रकार संपूर्ण राजस्थान में ख्याल अपनी क्षेत्रीय रंगत के लिए प्रसिद्ध हैं। क्षेत्रीय भाषाओं ओर स्थानीय परिवेश में होने वाली ख्याल परम्परा में अमरसिंह रो ख्याल, रूठी राणी रो ख्याल, पदमनी रो ख्याल आदि अत्यधिक लोकप्रिय हैं।

लोकनाट्यों की परम्परा यद्यपि राजस्थान में अत्यधिक पुरानी है परन्तु पिछले कुछ वर्षों में लोक नाट्यों के भविष्य पर प्रश्नचिन्ह भी लगने लगा है। मनोरंजन के आधुनिक साधनों के विकास के साथ ही इधर इनमें भाग लेने वाले पात्रों देखने वाले दर्शकों की कमी आदि के कारण इन पर संकट के बादल मंडराने लगे है, बावजूद इसके अभी भी गांवों बीकानेर जैसे शहरों में लोकनाट्यों की परम्परा वहां के लोगों की रूचि, जीवटता के कारण आज भी कायम है। यहां लोकनाट्यों को सम-सामयिकता से जोड़ने के जो प्रयास हुए है उनसे भी इनके भविष्य को सुखद कहा जा सकता है।

6.5.4 रंगकर्म (थिएटर) :

प्रदर्शनकारी कलाओ के अंतर्गत राजस्थान में रंगमंच की परम्परा भी लोकगीतों, लोक नृत्यों की भांति प्राचीन हैं। लोकनाट्यों के विभिन्न स्वरूप राजस्थान के रंगकर्म का इतिहास है तो पारसी रंगमंच से प्रदेश में नये ही किस्म की रंगमंचीय कला का विकास हुआ। 'पारसी थिएटर से प्रारंभ राजस्थान की रंगकर्म की आधुनिक परम्परा के बारे में कहा यह भी जाता है कि यह 'शेक्सपीरियन थियेटर' से प्रभावित होकर हुआ। बहरहाल पारसी थियेटर से राजस्थान में रंगकर्म के अंतर्गत अभिनेताओं द्वारा मुखमुद्राओं एवं अपने हावभावों का व्यापक प्रदर्शन, नाटक का निश्चित कथानक तथा बोलचाल तथा संवाद की एक खास किस्म की शैली विकसित हुई।

यहां यह गौरतलब है कि प्रदर्शनकलाओं के सुसंगठित विभागों की रचना बहुत पहले ही राजस्थान में होनी प्रारंभ हो गयी थी। राजा-महाराजाओं द्वारा पोषित कला विभागों एवं गुणीजनखानों के अलावा भी निजी तौर पर जनता के सहयोग से तब राज्य में बहुत सी कंपनियां, मंडल एवं थिएटर ग्रुप्स भी बन गए। विभिन्न राज्यों में थियेटर रंगमंच की रचना होने के फलस्वरूप राजस्थान के रंगकर्म की पहचान देशभर में हुई। माणकलाल डांगी,

कन्हैयालाल पंवार पारसी थियेटर के विख्यात रंगकर्मी रहे। गणपतलाल डांगी ने तो इस परम्परा का हाल के वर्षोतक निर्वाह किया।

आकाशवाणी, जयपुर ने भी मंच के कम कलाकार नहीं दिए। अनेक नाटक आकाशवाणी से प्रसारित हुए और उनसे ओमशिवपुरी मोहन महर्षि, नन्दलाल, पिन्चू कपूर, गोवर्धन असरानी आदि अनेक रंगकर्मी प्रकाश में आए। वर्ष 1957 में राजस्थान सरकार ने संगीत नाटक अकादमी की स्थापना प्रदर्शनकारी कलाओं के पूर्ण विकास के लिए की। इसी के अंतर्गत प्रदेश में रवीन्द्र रंगमंच, भारतीय लोक कला मंडल, जवाहर कला केन्द्र आदि की भी पृथक से स्थापना की गयी। सातवें एवं आठवें दशक में तो रंगमंच का राजस्थान में विशेष रूप से विकास हुआ। जयपुर ही नहीं बीकानेर, उदयपुर, जोधपुर में भी रंग संस्थाओं का निर्माण हुआ और उनके द्वारा लोक कथानको के साथ ही देश के ख्यात-विख्यात नाटककारों के नाटकों को खेलने की दिशा में सार्थक पहल हुई। यद्यपि सिनेमा के बढ़ते प्रभाव के कारण रंगकर्म को खासा नुकसान भी हुआ है परन्तु फिर भी रंगकर्मियों का उत्साह और प्रदर्शन की बढी संभावनाओं से राजस्थान का रंगकर्म आज भी अन्य प्रदेशों से कहीं अधिक समृद्ध है।

6.5.5 कठपुतली कला:

कठपुतली कला का प्रदर्शन आरंभ में 'भाट' नाम से संबोधित जाति विशेष द्वारा किया गया। धीरे-धीरे इस कला के प्रति बढ़े लोगों के रूझान और कठपुतलियों की बनावट, उनके प्रदर्शन में समय के अनुसार हुए परिवर्तन के अंतर्गत राजस्थान के बहुत से अन्य कलाकार भी इस कला का प्रदर्शन करने लगे। इस कला का प्रदर्शन करने वाले लकड़ी को छीलकर कठपुतली के रूप में सुन्दर मुखाकृतियों का निर्माण करते है। यह मुखाकृति केवल गले तक निर्मित होती है और उसके बाद कठपुतली को पूर्ण झग्गे की वेशभूषा से अलंकृत कर दिया जाता है। अंगों की मासंलता के लिए रूई या कपड़े के टुकडों का प्रयोग किया जाता है। हाथों को भी रूई से निर्मित किया जाता है। इन कठपुतलियों में पांवों का निर्माण नहीं किया जाता। कठपुतली के अभिनय की आवश्यकतानुसार उस पर धागों को बांध दिया जाता है। मुख्यतया धागे गर्दन के पीछे, सिर के ऊपर एवं दोनों हाथों पर बांधे जाते है। इन चार धागों से शरीर के मुख्य संचालनों को संभाला जाता है। जिन विशिष्टपुतलियों को अन्य संचालनों की जरूरत होती है उनमें उनकी आवश्यकता के अनुसार धागों को बांधा जाता है। यथा नर्तकी एवं इसी प्रकार गेंद उछालने वाली पुतली में भी यही अन्तर दृष्टिगत होगा। कठपुतली की नाट्य कला में धागों की संचालन क्रिया ही मुख्य है क्योंकि उन्हीं के माध्यम से भावाभिव्यंजना का रूप निखरता है। राजस्थान में कठपुतली के द्वारा मुख्यतया अमरसिंह राठौड का खेल दिखाया जाता है।

इधर के वर्षो में ऐतिहासिक कथानको के साथ विभिन्न सामाजिक विषयोंपर भी कठपुतलियों का प्रदर्शन किया जाने लगा है। यही नही 'राजनैतिक एवं सम-सामयिक विषयोंपर भी कठपुतलियों के पात्रों का निर्माण काष्ठ से करके उन्हे अवसर-विशेषअवसर दिखाए जाने की परम्परा की शुरुआत हुई है। राजस्थान में आने वाले पर्यटकों के लिए आज भी कठपुतली प्रदर्शन का विशेष आकर्षण है। यही कारण है कि पांच सितारा होटल से लेकर लगभग सभी महत्वपूर्ण पर्यटन स्थलों पर कठपुतली प्रदर्शन कलाकारों को मंच मिलने लगा है। छोटी सी कठपुतली में

मानवीय आकार-प्रकार एवं उसके यांत्रिक संचालन में शारीरिक क्रियाओं के आरोपण को दर्शक अपने मन की आंखों अथवा कल्पना से पूर्ण करके देखने का प्रयास करता है। दर्शक की कल्पना के सम्मिश्रण एवं सहानुभूति के कारण पुतली में लालित्य और सांकेतिकता का प्रभाव अत्यधिक परिपुष्ट हो जाता है।

6.5.6 अन्य प्रदर्शन कलाएं:

राजस्थान की विभिन्न प्रदर्शन कलाओ के अंतर्गत यहां के नटों एवं मदारियों का स्मरण करना भी अनिवार्य है। नट मुख्यतया शारीरिक दृष्टि से अत्यंत विकट एंव विस्मयपूर्ण खेलों के द्वारा समाज का मनोरंजन करते है। नटों के खेलों में पुरूष एवं स्त्री दोनों ही भाग लेते है। नटों के प्रसिद्ध खेलों मे रस्सी पर चलना, ऊंचें एवं लंबे बांस पर विभिन्न प्रकार की कलाबाजियां दिखाना, झूले के खेल एवं भूमि पर उछाल आदि दिखाना है। नटों के समान ही मदारी द्वारा दिखाए जाने वाले बंदरों के खेल भी अभी गांव-गुवाड के प्रमुख अकर्षण हैं। मदारी डमरू के साथ बंदरों को नचाते हैं। बंदरों के अलावा अन्य पशुओं के माध्यम से भी लोगों का मनोरंजन किया जाता है। कालबेलिया जाति के लोगों द्वारा सांप के विभिन्न खेल आज भी गांवों में लोकानुरंजन का माध्यम है। कालबेलिया एवं अन्य कुछ जाति के लोग सांपों को पिटारे में बद कर लाते हैं तथा पूंगी बजाकर सांप का नृत्य करवा कर लोगों का मनोरंजन करते है। लोकानुरंजन के इन प्रयासों में इधर निरंतर कमी आती जा रही है। ऐसे में इनका संरक्षण किया जाना भी आज किसी चुनौती से कम नही है।

6.6 सारांश :

राजस्थान की संस्कृति के विविध रंग हैं। यहां की प्रदर्शनकारी कलाएं संस्कृति को आज भी जीवन्त करती हैं। प्रदर्शनकारी कलाओं की समृद्ध परम्परा के अंतर्गत काव्य, लोकनाट्य, नृत्य, रंगकर्म आदि ने यहां की परम्पराओं को आज भी निरन्तर जीवित रखा हुआ है। वीर, श्रृंगार रस, विरह आदि रसों में काव्य की राजस्थान की परम्परा अत्यधिक समृद्ध है तो लोकगीतों में यहां के जन जीवन की मनोहारी अभिव्यक्ति है। शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत राजस्थान के राजा-महाराजा स्वयं संगीतविद् ही नहीं थे बल्कि उन्होंने अपने राज्यों में संगीत के निपुण कलाकारों को आश्रय देकर समृद्ध संगीत परम्परा का विकास कियां। लोक संगीत, लोक नृत्यों में यहां का जीवन, परिवेश समाया हुआ है तो लोकनाट्यों के अंतर्गत तुर्राकलंगी रम्मत, ख्याल आदि देशकाल परिस्थिति के अनुसार आज भी अपनी विशिष्टशैलियोके कारण जीवित हैं।

पारसी थियेटर के साथ हुई राजस्थान की आधुनिक रंगकर्म परम्परा आज भी विविध रूपों में जीवित है। राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, जयपुर आदि में आज भी विभिन्न रंग संस्थाएं लोक कथानकों के साथ ही देश के ख्यात-विख्यात नाटककारों के नाटकों का मंचन करने में निरंतर सक्रिय हैं। इन प्रदर्शनकारी कलाओं के लिए ही राज्य सरकार ने जवाहर कला केन्द्र, रवीन्द्र रंगमंच, संगीत नाटक अकादमी जैसे संस्थानों की स्थापना की। प्रदर्शनकारी कलाओं से समृद्ध राजस्थान की कठपुतली कला भी विदेशों तक में विख्यात हैं। लोकानुरंजन की प्रदर्शनकारी अन्य कलाओ में नटों के खेल, मदारियों द्वारा किए जाने वाले खेल भी लोगों में

खासे लोकप्रिय हैं। यह सही है कि आधुनिकता की आंधी में पारम्परिक प्रदशर्नकारी कलाओं को खासा नुकसान पहुंचा है परन्तु इतना ही सच यह भी है कि इतिहास और संस्कृति का जीवन्त प्रमाण ये कलाएं ही है। इनके संरक्षण की दिशा में प्रयास समय की आवश्यकता भी है।

बोध प्रश्न :

1. 'प्रदर्शनकारी कलाओं का भविष्य संकट में हैं।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

   .....

   .....

2. राजस्थान की विभिन्न प्रदर्शनकारी कलाओं पर संक्षेप में लेख लिखिए।

   .....

   .....

3. राजस्थान की लोकनाट्य परम्परा पर प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

4. पारसी थियेटर से प्रारंभ हुई आधुनिक रंगकर्म परम्परा में आए बदलावों पर प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

5. प्रदर्शनकारी कलाओं के संरक्षण की दिशा में क्या प्रयास किए जा सकते हैं?

   .....

   .....

इकाई - 7: लोक संगीत एवं नृत्य

रूपरेखा :

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 लोक संगीत एवं नृत्य अर्थ एवं परिभाषा

7.3 राजस्थान का लोक संगीत

7.3.1 लोक गीत

7.3.2 लोक वाद्य

7.4 राजस्थान के लोक नृत्य

7.5 सारांश

7.0 उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- लोक संगीत एवं नृत्य की अवधारणा के बारे में जान सकेंगे।
- राजस्थान के लोक संगीत से अवगत हो सकेंगे।
- लोक संगीत में वादन के महत्व को समझते लोक वाद्यों के बारे में जान सकेंगें।
- राजस्थान के विभिन्न लोक नृत्यों के बारे में जान सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना:

लोक संगीत एवं नृत्य को उन विचारों और अनुभूतियां का प्रतिनिधित्व कहा जा सकता है जिनका संबंध लोक जीवन की किसी भी घटना, प्रसंग से हो। वे लोक हृदय के सहज उद्गार कहे जा सकते हैं। यह कहना कठिन है कि कब और किसने लोक संगीत एवं नृत्यों की रचना की परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इनकी रचना समय-समय पर प्रसंगानुसार सहज रूप से होती रही है। अनेक राग-रागनियों में गाये जाने पर भी लोक संगीत किन्ही शास्त्रीय नियमों में आबद्ध नहीं है। लोक गायक या नर्तक बगैर किसी परम्परागत शिक्षा के ही इतने मधुर स्वर, ताल ओर लय में गायन एवं नृत्य करते हैं कि सुनने वाला झूम उठता है। इसकी खास वजह यही है कि वे सहज होते हैं, लोक जीवन के उत्सव एवं अनुष्ठानों से जुड़ होते है। राजस्थान के लोक संगीत में यहां की आत्मा बसती है। जन्म, विवाह, सामाजिक परम्पराओं, विधि-विधान, कर्मकांड, संस्कार, उत्सव, पर्व, अनुष्ठान, मृत्यु आदि तक के विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले राजस्थान के लोक गीत उन सदाबहार मानवीय भावनाओं के प्रतिनिधि हैं जो हमेशा नए और प्रेरणादायक बने रहेते हैं। कैसे हुआ लोकसंगीत एवं नृत्यों का जन्म, क्या है इनकी अवधारणा, राजस्थान के लोक संगीत एवं नृत्य में क्या कुछ है विशेषताएं? आईए, जानें-

7.2 लोक संगीत एवं नृत्य: अर्थ एवं परिभाषा

संगीत एवं नृत्य का अनादिकाल से भारतीय जन जीवन से संबध रहा है। ईश्वर की आराधना से लेकर मनोरंजन या लोक रंजन तक के उद्देश्य में संगीत एवं नृत्य हमारी परम्परा में आदिकाल से जुड़े हुए हैं। पहले संगीत और काव्य के माध्यमों में आदिमकाल में आज जैसा विभेद नहीं था। जो काव्य था वहीं संगीत था और जो संगीत में व्यक्त होता था वहीं काव्य भी था। तब भाषा और स्वर को एक ही तत्व से जन्म लिया हुआ माना जाता था। चार्ल्स डार्विन ने जीव विज्ञान की विकासमय वैज्ञानिक खोज के दौरान यह स्थापित करने का प्रयास किया था कि भाषा एवं संगीत का उद्‌गम प्राणीमात्र के जीवन में यौन आकर्षण एवं प्रजनन के क्रिया के पूर्व की अनु वाणी में निहित रहा है। कहते है जीव ने अपनी प्रारंभिक अवस्था में वोकल कॉर्ड्स का उपयोग इन्हीं क्रियाओं के दौरान किया।

संगीत का जन्म पशु-पक्षियों की ध्वनियों के अनुकरण से भी माना जाता है। यदि हम काव्य के प्रारंभिक इतिहास को देखें तो ज्ञात होगा कि मनुष्य की प्रारंभिक अभिव्यक्तियां छन्दोमयी एवं संगीतमयी थी। मानव जीवन के विकास के साथ कविता और छन्द धीरे-धीरे शब्दों का अधिक से अधिक सहारा लेने लगे और संगीत आहत नाद की प्रबुद्ध कल्पना और स्वरों के सहारे विकसित होने लगा। भारत के सांस्कृतिक एवं सांगीतिक इतिहास का प्राचीनतम युग वैदिक युग कहा जाता है। संगीत का विकसित एवं सुव्यवस्थित रूप आज भी वेदो के माध्यम से परिलक्षित होता है। भारतीय संगीत की नींव इसी युग से मानी जाती है। वेदों के अलावा प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भी अनेक स्थानों पर गीतों के गाये जाने का उल्लेख मिलता है।

वाल्मीकी और व्यास, भास और कालीदास तथा कबीर, तुलसी व सूर की कविताओं का तो समय निश्चित है परन्तु लोक गीतों का कोई समय अभी तक निश्चित नहीं किया जा सका है, न ही इनके रचयिताओं का पता चला है। मानव उत्पति के साथ ही लोक गीतों, लोक धुनों का सृजन हुआ माना जा सकता है। लोकगीत दरअसल आदि मानव के आनंदावेशमय उद्‌गार हैं। आदिम मानव हृदय की सहज भावनाओं का यह भंडार ही एक कंठ से दूसरे, एक हृदय से दूसरे हृदय में प्रतिध्वनित होता चला आ रहा है। विशाल लोक समूह की भावनाओं के सहज उद्‌गार के रूप में लोक संगीत एवं नृत्य को व्याख्यायित किया जा सकता है। लोक संगीत एवं नृत्य में मानव समाज की आदि मनोवृतियां और भावनाएं यथा हर्ष, उल्लास, शोक-विषाद, प्रेम-ईर्ष्या, भय-आशंका, घृणा, ग्लानि, आश्चर्य, विस्मय, भक्ति-निवृति आदि अनेकानेक भाव सरल और विशुद्ध रागात्मक रूप में प्रगट हुए हैं।

किसी भी स्थान विशेष की संस्कृति, वहां की परम्पराओं का ज्ञान वहां के लोक संगीत एवं नृत्य से किया जा सकता है। लोक संगीत एवं नृत्य के उद्भव एवं विकास का पहला चरण लोकभावना ओर सामुदायिक चेतना से अनुप्राणित रहा है। पहले समूह मिल-जुलकर गाता और नाचता था। कठिन शारीरिक श्रम के कार्य संगीत से हलके किये जाते थे। हर ऋतु के अपने गीत और नृत्य होते थे। जीवन के संक्रमण काल, जन्म, विवाह, मृत्यु आदि लगभग सभी अवसरों पर गीत एवं नृत्य की परम्पराएं थी।

ऐसा कहा जाता है कि कलाएं जितनी नियम और शास्त्रों में नहीं जीती उतनी परम्पराओं में जीती है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि कलाओं को नियम-शास्त्रों में बाधकर उनका विकास नहीं किया जा सकता। समाज में आरंभ से चली आ रही परम्पराओं, मान्यताओ, रीति-रिवाज आदि ही कलाओं का पोषण करते है, चूकिं इसका मूल स्त्रोत प्रकृति और कुछ-कुछ अलौकिक शक्तियां होती है। ये मानव जीवन में स्वत: ही जन्म लेती और पनपती है। लोकगीतों की ही तरह लोक नृत्य का जन्म कब और कैसे हुआ, इसके बारे में ठीक-ठाक कुछ कहना कठिन है परन्तु इनका स्त्रोत हमारे गांव है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। वे गांव जहां हमारे पुरखों ने जीवन बिताया और वहीं फले-फूले। अपने जीवन क्रम को क्रमबद्ध रखने के लिए उन्होनें देवता की कल्पना की। उनकी आराधना के साधक नृत्य बनें। कालान्तर में परिस्थिति विशेष में लोक नृत्य पनपने लगे। उनका सौंदर्य निखरा और वे जनता के मनोरंजन, खुशी का ईजहार हर्ष, उल्लास की अभिव्यक्ति के प्रतीक के रूप में जीवन का हिस्सा बनते चले गए। लोक संगीत की समृद्ध परम्परा का ही हिस्सा लोकनृत्य रहे हैं।

लोक जीवन का सुन्दरतम प्रतिबिम्ब लोकसंगीत में देखा जा सकता है क्योंकि लोकगीतों के शब्दों एवं स्वरों में कृत्रिमता का अभाव रहता है। उनमें लोक जीवन का सीधा-साधा परिचय होता है। वे व्यक्ति के बाहय जीवन के साथ-साथ उसके मानसिक भावों के भी परिचायक होते हैं। उनमें सुक्ष्मता की अपेक्षा स्थूलता और स्पष्टता का अधिक महत्व होता है। कदाचित ही ऐसे कोई लोकगीत हो जो संगीत से अनुप्राणित न हो। लोक संगीत की तरह ही लोकनृत्यों का भी लोक जीवन के निर्माण एवं विकास में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सामूहिक रीति से नाच के साथ गाने में ही जीवन का स्पन्दन है। लोक संगीत में अकेले गाने से कहीं अधिक सामूहिक ढंग से गाने के महत्व का पता चलता है और उसमें स्वर की अपेक्षा लय का अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव मिलता है।

सुप्रसिद्ध शास्त्रीय गायक कुमार गंधर्व के अनुसार - "लोक भाषाएं जिस प्रकार स्वयं बनी है, उसी प्रकार लोक धुनें भी बनती रहीं और बनती जाएंगी। इन्हीं धुनों से शास्त्रीय रागों का विकास हुआ है। राग बनाये नहीं जाते, बनते हैं। हम लोक धुनों में रागों को छुपा हुआ पाते है। उन्हें पकड़कर जब हम प्रकट कर देते है तो, शास्त्रीय पक्ष सामने आ जाता है। लोक-धुनें निसर्ग-निर्मित है, इसलिए निसर्ग की तरह वे पूर्ण होती है। उनमें कोई न कोई राग अवश्य होता है। उसके लिए दृष्टि की आवश्यकता होती है। राग के मूल स्वरों को जानकर जब उन्हें पूर्णता प्रदान की जाती है, तो शास्त्रीय दृष्टि से राग का रूप निखर आता है। अत: स्पष्ट है कि शास्त्रीय राग लोक-धुनों में छुपे हुए रागों के विकसित स्वरूप होते है।"

संगीताचार्य ओंकारनाथ ठाकुर के शब्दों में - "देशी संगीत के विकास की पृष्ठभूमि लोक संगीत है। जिस देश या जाति का संवेदनशील मानव जिस समय अपने दृश्य के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए उजख हुआ, उसी अवसर पर स्वयम् स्वर, लय प्रकृत्या उसके मुख से उद्भूत हुए और उन्हीं स्वर, गीत और लय को नियमबद्ध कर उनका जो शास्त्रीय विकास किया गया, वहीं देशी संगीत' बना।"

इर्विन के मतानुसार - " मनुष्य का चरित्र उसके मनोरंजन के माध्यम से परखा जा सकता है क्योंकि प्रसन्नता के क्षणों में मनुष्य का मस्तिष्क बंधनमुक्त और स्वाभाविक रूप में होता है। अत: यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नही होगा कि नृत्यकला की उन्नति सभ्यता की उन्नति का प्रतीक है। किसी राष्ट्र के लोकनृत्य को राष्ट्र का दर्पण कहा जा सकता है जिसके माध्यम से किसी सीमा तक उस राष्ट्र के स्वभाव, कला, संस्कृति, सरलता, सामाजिक स्तर, परम्परा को वह अभिव्यक्त करता है।"

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि लोक जीवन की सहज अभिव्यक्ति लोकगीत एवं नृत्य है। लोक व्यवहार में जैसे-जैसे परिवर्तन आते गए, वैसे-वैसे लोक संगीत एवं नृत्यों में भी बदलाव आते चले गए। उनकी विषय-वस्तु में, उनकी संरचना में और गायकी में इनको स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जा सकता है। लोक संगीत की पूर्णता में यह कहा जा सकता है कि ये व्यापक कलात्मक परिवेश में प्रकृति, प्रकृति के साथ संघर्ष और सामाजिक जीवन के प्रतिबिम्ब हैं। भारतवर्ष में तीन सौं से अधिक लोकसंगीत शैलियां प्रचलन में है। इनमें बंगाल की बाउल और भटियाली, आंध्र की बुर्राकाठा, बिहार की विदापद और बिदेसिया, गुजरात की गरबा और रास, कर्नाटक में गी-गी-पद, केरल में कोलकाली पत्त, कश्मीर में रूफ और छाकुरी मध्यप्रदेश में सूखा और सैरे,, महाराष्ट्र में लावनी,, पंजाब में हीर और गिद्धा, उत्तर प्रदेश में चैती और काजरी, गोआ में डालो और डाकनी, उड़िसा में दासकाठिया और गुल्ला, राजस्थान में मांड, घूमर पनिहारी आदि आंचलिक शैलियां आज भी अपने मौलिक सांगीतिक स्वरूप की शुद्धता को बरकरार रखे हुए हैं।

7.3 राजस्थान का लोक संगीत:

शास्त्रीय संगीत की तरह लोकगीतों की रागिनियों वाला भी राजस्थान एकमात्र देश का प्रदेश है। मांड राग की स्वर लहरियां तो विदेशों तक में आज भी राजस्थान की समृद्ध संगीत परम्परा की पुष्टि करती है। राजस्थान ही वह प्रदेश है जहां बाहरी आक्रमण और संघर्ष के समय भी संगीत की परम्पराएं जीवंत रही है।

7.3.1 लोकगीत:

लोक संगीत का मूल आधार लोक-गीत है। राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा कि जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र या प्रसंग नहीं है जिससे संबंधित लोक गीत यहां उपलब्ध नही हो। कोई भी कर्म ऐसा नहीं है जिसका अभिव्यंजन लोक नाट्यों व गाथाओं में न हुआ हो। लोक गीत के भावों को लोक वाद्यों, लोक नृत्यों के जरिये पुष्ट किया जाता है। राजस्थान का लोक संगीत यहां के निवासियों को रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, वेशभूषा, आस्था, पर्व-उत्सव आदि सभी कुछ में अभिव्यंजित होकर यहां की संस्कृति को साकार करते है। स्वर-ताल और लय में बद्ध लोक संगीत जीवन के विविध मनोभावों यथा विरह, हास्य, वीरता आदि को सहज ही व्यक्त कराने वाले है।

राजस्थान के लोक संगीत के अंतर्गत जन साधारण द्वारा अवसर-विशेष पर गाए जाने वाले गीतों की विशिष्ट परम्परा है तो सामंतशाही के प्रभाव से विचलित हुए व्यावसायिक

जातियों द्वारा गाए जाने वाले गीत-संगीत की भी अपनी परम्परा है। व्यावसायिक जातियों द्वारा अपने आश्रयदाता राजा-महाराजा, जागीरदार-सामंत आदि की प्रशस्ती के गीत लोकगीत, लोकगाथाओं के रूप में बाद में संगीत के महत्वपूर्ण अंग बने। राजस्थान के लोकगीतों को निम्न श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है -

- संस्कार संबंधी गीत
- पर्व-उत्सव के गीत
- देवी-देवताओं के गीत
- ऋतु और मौसम के गीत
- विवाह गीत

लोक संगीत में मांड, सौरठ , देश आदि रागों का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। तालों में दादरा, कहरवा रूपक अधिक प्रयुक्त हुई है। यहां के हरजसों (भजनों) में धमाल, मल्हार, प्रभाती आदि अनेक रागें प्राय: मिल जाती है। ख्यालों की लावणी भी एक प्रकार से लोकसंगीत का ही अंग है। एक ही लोकगीत में शास्त्रीय संगीत की विविध रागों का मिश्रण भी देखा गया है।

7.3.2 लोक वाद्य:

संगीत में वाद्य यंत्रो का महत्व सर्वविदित हैं। जिस प्रकार राजस्थान के लोक संगीत, लोक नृत्य में विविधता है उसी प्रकार यहां के लोक वाद्यो में भी वैविध्य है। यहां के लोक वाद्यों को मुख्यतया तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है। पहले प्रकार के तार वाद्य, दूसरे फूंक वाद्य और तीसरे खाल से मंढे वाद्य। भपंग, इकतारा, तंदूरा, सारंगी, जंतर और रावण हत्था जहां तार वाद्यों की श्रेणी में आते हैं वहीं अलगोजा, पूंगी, शहनाई, मशक, बाकिया भूंगल, मशक आदि फूंक वाद्यों की श्रेणी में आते हैं। नौबत, नगाड़ा, ताशा, ढोल, ढोलक, चंग, म दंग, मांदल, धौंसा, डैरूं, खंजरी आदि खाल से मंढे वाद्य यंत्रो की श्रेणी के हैं। कुछ प्रमुख लोक वाद्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से हैं -

- **तंदूरा :** तानपूरे के जैसे चार तारों का होने के कारण इसे चौतारा भी कहा जाता है। लकड़ी के बने इस वाद्य यंत्र को वादक बांये हाथ में पकड़कर दाहिने हाथ की पहली उंगली में मिजराब पहनकर बजाते हैं। इसकी आकृति सितार या तानपुरे से मिलती है किन्तु इसकी कुण्डी तुम्बे की बजाय लकड़ी की बनी होती है। संगति के लिए करताल, मंजीरा, चिमटा आदि वाद्य यंत्र काम में लिए जाते हैं। बहुधा इसे कामड़ जाति के लोग और निर्गुण भजन गाने वाले नाथपंथी बजाते हैं।
- **भपंग :** कटे हुए तुम्बे से बने, इस वाद्य यंत्र के एक सिरे पर चमड़ा मंढा होता है। वाद्य यंत्र की लम्बाई डेढ़ बालिश्त और चौडाई दस अंगूल होती है। चमडे की खाल के बीच से तार निकालते हुए एक खुटी से बौध दिया जाता है। खूंटी को तानते व ढिला करते हुए लकडी के टूकड़े से प्रहार कर इससे विभिन्न ध्वनियां निकाली जाती है।
- **जंतर :** जंतर को वीणा का प्रारंभिक रूप कहा जा सकता है। इसकी आकृति भी वीणा से खासी मिलती है। वादक इसको गले में डालकर खड़े-खड़े ही बजाते हैं। वीणा की तरह इसमें

दो तुम्बे होते है। इसकी डांड बांस की बनी होती है जिसपर एक विशेष पशु की खाल के बने 22 पर्दे मोम से चिपकाए जाते हैं। मुख्यत: इस वाद्य यंत्र का उपयोग बगड़ावती की कथा कहने वाले भोपे करते है जो पर्दे पर चित्रित कथा के सन्मुख खडे होकर जन्तर की संगत करते हुए गाकर कहानी कहते हैं।

- **सारंगी:** लोक संगीत में गायक सारंगी बजाते हुए गीत गाते हैं। शास्त्रीय सारंगी से लोक वाद्य सारंगी का आकार थोड़ा छोटा होता है। मिरासी, लगे, जोगी, मागणियार आदि इस वाद्य यंत्र का उपयोग अधिक करते हैं। सागवान, कैर, रोहिड़ा आदि की लकड़ी से बनायी जाने वाली सारंगी में कुल 27 तार होते हैं! राजस्थान में सारंगी दो प्रकार की उपयोग में लायी जाती है। पहली सिंधी सारंगी तथा दूसरी गुजरातण सारंगी। सिंधी सारंगी में तारों की संख्या अधिक होती है तथा यह सारंगी का उन्नत एवं विकसित रूप है। जैसलमेर के लगा जाति के लोक गायक, गड़रियों के भाट सारंगी वादन में निपुण होते हैं।
- **इकतारा :** छोटे से गोल तुम्बे में बांस की डंडी फंसाकर इकतारा बनाया जाता है। तैबे का ऊपरी हिस्सा काटकर उस पर चमड़ा चढा दिया जाता है। बांस में छेदकर उसमें खूंटी लगाकार उसमें एक तार कस दिया जाता है। इस तार को अंगूली से बजाया जाता है। इसे अधिकतर कालबेलिया, नाथ, साधु-संन्यासी आदि बजाते हैं।
- **रावण हत्था :** भोपों का प्रमुख लोक वाद्य रावण हत्था, राजस्थान का सर्वाधिक प्रचलित वाद्य यंत्र हैं। बनावट में अत्यधिक सरल इस वाद्य को बडे नारियल की कटोरी पर खाल मढकर बनाया जाता है। इसकी डांड बांस की बनी होती है जिसमें खूंटियां लगा दी जाती है और तार बांध दिए जाते हैं। वायलिन की तरह इसे गज से बजाया जाता है जिसमें एक सिरे पर कुछ घुंघरू भी बंधे होते हैं जो उसके संचालन के समय ध्वनि उत्पन्न कर ताल का कार्य भी करते हैं। मुख्य रूप से भोपे, भील आदि इस वाद्य का उपयोग करते हैं और इसके साथ पाबूजी, डूंगरजी-ज्वारजी आदि की कथाएं गायी जाती है।
- **कामायचा:** सारंगी के समान बने इस वाद्य के मुख्य तार तांत के बने होते हैं। इसकी तरबों का प्रयोग गज संचालन के साथ किया जाता है इसलिए वे घुड़च के ठीक ऊपर से निकाली जाती है। इससे वाद्य की ध्वनि अत्यन्त प्रखर हो जाती है। इस वाद्य का प्रयोग राजस्थान के मांगणियार अधिक करते हैं।
- **अलगोजा :** विशेष प्रकार की बांस की नली से बने इस वाद्य के कई रूप हैं। कुछ में तीन छेद होते हैं तो कुछ में पांच। नली के ऊपरी मुख को छीलकर उस पर लकड़ी का एक गट्टा चिपका दिया जाता है जिससे आसानी से आवाज निकलती है। प्राय: दो अलगोजे एक साथ मुंह में रखकर बजाए जाते हैं। एक अलगोजे पर स्वर कायम किया जाता है तथा दूसरे पर स्वर बजाए जाते हैं।
- **पूंगी :** विशेष प्रकार के तुंबे से बने इस वाद्य का ऊपरी हिस्सा पतला और लंबा होता है तथा नीचे का हिस्सा गोल होता है। तंबे के नीचे के गोल हिस्से में छेदकर दो नलियां लगाई जाती है। इनमें स्वरों के छेद होते हैं। कहते हैं इस वाद्य से सांप को मोहित करने की अद्भूत क्षमता होती है। कालबेलियो का यह प्रमुख वाद्य है।

- **मशक :** चमड़े की मशक से बने होने के कारण ही इसे मशक कहा जाता है। इसमें एक ओर से मुंह से हवा भरी जाती है तथा नीचे की ओर लगी हुई नली के छेदों से स्वर निकाले जाते हैं। पूंगी की तरह स्वर निकालने वाले इस वाद्य को भैंरूजी के भोपे अधिकाशत: प्रयोग करते हैं।
- **शहनाई :** शीशम, सागवान या टाली की लकड़ी से बनाए जाने वाले इस मांगलिक वाद्य का आकार चिलम के समान होता है और इसमें आठ छेद होते हैं। इसके ऊपरी हिस्से पर ताड़ के पत्ते की तूंती बनाकर लगायी जाती है। फूंक देने पर इससे स्वर निकलते है। विवाहोत्सव, लोक नाट्य, ख्याल आदि में इसका वाद्य यंत्र का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है।
- **मोरचंग :** लोहे का बना छोटा सा वाद्य मोरका होंठों के बीच में रखकर बजाया जाता है। एक गोलाकार हैण्डिल से दो छोटी ओर लम्बी छड़ें निकली होती है जिनके बीच में पतले लोहे की एक लम्बी रीड रहती है जिसके मुंह पर थोड़ा सा घुमाव दे दिया जाता है। होंठो में दबाने के बाद मोरका में वास-प्रश्वास से रीड में कंपन पैदा किया जाता है और इस तरंगित रीड के मुड़े हुए हिस्से पर अंगुली से आघात करके स्वर व लयपूर्ण ध्वनि बड़ी कलात्मकता से निकाली जाती है। लोक कलाकारों द्वारा मोरका की स्वरलहरिया जब निकाली जाती है तो सुनकर मन मंत्र-मुग्ध हो उठता है।
- **नौबत :** मंदिरों में प्रयुक्त होने वाले इस प्रमुख ताल वाद्य की कुंडी सर्व धातु से निर्मित लगभग चार फीट ऊंची होती है जिसे खाल से मंढा जाता है। खाल के भीतर राल, हल्दी, तेल पकाकर लगाया जाता है जिससे इसकी ध्वनि में गांभीर्य बढ़ जाता है। बबूल या शीशम के डंके का आघात करके इसे बजाया जाता है
- **नगाड़ा :** शहनाई के साथ बजाए जाने वाले नगाड़े दो प्रकार के छोटे और बडे होते है। छोटे नगाड़े के साथ एक नगाड़ी भी होती है। बड़ा नगाड़ा नौबत की तरह होता है। इसे बम या टामक भी कहा जाता है। युद्ध के समय रणभेरी के रूप में नगाड़ों को ही बजाया जाता था। लोक नाट्यों, रम्मत, ख्याल में नगाड़ो का प्रयोग होता है।
- **ढोल :** लोहे अथवा लकडी के गोल घेरे पर दोनों तरफ सें चमड़ा मंढ कर ढोल बनाया जाता है। सूत या सन की रस्सियों को कडियों के सहारे खींचकर इसे कसा जाता है। पर्व, उत्सव, संस्कार आदि अवसरों पर इसे बजाया जाता है। ढोल कई प्रकार के होते हैं यथा एहड़े का ढोल, गैर का ढोल, नाच का ढोल, बारात का ढोल, आरती का ढोल आदि। इसे कभी गले में डालकर, कभी जमीन पर रखकर एक ओर डंडे से तो कभी दोनों ओर डंडियो से बजाया जाता है। ढोली, सरगरे भील, भांभी आदि इसे कुशलता से बजाते है।
- **ढोलक :** ढोल की तरह छोटे आकार की होती है ढोलक। इसके भी दोनों तरफ चमड़ा लगा होता, जिन्हें रस्सियों से कसा जाता है। यह दोनों हाथों से बजायी जाती है। राजस्थान में नट लोग इसे एक ओर डंडे से तथा दूसरी ओर हाथ से बजाते हैं। ढोलक के भी विभिन्न आकार-प्रकार प्रचलन में हैं। सांसी, कंजर, ढाढी, मीरासी, कबाल, वैरागी, साधु आदि इसे बजाते हैं।

- **मादल:** मिट्टी से बनाए जाने वाले इस वाद्य का एक मुंह छोटा तथा दूसरा बड़ा होता है। इस पर मढी हुई खाल पर जौ का आटा चिपकाकर बजाया जाता है। इसके साथ थाली भी बजायी जाती है।
- **चंग:** राजस्थान का अत्यधिक लोकप्रिय चंग होली के अवसर पर लगभग सभी स्थानों पर बजाया जाता है। लकड़ी के गोल घेरे से बने इसके एक तरफ खाल मंढी जाती है। ढप से भी पहचाने जाने वाले इस वाद्य को कहीं कहीं मोर के पंखों की बनी चीप की सहायता से भी बजाया जाता है।
- **खंजरी :** चंग या ढप के लघु आकार में बने इस वाद्य को दाहिने हाथ में पकड़कर बांये हाथ से बजाया जाता है। कामड़, बलाई, भील, कालबेलिया आदि इसे बजाते है।
- **डैरूं :** डमरू का बड़ा रूप डैरूं आम की लकड़ी से बना होता है और इसके दोनों ओर बारीक चमड़ा मंढा होता है। यह रस्सियों से कसा होता है। एक हाथ से इसको पकड़कर डोरियों पर दबाव डालकर कसा और ढीला छोड़ा अता है तथा दूसरे और से लकड़ी की पतली डंडी के आघात से इसे बजाया जाता है।
- **मंजीरा :** पीतल और कांसे की मिश्रित धातु का गोलाकार रूप में बना मंजीरा तंदुरे, इकतारे आदि के साथ बजाया जाता है। दो मंजीरों को आपस में घर्षित करे ध्वनि उत्पन्न की जाती है। डूंगरपुर क्षेत्र में इसे बजाने की विशेष पद्धति तेरहताली कही जाती है। इसमें वादक सिर से पांव तक विभिन्न अंगो पर मंजीरे बांध लेते हैं और भजन गाते हुए दोनों हाथों से मंजीरों पर आघात करके ध्वनि निकालते हैं। मंजीरे के विशाल रूप को झांझ कहा जाता हैं।
- **खड़ताल :** कहते हैं खड़ताल 'कर-ताल' से बना है। इस वाद्य में लकड़ी के दो टुकड़ों के बीच में पीतल की छोटी छोटी गोल तश्तरियां लगी रहती है। लकड़ी के टूकड़ों को परस्पर टकराकर इसमें मधुर झंकार उत्पन्न की जाती है।

7.4 राजस्थान के लोक नृत्य:

भौगोलिक विविधता वाले प्रदेश राजस्थान के लोकनृत्यों में भी वैविध्यता है। अलग-अलग क्षेत्रों की परम्पराओं, मान्यताओं और संस्कृति से जुड़े इन नृत्यों में मानों जीवन थिरकता है। मन के उल्लास, जीवन के उत्साह से जुड़े राजस्थान के कुछ प्रमुख लोक नृत्य इस प्रकार से हैं -

- **घूमर :** घूमर नृत्य, नृत्यों का सिरमौर माना जाता है। मलमल के झीने तारों का लम्बा घूंघट डाले, पल्लू के लंहगे की तह में भली प्रकार ढाबे, कंचुकी के बन्धों को कसकर, पायल की ठुमक और झनक के साथ, नीचे झुक-झुककर अंगों को लचकाती हुई और दोनो हाथों से आह्लाद की मुद्रा को चुटकियों से व्यक्त करती हुई स्त्रियां यह नृत्य करती है। गणगौर एवं नवरात्रि पर्व पर यह विशेष रूप से होता है।
- **गैर :** होली के दिनों में मेवाड़ और बाड़मेर में गैर नृत्य विशेष रूप से किया जाता है। गोल घेरे में होने के कारण ही इसे पहले 'घेर' और कालान्तर में गैर कहा जाने लगा। गैर की यह खास बात है कि इसमें पद संचालन तलवार युद्ध ओर पटेबाजी जैसी लगती है। वृताकार में इस नृत्य में अलग-अलग मंडल बनाये जाते हैं।

- **गींदड़ :** शेखावटी का सर्वाधिक लोकप्रिय - नृत्य गींदड मुख्यत: सुजानगढ़, लक्ष्मणगढ़, चूरू, सीकर और आस-पास के क्षेत्र में किया जाता है। नगाड़ा इस नृत्य का मुख्य -वाद्य यंत्र होता है। नगाड़े की ताल के साथ हाथ में लिए डंडो को परस्पर टकराकर नर्तक नाचते हैं। नगाड़े की तान के साथ नृत्य में तेजी आती है। नृत्य में विभिन्न प्रकार के स्वांग भी निकालते जाते हैं। सामूहिक रूप से किए जाने वाले इस नृत्य में अनेक बार चंग के साथ नर्तक को कंधों पर उठा लिया जाता है।
- **डांडिया :** यह जोधपुर, बीकानेर और शेखावटी क्षेत्र में विशेष रूप से किया जाता है। यह पुरूषों का नृत्य है जो फागुन की शीतल रातों में किया जाता है। यों तो गीदड़, गैर आदि नृत्य की ही तरह डांडिया होता है परन्तु पद संचालन, भाव-भंगिमा, ताल, गीत और वेशभूषा आदि में तीलों ही अलग है। इस नृत्य में पुरूषों की टोली हाथ में लंबी छड़ी लेकर नाचती है। शहनाई और नगाड़े का प्रयोग किया जाता है। युवक हाथों में डंडे भिड़ाते हुए घूमते है। पुरूषों की पोशाक में विशेष तौर पर बागा तथा पगड़ी होती है। कई पुरूष स्त्रियों का वेश बनाकर घूंघट काढते हुए नृत्य करते है।
- **तेराताली :** यह एक भक्ति नृत्य है। इस नृत्य को करने वाले कामड़ जाति के नर्तक जो रामदेव जी के भक्त होते है व उदयपुर तथा पाली जिले में निवास करते है। इस नृत्य को महिलाएं मांगलिक अवसरों पर करती है। इसमें जीवन के विभिन्न पहलुओं को तेरह ताल में मजीरे बजाकर भावाभिव्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।
- **अग्नि नृत्य :** धधकते अंगारों पर किया जाने वाला अग्नि नृत्य जसनाथी संप्रदाय के लोगों द्वारा किया जाता है। इसमें नर्तक अंगारों के ढेर पर नाचते हुए निकलते है। नर्तक कभी-कभी अंगारों को हाथ में उठाते हैं मुंह में डालते हैं और कभी कभी तो उनसे कई प्रकार के करतब भी दिखाने लगते है। इधर के वर्षों में बीकानेर में आयोजित होने वाले कैमल फेस्टीवल के दौरान पास के गांव कतरियासर में इस प्रकार के नृत्य का विशेष रूप से आयोजन पर्यटकों के लिए किंया जाता है।
- **भवेई :** इस नृत्य में कलाकार अपने सिर पर दो या अधिक घड़े रखकर नंगी तलवारों और कांच के टुकड़ो पर नृत्य कर अपना करतब दिखाते है। बाड़मेर के लोक कलाकार इस नृत्य के लिए देश ही नहीं अपितु विदेशों में भी प्रसिद्ध है। भवई में विभिन्न शारीरिक करतब दिखाने पर जोर दिया जाता है। अनूठी नृत्य अदायगी तथा लयकारी की विविधता इस नृत्य की खास विशेषता है। नर्तक तेज लय में सिर पर सात-आठ मटके रखकर नृत्य करता है। बीच में जमीन से रूमाल उठाने, आंख से अंगूठी उठाने के अलावा थाली की कोर, तलवारो की धार, नुकिली कीलों, कांच के टूकडों, गिलास आदि पर भी नृत्य करता है।
- **चकरी :** हाड़ौती अंचल के इस नृत्य में कंजर और बेड़िया जाति की कुवांरी लड़कियॉ चंग की ताल पर तेज रफ्तार से चक्राकार नृत्य करती है।
- **बमरसिया :** अलवर और भरतपुर क्षेत्र के इस लोकप्रिय नृत्य में एक बड़े नगाड़े का प्रयोग किया जाता है। इसे दो आदमी डंडो की सहायता से बजाते हैं और नर्तक रंग-बिरंगे फूंदो तथा पंखों से बंधी लकड़ी को हाथों में लिए उसे हवा से उछालते हुए नाचते हैं। नगाड़े के अलावा

थाली, चिमटा, मंजीरा, खड़ताल आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग भी नृत्य में किया जाता है। बम यानी नगाड़े के साथ रसिया गाने से इस नृत्य का नाम बमरसिया हो गया।

राजस्थान के अन्य नृत्यों में मेहंदी नृत्य, पणिहारी का नाच, भैरूजी के भोपे का नृत्य, नाथपंथ कालबेलियो का पूंगी नृत्य, थोरियों का फड़ नृत्य, कच्छी घोडी का नृत्य, मिरासी, चित्तौड का तुर्रा-कलंगी नृत्य विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

7.5 सारांश:

लोक जीवन का सुन्दरतम प्रतिबिम्ब लोकसंगीत एवं लोकनृत्यों में देखा जा सकता है। मनुष्य के बाहरी जीवन के साथ-साथ उसके मानसिक भावों का परिचय भी लोकसंगीत एवं लोक नृत्यों से ही होता है।

राजस्थान में लोकसंगीत एवं नृत्यों की आरंभ से ही समृद्ध परम्परा रही हैं। रेत के धोरों में जीवन के स्पन्दन से जुड़ा यहां का संगीत माटी की सौंधी महक का सा अहसास कराता है। लोक संगीत एवं लोक नृत्यों में लोक का आलोक है। कहीं बच्चों को सुलाने के लिए गायी जाने वाली मां की लोरियां हैं तो कहीं विवाह, उत्सव से जुड़े लोक गीतों की अपनी विशिष्ट परम्परा है। घुमर, गैर, तेराताली, भवई, चकरी, डांडिया जैसे नृत्यों में राजस्थान का जन जीवन पूरी तरह से प्रतिबिम्बित होता है। इस प्रतिबिम्ब में स्पष्ट दिखायी देती है। राजस्थान के लोगों की उत्सवधर्मिता। इस इकाई में आपको राजस्थान के लोक संगीत एवं नृत्यों के बारे में इसलिए विस्तार से जानकारी दी गयी हैं कि आप भी राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर से रू-ब-रू हो सकें।

बोध प्रश्न :

1. "लोक संगीत एवं लोक नृत्य लोक जीवन के स्पन्दन से जुड़े है।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में राजस्थान के लोक संगीत एवं लोक नृत्यों की विशेषताओं के बारे में प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

2. लोक संगीत एवं नृत्य की अवधारणा पर प्रकाश डालते हुए इनकी पृथक से परिभाषाएं दीजिए।

   .....

   .....

3. राजस्थान के लोक गीतों में जीवन से जुड़े प्रसंगों का उल्लेख कीजिए।

   .....

   .....

4. राजस्थान के विभिन्न अंचलों में किए जाने वाले लोकनृत्यों के बारे में संक्षेप में प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

5. "लोक संगीत एवं नृत्यों में लोक का आलोक छुपा हैं"। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? पक्ष में तर्क दीजिए।

.....

.....

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें :

खंड 2 के अंतर्गत इकाई संख्या 5 से 7 तक आपने राजस्थान के पर्यटन वैभव के विभिन्न पहलुओं के बारे में "पर्यटन उत्पाद" के तहत सविस्तार जानकारी प्राप्त की है।

इस खंड के संदर्भ के लिए आपको निम्न पुस्तकें सुझायी जा रही हैं-

1. राजस्थानी लोकगीत खण्ड 1 एवं 2 – शिव सिंह
2. राजस्थानी लोक संस्कृति की रूपरेखा – मनोहर शर्मा
3. राजस्थान की लोक कलाएं – देवी लाल सामर
4. अमेरिकन फोक लोर – डोरसन रिचर
5. द परफार्मिंग आर्टस – उत्पल के, बनर्जी
6. फोक टेल्स ऑफ राजस्थान – जे. एल. माथुर
7. कठपुतली कला और शिक्षा – देवी लाल सामर

खण्ड-3 : मिश्रित पर्यटन उत्पाद

इकाई - 08	रहन-सहन, खान-पान एवं वेशभूषा
इकाई - 09	मेले एवं त्यौहार
इकाई - 10	राजस्थान की हस्तकलाएं
इकाई - 11	साहसिक पर्यटन एवं मनोरंजन
इकाई - 12	पधारो म्हारे देरस...

खण्ड-3: मिश्रित पर्यटन उत्पाद

इकाई - 8: रहन-सहन, खान-पान एवं वेशभूषा

रूपरेखा :

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 लोकाचार, परम्पराएं एवं सरकार

8.2.1 जन्म, मुंडन एवं उपनयन संस्कार

8.2.2 विवाह संस्कार

8.2.3 मृत्यु संस्कार

8.3 रहन-सहन, खान- पान एवं वेशभूषा

8.3.1 वेशभूषा

8.3.2 आभूषण

8.3.3 खान- पान

8.4 राजस्थानी बोलियां एवं भाषा

8.5 सारांश

8.0 उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- राजस्थानी खान-पान की परम्पराओं के बारे में जान सकेंगे।
- राजस्थान के लोगों के रहन-सहन, उनके परिधान,आभूषण, केश, विन्यास, आमो प्रमोद आदि के बारे में अवगत हो सकेंगे।
- राजस्थान के रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार तथा भाषा के बारे में जान सकेंगे।
- राजस्थान की समृद्ध परम्पराओं के बारे में अपने ज्ञान को विस्तार दे सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना:

राजस्थान के रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, वेशभूषा तथा भाषा सभी कुछ विविधताएं एवं अपनापन लिए हुए हैं। उत्सवधर्मिता के गौरवमय प्रदेश राजस्थान में रहन-सहन, खान-पान एवं वेशभूषा की दृष्टि से विभिन्न वर्गो की विशिष्ट विशेषताएं हैं। वैसे भी किसी भी प्रदेश या क्षेत्र के निवासियों का रहन-सहन वहां की भौगोलिक स्थितियों एवं जलवायु से प्रभावित होता है। राजस्थान भौगोलिक दृष्टि से ही वैविध्य लिए नही है बल्कि यहां की जलवायु भी अन्य प्रदेशों से सर्वथा भिन्न हैं। सागर और बर्फ के सिवाय यहां सब कुछ है। पहचान राजस्थान की भले ही रेतीले प्रदेश के रूप में हों परन्तु यहां पर्वत, झीलें, नदियां, सघन वनों की लम्बी श्रृंखला भी है। गौरवमयी अतीत की शानदार विरासत के प्रदेश राजस्थान के रहन-सहन. यहां की परम्पराओं, रीति-रिवाज, लोगों की वेशभूषा, खान-पान में वैविध्य के साथ ही एक अलग सा अपनापन है।

मेहमाननवाजी यहां की सांस्कृतिक पहचान है। 'पधारो म्हारे देस' की सांस्कृति के प्रदेश राजस्थान को आईए जाने, महसूस करे, यहां के विशिष्ट रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा की परम्पराओ के माध्यम से-

8.2 लोकाचार, परम्पराएं एवं संस्कार:

राजस्थान के लोगों का जीवन सहज एवं सरस है। यहां के रहन-सहन में सादगी के साथ ही विशिष्ट प्रकार का अपनापन भी है। राजस्थानी में कहें तो अपणायत के भावों से प्रेरित राजस्थान के जीवन ने सदा ही पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित किया है। यहां के रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार में इसके समृद्ध अतीत की गौरवपूर्ण परम्पराओं को देखा जा सकता है। ऐतिहासिक रूप में राजस्थानी लोकाचार एवं परम्पराओं का मूल, वेद की ऋचाएं हैं। वेद की ऋचाओं में व्यक्ति के जीवन के संस्कारों के लिए आवश्यक विधानों का उल्लेख है। राजस्थानी लोगों में भी वैदिक विधानों के अनुसार ही लोकाचार और परम्पराएं विद्यमान है। जन्म, विवाह और मृत्यु से संबन्धित संस्कारों की विशिष्ट परम्पराएं, राजस्थान में आरंभ से ही चली आ रही है।

राजस्थानी साहित्य में सीमन्तोनयन, नामकरण, अन्नपाशन, उपनयन, विवाह, अन्येष्टि आदि संस्कारों का प्रचुर मात्रा में उल्लेख है। प्रमुख संस्कारों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है-

8.2.1 जन्म, मुंडन एवं उपनयन संस्कार:

राजस्थान में बच्चों के जन्म के साथ ही कम से कम नौ प्रमुख विधि-विधान प्रचलन में हैं। इनमें पहला है-गर्भधारण समारोह। गर्भधारण समारोह के अंतर्गत विवाह के बाद दुल्हन के गर्भवती होते ही समाज में इसे शुभ लक्षण मानते हुए खुशियां मनायी जाती है। गर्भधारण के गीत घरों में गाये जाते हैं। बच्चे के जन्म के बाद ग्यारहवें या एक सौ वें एकवें दिन नामकरण संस्कार किया जाता है। इस संस्कार के तहत परिवार के पुरोहित अर्थात् पंडित को आमंत्रित कर नामकरण सरकार करवाया जाता है। मध्यकाल में नामकरण सरकार जन्म के दसवें या चालीसवें दिन किया जाता था। नामकरण पर पंडित के द्वारा बच्चे की जन्मकुंडली बनवायी जाती है। बच्चा जब दो या तीन साल का हो जाता है तो उसका मुडंन सरकार भी करवाया जाता है। तब तक बच्चे के बाल नहीं काटे जाते हैं। मुंडन सरकार के तहत बच्चे के बालों की एक छोटी सी चुटिया छोड़कर कुलदेवता के समक्ष या पैतृक मंदिर में शुभ दिन में बच्चे का मुंडन किया जाता है। इसे झडुला या मुंडन कहा जाता है। पारम्परिक रूप में इस दिन पारिवारिक या सामूहिक भोज का आयोजन भी प्राय: किया जाता है। मुंडन संस्कार के बाद लड़के के आठवें या नौंवे वर्ष में उसका उपनयन संस्कार भी किया जाता है। उपनयन का शाब्दिक अर्थ है बच्चे को ब्रहचर्य आश्रम में प्रवेश के लिए आचार्य के पास ले जाना। इसे जनेऊ संस्कार भी कहा जाता है। उपनयन संस्कार के दिन घर में यज्ञ का आयोजन कर बच्चे को यज्ञोपवित धारण करायी जाती है। यज्ञोपवित के तहत एक पवित्र धागा पहनने को बच्चे को दिया जाता है जो बाएं कंधे से तिर्यक रूप से नीचे दाई और लटकता रहता है। बालक के कान में कुल पुरोहित यज्ञोपवित

धारण का मंत्र भी बोलता है। सूर्य देवता के इस मंत्र को गायत्री मंत्र भी कहा जाता है। इस मंत्र के साथ ही बालक विद्यारंभ करता है। उपनयन सरकार मुख्यत: ब्राहमणों के बच्चों में ही होता है।

8.2.2 विवाह संस्कार:

राजस्थान की विवाह परम्पराओं की पहचान विश्वंभर में है। सोलह संस्कारों में विवाह सबसे पवित्र और महत्वपूर्ण माना जाता है। सामान्यतया राजस्थान में विवाह, माता-पिता की सहमति से समाज की जाति के लोगों में ही किया जाता है। शादी से पहले भावी वर-वधु की सगाई की रस्म होती है। सगाई के बाद ही विवाह की परम्पराओं की शुरूआत होती है। विवाह के प्रथम दिन गणेश-पूजन होता है तथा विनायक बैठता है। कन्याओं पर इसी दिन तेल चढ़ाया जाता है। तेल चढ़ने के बाद दुल्हन के घर से नहीं निकलने का रिवाज है। दुल्हन के तेल चढ़ने के दूसरे दिन भात, मायरा निकासी होती है। भात दुल्हन एवं दुल्हे के ननिहाल पक्ष की ओर से भरा जाता है। भात भरे जाने के बाद ही विवाह के लिए दुल्हे की निकासी दुल्हन के घर की ओर होती है। निकासी को बारात कहा जाता है। बारात में प्राय: दुल्हा घोड़ी पर सवार होकर जाता है। रिश्तेदारों, मित्रों एवं संबंधियों के लवाजमें एवं बैंड-बाजों के साथ गाते-बजाते दुल्हा ससुराल पहुंचता है। हिन्दु समाज में बारात के बाद फेरे रात्रि को ही होते हैं। शादी के फेरों में अग्नि को साक्षी मानकर वर-वधु एक-दूसरे के प्रति उत्तरदायी रहने की प्रतिज्ञाएं लेते है। शादी को जन्म जन्मान्तर का पवित्र बंधन कहा जाता है। शादी से ही परिवार की परम्परा की शुरूआत होती है।

8.2.3 मृत्यु संस्कार:

जन्म से मृत्यु तक के संस्कारों के अंतर्गत व्यक्ति जब वृद्ध हो जाता है और मृत्युलोक को प्राप्त हो जाता है, तब उसके दाह संस्कार, अंत्येष्टि, तीया, मोसर आदि की परम्पराएं भी राजस्थान में निभायी जाती है। मृत्यु पर व्यक्ति का दाह संस्कार राजस्थान में अन्य भागों की तरह ही होता है। मुसलमानों में दफनाने की परम्परा है तो हिन्दुओं में श्मशान में दाह संस्कार किया जाता है। मृत्यु के बाद शव को रिश्तेदारों, संबंधियों के समूह द्वारा श्मशान ले जाया जाता है। वहीं दाह संस्कार किया जाता है। मृत्यु के बाद शोक संतप्त परिवार प्राय: 12 दिन का शोक मनाता है। मृत्यु के तीसरे दिन परिवार के संबंधी श्मशान में जाकर अस्थियां जमा करते हैं, जिन्हें बाद में हरिद्वार में गंगा अथवा पवित्र झील, नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। शोकसंतप्त परिवार द्वारा मृत्यु भोज का आयोजन भी किया जाता रहा है। आधुनिक समय में इस परम्परा का निर्वहन नहीं के बराबर किया जाता है। वैसे भी मृत्यु भोज पर राज्य सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया है।

8.3 रहन-सहन, खान-पान एवं वेशभूषा :

राजस्थान के लोगों का रहन-सहन सादा और सहज है। उत्सवधर्मिता के प्रदेश राजस्थान में विभिन्न वर्गो में रहन-सहन, खान-पान और वेशभूषा में थोडी-बहुत विविधता है परन्तु

समग्रत: अनेकता में एकता का दर्शन यहां के रहन-सहन में देखा जा सकता है। तीज-त्योंहार पर अच्छे वस्त्राभूषण, श्रृंगार आदि की परम्परा आरंभ से ही राजस्थान में रही है। खान-पान की दृष्टि से पौष्टिक खाना खाने की परम्परा प्राय: सभी क्षेत्रों में है। हां क्षेत्र विशेष में खाने की विशिष्ट परम्पराओं को वहां के प्रसिद्ध पकवान, मिठाई, नमकीन से भी जाना जा सकता है। रहन-सहन, खान-पान और वेशभूषा में समय के साथ परिवर्तन भी आया है परन्तु अभी भी अन्य प्रदेशों की तुलना में राजस्थान अपने रीत-रिवाजों, परम्पराओं को सहेजे हुए हैं।

8.3.1 वेशभूषा:

राजस्थान के लोगों की वेशभूषा से यहां की संस्कृति का सहज ही अन्दाज लगाया जा सकता है। यहां की वेशभूषा में मौलिकता के जो तत्व विद्यमान हैं, उन्ही का परिणाम है कि सदियों बीत जाने के बाद आज भी यहां की वेशभूषा की संस्कृति पूर्ववत ही अपनी पहचान सुदूर देशों तक में बनाए हुए हैं।

यहां की जीवन शैली के प्रतिबिम्ब परिधानों में अलग-अलग वर्ग के लोगों के लिए अलग-अलग परिधान प्रचलन में हैं। पुरूष परिधान के अंतर्गत पगड़ी यहां के लोगों की शान की प्रतीक है। विविध पेशे के लोगों में पगड़ी पहनने का रिवाज भी अलग-अलग है। ऋतु के अनुकूल रंगीन पगड़ियां पहनने का रिवाज भी ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से है। विवाहोत्सव पर जहां मोठड़े की पगड़ी पहनने का रिवाज है तो दशहरे के अवसर पर मदल बांधे जाने का रिवाज है। होली पर माहौल के अनुरूप रंग-बिरंगी, फूल पत्तियों की, चटख रंगो की पगडियां लोगों द्वारा पहनी जाती है। पगडी को चमकीला बनाने के लिए तुर्रे, सरपेच, बालाबन्दी, धुगधुगी, गोसपेच, पछेवडी, लटकन, फतेपेच आदि का भी प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। उच्च वर्ग के लोगों द्वारा गांवों में फेंटा पहनने की भी परम्परा है। पगड़ी को सम्मान का सूचक समझा जाता रहा है। व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा से जुडी पगड़ी का प्रचलन यद्यपि शहरों में अब बहुत कम हो गया है परन्तु आज भी विवाहोत्सव, तीज-त्योहार आदि पर पगड़ी पहनने, भेंट करने की प्रथा है। अलग-अलग क्षेत्रों में पगड़ियां पहनने की परम्परा भी अलग-अलग है। जयपुर में पगड़ियां में बलदार लपेटे होते हैं तो हाड़ौती में सादा पेचों की पगड़ियां पहनी जाती है। उदयपुर में भी पगड़ी सादा पेचों की ही पहनी जाती है परन्तु उसका विशाल शिखर कुछ उठा हुआ होता है।

पगड़ी की ही तरह अंगरखी भी पहनने का प्रदेश में रिवाज रहा हैं। अंगरखी के साथ पाजामा पहनने की परम्परा भी आरंभ से राजस्थान में रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से पुरूषों द्वारा धोती पहनने की भी परम्परा है। पुरूष धोतियां घुटनों से कुछ नीचे तक तथा दो या तीन लांग की होती है। समय के साथ हालांकि इन परम्पराओं को आधुनिकता ने चोट पहुंचायी है फिर भी यहां के गावों में आज भी ये परम्पराएं जीवित है। पगड़ी, अंगरखा के अलावा सामान्य तौर पर प्रदेश में आजकल पेन्ट-शर्ट ही पहना जाता है। चोला-पायजामा, धोती-चोला भी विशेष रूप से पहनने का रिवाज प्रदेश में है।

स्त्री परिधानो के अंतर्गत घेरदार घाघरा पहनने का रिवाज है और उस पर लूगड़ या ओढनी ओढी जाती है। लहंगों और चूंदरियो के रंगों ओर छपाई की छटा भी देखेते ही बनती है।

शरीर पर अंगिया पहनी जाती है जिसे कांचली भी कहा जाता है। कांचली केवल स्तनों और बाहों को ही ढकती है। लंहगों, ओढनियों, अंगियों तथा काचलियों को गोटा किनारी लगाकर सजाया जाता है। साड़ी का प्रचलन भी आरंभ से ही राजस्थान में रहा है। साड़ियों के लिए कई प्रकार के कपड़े प्रचलन में है। यथा जामादानी, किमखाब, टसर, छींट, मलमल, मखमल, पारचा, मसरू, चिक आदि। डोरिया, चूंदडी, लहरिया राजस्थान में महिलाओं के प्रमुख परिधान रहे हैं, जिनकी ख्याति विदेशों तक में हैं। इधर के वर्षों में साड़ी का स्थान सलवार-कूर्ता लेती जा रही है परन्तु पारम्परिक रूप में आज भी स्त्रियों का प्रमुख परिधना साड़ी ही हैं। तीज-त्योहार, पर्व-उत्सव आदि पर चून्दड़ी, लहरिया पहनने का रिवाज है।

8.3.2 आभूषण:

राजस्थान में पहनने वाले महिला आभूषणों की सुदूर देशों तक पहचान है। महिला आभूषणों में पांव से सर तक के गहने पहने जाने की आरंभ से ही राजस्थान में परम्परा रही है। विशेष रूप से आज भी तीज-त्योहार, पर्व-उत्सव में श्रृंगारकर गहने पहन कर महिलाएं निकलती है। आभूषणों के भी विविध रूप हैं। सिर में बांधे जाने वाले जेवर को बोर, रखड़ी और टिकड़ा से जाना जाता है तो गले तथा छाती के जेवरो में तुलसी, बजट्टी, हालरो, हॉसली, तिमणिया पोत, चन्द्रहार, कंठमाला, हॉकर, चंपकली, हंसहार, सरी, कंठी, झालर आदि पहने जाते हैं। सोने-चांदी से बनने वाले इन आभूषणों के अंतर्गत हाथों में कड़ा, कंकण, नोगरी चांट, गजरा, चूड़ी तथा उंगलियों में बींटी, दामणा, हथपान, छड़ा, बीछिया तथा पैरों में कड़ा, लंगर, पायल, पायजेब, नुपूर, घूंघरू, झांझर, नेवरी आदि पहने जाते हैं। नाक में नथ, वारी, कांटा, चूनी, चोप आदि से सुसज्जित किया जाता रहा है। कमर में कंदोई और करधनी तो जुड़े में बहुमूल्य रत्न या सोने-चांदी की घूघरियां लटकायी जाती है।

आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा आभूषणों से अपने आपको अलंकृत करने की परम्परा विद्यमान है। समय के साथ समाज की सौन्दर्य रूचि के अनुसार आभूषणों के नाम और बनावट में परिवर्तन आता रहा है परन्तु उत्सवधर्मिता के प्रदेश राजस्थान में आज भी गांवों के साथ ही शहरों में भी तीज-त्योहारों पर स्वर्ण एवं रजत आभूषणों के माध्यम से श्रृंगार किया जाता है।

महिलाओं के अलावा पुरूषों द्वारा भी गांवो में आभूषण पहनने की परम्परा है। पुरूष कानों में मुरकियां, लोंग, झाले, छैलकड़ी, हाथों में बाजूबन्द, हाथ में कड़ा तथा अंगुलियों में अंगूठी आदि पहनने का रिवाज है। हालांकि युग परिवर्तन के साथ पुरूष आभूषणों के पहनने की परम्परा लुप्त प्राय: होती जा रही है परन्तु अभी भी विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रो में इस प्रकार की परम्पराओं का निर्वहन प्राय: होता ही है।

8.3.3 खान पान:

विश्व में बिरले ही स्थान ऐसे होंगे जहां राजस्थानी खाने जैसे जायका उपलब्ध हो सकता है। राजस्थान के पूर्वी भाग की मिट्टी जहां उर्वरा है और वहां गेंहू, मक्का और ज्वार

बहुतायत से पैदा होती है। पश्चिमी क्षेत्र रेगिस्तान की मुख्य उपज बाजरा है। रेगिस्तानी प्रदेश में रहकर भी यहां के लोगों का खान-पान निराला है। परिवहन के साधनों के कारण बाहर से खान-पान की सामग्री का आयात होने लगा है फिर भी इस प्रदेश के स्वाभाविक भोजन के लजीज स्वाद का कोई जवाब नहीं है। डाईटिशियन के अनुसार यहां का भोजन उच्च प्रोटिन एवं निम्न वसा वाला माना गया है।

यहां के समाज के विभिन्न वर्गो का भोजन भी वैविध्य लिए है। राजपूत योद्धा शिकार के शौकीन थे इसलिए उनके यहां मांसाहार स्वीकार्य हैं जबकि वैश्णव जो कृष्ण के भक्त या अनुयायी हैं, वे पूरी तरह से शाकाहारी है। ऐसी ही प्रथा विश्नोईयों में है जो वनस्पति एवं जीवों की सुरक्षा के प्रति पूरी तरह समर्पित हैं। राजपूतों में भी कुछ ऐसे भी लोग हैं जो शाकाहार को ही वरीयता देते हैं। यहां के जैन समुदाय, पुष्करणा ब्राहमण एवं कुछ वैश्णवों में लहसुन एवं प्याज को अभोज्य माना जाता है।

खान-पान की प्राचीन परम्परा के अंतर्गत राजस्थान में विशेष रूप से साधारण स्तर के लोगों में राब, रोटी, दाल, छाछ आदि का ही प्रचलन था। उच्च स्तर के समाज में गेंहूं, चना और दालों में अनेक खाद्य वस्तुएं बनती थी जिनमें हलवा, फैनी, घेवर, खाजा एवं लड्डू प्रमुख भोज्य पदार्थ रहे हैं। मोदक में भी अनेक प्रकार के मोदक राजस्थान में प्रचलित है। दही से बनने वाले दधि मोदक, केसर के प्रयोग से बनने वाले केसर मोदक, बीकानेर में पधारी के मोदक, बीजों से बनने वाले बीज मोदक, बूंदी के मोदक आदि प्रमुख मिष्ठान पदार्थ प्रचलन में आरंभ से ही रहे हैं।

खान-पान की राजस्थान की विशिष्ट परम्पराओं के अंतर्गत बीकानेर अपने नमकीन और मिठाई के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। बीकानेर के रसगूल्ले, मावे की विभिन्न मिठाईयों विश्वभर में अपनी पहचान रखती है। रसगूल्लों के स्वाद के साथ ही बीकानेर अपने विशेष नमकीन भूजिया (सेव) के कारण भी अपनी निराली पहचान रखता है। दाल का हलवा, गाजर का हलवा, जलेबी, रबड़ी के कारण भी बीकानेर जाना जाता है। जोधपुर अपनी मावा कचौड़ी के कारण विशेष रूप से पहचान रखता है। अलवर की कलाकंद, ब्यावर की पापड़ी आदि की भी अपनी विशिष्ट पहचान है। भोजन के बाद पान खाना भी राजस्थान की परम्परा में शुमार है।

8.4 राजस्थानी बोलियां एवं भाषा:

राजस्थान के विविध अंचलों में प्रचलित बोलियों के समूह को राजस्थानी से जाना जाता है। राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रो में मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूंढाड़ी, हाड़ौती, मालवी आदि अचंल विशेष के अनुसार बोली जाती है। जोधपुर, सिरोही, जालौर, नागौर, बाड़मेर, जेसलमेर, बीकानेर, श्रीगंगानगर, चूरू, सीकर, झुन्झुनू आदि में मारवाड़ी, उदयपुर, चित्तौडगढ़, भीलवाड़ा, राजसमन्द, अजमेर आदि में मेवाड़ी, डूगरपुर, बांसवाड़ा में वागड़ी जयपुर, टोंक, बूंदी, कोटा, झालावाड़, सवाई माधोपुर, डीग आदि में ढूंढांडी, अलवर, भरतपुर, करौली, धोलपुर आदि में मेवाती तथा चित्तौड़ एवं झालावाड़ के कुछ क्षेत्रों में मालवी बोले जाने की भी परम्परा है। मूलत: इन सभी को राजस्थानी के विविध स्वरूप ही कहा जा सकता है।

राजस्थानी भाषा दरअसल विभिन्न आंचलिक भाषाओं का समग्र रूप है। अंचल विशेष के अनुसार भले ही बोली में परिवर्तन आ जाता है परन्तु मूलत: राजस्थान में रहने वाले जो भाषा प्रयोग में लाते है, उसे राजस्थानी ही कहा जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में राजस्थानी भाषा ही मुख्यत: बोली जाती है परन्तु शहरों में राष्ट्रभाषा हिन्दी ही अधिकतम प्रचलन में हैं।

8.5 सारांश:

राजस्थान अपनी विशिष्ट परम्पराओं, रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, वेशभूषा तथा भाषा आदि सभी में अपनापन लिए हुए हैं। उत्सवधर्मिता के इस प्रदेश का रहन-सहन सादगी से भरा अवश्य है परन्तु खान-पान, वेशभूषा,आभूषण आदि में उत्सवधर्मिता को भी सहज ही देखा जा सकता है। राजस्थान में तो कहा भी जाता है 7 वार 8 त्योंहार। अर्थात् सप्ताह में दिन तो यहां सात होते हैं परन्तु तीज-त्योहार आंठ होते हैं। इसका अर्थ स्पष्ट है कि यहां के जीवन में उल्लास-उमंग का समावेश है। मेहमाननवाजी यहां की सांस्कृतिक पहचान है। तभी तो यहां का पर्यटन नारा भी 'पधारो म्हारे देस' है।

राजस्थान के जन-जीवन को यहां की विविध परम्पराओं से जाना जा सकता है। जीवन से मृत्यु तक यहां के विविध संस्कारो से यह स्पष्ट ही समझा जा सकता है कि यहां वैदिक काल की परम्पराओं का पालन भी आरंभ से ही किया जाता आ रहा है। राजस्थानी साहित्य में सीमन्तोनयन, नामकरण, अन्नपाशन, उपनयन, विवाह, अन्येष्टि आदि संस्कारों का प्रचुर मात्रा में उल्लेख है। खान-पान, वेशभूषा आदि की दृष्टि से भी यहां वैविध्य है।

राजस्थान के विविध अंचलों में प्रचलित बोलियों के समूह को राजस्थानी से जाना जाता है। राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूंढाड़ी, हाड़ौती, मालवी आदि अचंल विशेष के अनुसार बोली जाती है। कुल मिलाकर राजस्थान विविधता में एकता की अनूठी संस्कृति लिए है। यहां के सहज जीवन की पहचान प्रतिकूल भौगोलिक और विषमजीवन परिस्थितियों के बावजूद उत्सवधर्मिता है। इस इकाई में राजस्थानी रहन-सहन, खान-पान और वेशभूषा के बारे में आपको जानकारी देने का प्रयास किया गया है ताकि आप राजस्थान को निकट से महसूस कर सकें।

बोध प्रश्न :

"जीवन से मृत्यु तक के संस्कार राजस्थान के जीवन को प्रतिबिम्बित करते है।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में राजस्थान के लोकाचार, परम्पराओं का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

राजस्थानी रहन-सहन, खान-पान एवं वेशभूषा के बारे में लेख लिखिए।

.....

.....

राजस्थान में बोली जाने वाली बोलियां कौन-कौन सी हैं?

.....

.....

"राजस्थान उत्सधर्मिता का प्रदेश है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं। इस कथन के संदर्भ में राजस्थान की विशिष्ट परम्पराओं के बारे में विस्तार से जानकारी दीजिए।

.....

.....

'पधारो म्हारे देस...' राजस्थान की परम्परा में सम्मिलत है। राजस्थान की मेहमाननवाजी की क्या खास विशेषताएं हैं। यहां विविध क्षेत्रों में खान-पान की विशिष्ट परम्पराओं पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

.....

.....

इकाई- 9 : मेले एवं त्यौहार

रूपरेखा :

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 मेले एवं त्योहारों की परम्परा

9.3 लोकोत्सव

- 9.3.1 गणगौर
- 9.3.2 तीज
- 9.3.3 शीतला अष्टमी
- 9.3.4 अक्षय तृतीया

9.4 धार्मिक मेले

- 9.4.1 पुष्कर का मेला
- 9.4.2 कैलादेवी का मेला
- 9.4.3 श्रीमहावीर जी का मेला
- 9.4.4 ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का उर्स
- 9.4.5 कपिल मुनि का मेला
- 9.4.6 जम्भेश्वर मेला
- 9.4.7 बाणगंगा का मेला
- 9.4.8 गणेश जी का मेला

9.5 लोक देवी-देवताओं के मेले

- 9.5.1 बाबा रामदेवजी का मेला
- 9.5.2 डिग्गी का मेला
- 9.5.3 भर्तृहरी का मेला
- 9.5.4 जीणमाता का मेला
- 9.5.5 करणीमाता का मेला
- 9.5.6 राणी सती का मेला
- 9.5.7 खाटू-श्यामजी का मेला
- 9.5.8 गोगाजी का मेला

9.6 आदिवासी जन-जातियों के मेले

9.7 पर्यटन विभाग के मेले-त्योहार एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम

9.8 सारांश

9.0 उद्देश्य:

इस इकाई को पढने के बाद आप -

- राजस्थान में मेले एवं त्योहारों की परम्परा से अवगत हो सकेंगे।

- राज्य के विभिन्न धार्मिक मेलों के आयोजन के बारे में जान सकेंगें।
- आदिवासी क्षेत्रों में आयोजित होने वाले मेलों से अवगत हो सकेंगें।
- लोक देवी-देवताओं की आस्था से जुड़े मेलों के बारे में जान सकेंगे।
- मौसम एवं ऋतु के आधार पर लगने वाले मेलों के बारे में समझ सकेंगे।
- त्योहार एवं पर्व मनाने की राजस्थान की वर्षों से चली आ रही परम्पराओं से
- अवगत हो सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना :

राजस्थान, देश का ऐसा प्रदेश है जहां वर्षपर्यन्त मेले और त्योहारों का आयोजन होता है। उत्सवधर्मिता के इस प्रदेश में यह कहावत अत्यधिक लोकप्रिय है- 'सात वार, नौ त्योहार।' इसका अर्थ है- सप्ताह में कुल सात तो दिन होते हैं परन्तु त्योंहार इन सात दिनों में 9 मनाए जाते हैं। मेले, पर्व, उत्सव के प्रदेश राजस्थान की धरती के अनगिनत रंगों की आभा है- यहां के मेले एवं त्योंहार। आईए जानें, इनके बारे में -

9.2 मेले एवं त्यौहारों की परम्परा:

मेले एवं त्योंहार हमारी कोमल भावनाओं को जगाते ही नहीं है बल्कि जीवन में उमंग और उत्साह का संचार करते हैं। पूरे विश्व में मेलों एवं त्योहारों का अभिप्राय एक ही है और वह है -सामूहिक रूप में जीवन की उमंग एवं उल्लास की अभिव्यक्ति। मेले एवं त्यौहार एकाकी रूप में नहीं मनाए जाते बल्कि यह समूह में मनाए जाते हैं। मनुष्य को एक-दूसरे के निकट लाने का कार्य भी मेले एवं त्योंहार ही करते हैं। इनसे ही सामाजिक परम्पराएं जीवित रहती है और जीवन का अंग बन जाती हैं। सांस्कृतिक एकता, सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देने वाले मेले एवं त्योंहारो से सभ्यता की सजीवता बनी रहती है।

किसी भी प्रदेश की सांस्कृतिक पहचान में वहां के मेले, उत्सव एवं पर्वों का ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व की तरह किसी प्रदेश का भी अपना सांस्कृतिक व्यक्तित्व होता है। राजस्थान का सांस्कृतिक परिवेश देखना हो तो यहां के मेले एवं त्योहारों को देख लिजिए। लोक जीवन से जुड़ी परम्पराओं, भावनाओं की अभिव्यक्ति लिए यहां के मेले एवं त्योहारों में जीवन के सभी रंग हैं। मेले एवं त्योहारों से समृद्ध राजस्थान के सांस्कृतिक परिवेश के संबध में कवि कन्हैयालाल सेठिया की ये पंक्तियां अत्यन्त सटीक है- 'आ तो सुरगा ने सरमावै, इण पर देव रमण ने आवै, धरती धोरां री।' अर्थात् स्वर्ग को भी शर्म दिलाने वाली इस धरती पर देवता खेलने के लिए आते हैं। सही भी है हर्ष, उल्लास, उमंग से जुड़े राजस्थान के पावन पर्व, तीज-त्योंहार, मेले सभी में जीवन्तता है। यही कारण है कि भौगोलिक विषमताओं के बावजूद यहां के लोग जीवन को भरपूर जीते हैं। उनके चेहरे पर किसी प्रकार की ऊब, निराशा का भाव आप कभी नहीं पाएंगे।

पूरे देश में मनाए जाने वाले विभिन्न त्योहारों यथा होली, दीपावली, रक्षा बंधन, गणेश चतुर्थी, रामनवमी, ईद, क्रिसमस, गुरू नानक जयन्ती, लौहड़ी आदि को राजस्थान में भी बडे उमंग और उत्साह के साथ मनाया जाता है परन्तु कुछ ऐसे मेले एवं त्योहार भी हैं जो

राजस्थान के अपने कहे जा सकते हैं। राजस्थान की संस्कृति, यहां की सभ्यता के साथ स्थानीय जन की भावनाओं और आस्था से जुड़े ऐसे मेले एवं त्योंहार जन-जन को हर्षित पुलकित ही नहीं करते बल्कि उनमें जीवन का उत्साह एवं उमंग बनाए रखते हैं। धार्मिक आस्था, जीवन के श्रृंगार, खेती-बाड़ी, परस्पर सद्भाव, लोकानुरंजन आदि से जुड़े ऐसे मेलों और त्योहारों में जीवन का आंनद छुपा है। लगभग साल भर मेले एवं त्योहारों की परम्परा वाले प्रदेश राजस्थान के धार्मिक, आदिवासी, लोक देवी-देवताओ, मौसम एवं ऋतुओं को मनाने के मेले एवं त्योंहार यहां के जीवन के अंग है। वर्षा से चली आ रही मेले एवं त्योहारों की परम्परा आज भी जीवन्त हैं।

9.3 लोकोत्सव:

राजस्थान को कला संस्कृति का घर कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। लोकोत्सव अर्थात् लोगों का उत्सव। यह कहा जा सकता है कि राजस्थान लोगों के उत्सव का पर्याय हैं। यहां का हर त्योंहार एवं मेला लोक जीवन के किसी प्रसंग से जुड़ा है। हर लोकोत्सव के अपने गीत, अपनी परम्परा और अपनी संस्कृति हैं।कुछ प्रमुख लोकोत्सव इस प्रकार से हैं -

9.3.1 गणगौर:

चैत्र माह प्रारंभ होते ही होलिका दहन के दूसरे दिन प्रारंभ होने वाले गणगौर उत्सव का राजस्थान में विशेष महत्व है। अविवाहित युवतियां मनवांछित वर प्राप्त करने के लिए और विवाहित महिलाएं अपने सुहाग की दीर्घायु के लिए इस पर्व पर गणगौर यानी शिव-पार्वती की पूजा करती हैं। कुमारियों, त्योंहार की अवधि पूरी होने तक एक समय का भोजन ग्रहण करती हैं और व्रत रखती हैं। गणगौर मनाने के अंतर्गत ईसर और गौरी की प्रतिमाएं, मिट्टी ओर लकड़ी से बनायी जाती हैं। कुछ परिवारों में पहले से ही बनी लकड़ी की प्रतिमाओं को गणगौर आने पर रंग दिया जाता है। गणगौर मनाने के अंतर्गत ईसर और गणगौर की प्रतिमाओं का गहनों, कपड़ों से पूरा श्रृंगार भी किया जाता है।

त्यौंहार के अंतर्गत सभी स्त्रियों एवं कुमारियां हाथों में मेंहदी लगाती है। ऐसा माना जाता है कि इस उत्सव का आरंभ पार्वती यानी गौरी के गौने या अपने पिता के घर से पुन: लौटने और सखियों द्वारा किए गए उनके स्वागत गान को लेकर हुआ। गणगौर लोकोत्सव में विहान बेला में बागों में कुंआरी एवं नवविवाहित वधुएं फूल व हरी दूब चुनकर अपने कलशों में सजाकर यह गीत गाती हुई गुजरती है - 'खोल ए गणगौर माता, खोल ए किवाडी।' युवतियो स्त्रियों की टोलिया सोलह दिन तक गुलाल, कुंकुम और मेहदी से दीवार पर एक-एक स्वास्तिक और सोलह-सोलह बिंदिया लगार गणगोर की पूजा करती हैं। सोहल दिन बाद 'ईसर' और 'गौर' का किसी नदी, सरोवर, कुएं पर विसर्जन किया जाता है।

9.3.2 तीज

सावन-भादों की मनोरम ऋतु में मनाया जाने वाला तीज राजस्थान का सर्वाधिक लोकप्रिय त्योहार हैं। श्रावण के महिने में तीज के अवसर पर नवविवाहिताएं पेडों पर झुला डालकर झूलती हैं। साथ साथ ऋतु श्रृंगार के गीत भी गाती हैं। हाथों में मेंहदी रचाए, सतरंगे-

पंचरंगे लहरियों की ओढनी तथा आभूषण पहले महिलाएं उत्साह के साथ 'पार्वती' की प्रतीक तीज की पूजा करती है और अपने सुहाग के लिए मंगलकामनाएं करती हैं। तीज का मेला भी लगभग सभी स्थानों पर भरता हैं।

तीज, विवाह के पश्चात पीहर में मनाने की परम्परा है। यही कारण है कि नव विवाहित वधुएं इस त्यौंहार के लिए विशेष उत्सुक रहती हैं। श्रावण माह में और श्रृंगार गीत गाती युवतियों का उत्साह त्यौंहार में देखते ही बनता है। जयपुर, बीकानेर की तीज अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। तीज का जयपुर में लगने वाला मेला विदेशों तक में खासा लोकप्रिय हैं। लोकगीतों की मधुर स्वरलहरियां इस त्यौंहार पर यत्र-तत्र सर्वत्र सुनायी पडती हैं।

9.3.3 शीतला अष्टमी:

चैत्र की अष्टमी को होली के आठवे दिन शीतला अष्टमी का त्यौंहार पूरे राजस्थान में मनाया जाता है। इस दिन ठंडा किया जाता है। ठंडे का अर्थ है एक दिन पहले पकाया हुआ खाना ही शीतला माता को भोग लगाकर घरों में खाया जाता है। शीतला माता को मात रक्षिका देवी के रूप में भी पूजा जाता है। जयपुर जिले से करीब 35 किलोमीटर दूर चाकसू कस्बे के पास स्थित शील डूंगरी स्थित शीतला माता मंदिर में इस दिन बड़ा मेला भी भरता है।

लोक मान्यता है कि चेचक की महामारी शीतला माता के नाराज होने से ही फैलती है। यही कारण है कि माता को शांत करने के लिए लोग माता की पूजा-अर्चना कर उसे मनाते है। राजस्थान में लगभग सभी घरों में माता की पूजा की जाती है। वैसे तो शीतला माता की पूजा पूरे देश में ही होती है परन्तु अलग-अलग क्षेत्रों में इसका नाम अलग-अलग हैं। उत्तर प्रदेश में शीतला माता को माता या महामाई कहा जाता है तो पश्चिमी भारत में इन्हें माई या अनमा कहा जाता है।

9.3.4 अक्षय तृतीया:

राजस्थान में अक्षयतृतीया का विशेष महत्व है। इसे आखातीज भी कहा जाता है। अक्षय तृतीया का अर्थ है अबूझ सावा। विवाह के लिए इसे अत्यधिक शुभ समझा जाता है। यही कारण है कि इस दिन राजस्थान में विवाहोत्सवों का समां बंध जाता है। इस दिन बाजरा, गेंहू, चना, तील, जी आदि अन्नों की पूजा की जाती है और ईश्वर से अच्छी वर्षा की कामना की जाती है। आखातीज को हवा का रूख देखकर ही कहते हैं यह अनुमान लग जाता है कि जमाना अर्थात् फसलों के लिए वर्षा कैसी होगी। बीकानेर के लिए तो यह दिन वैसे भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस दिन बीकानेर का स्थापना दिवस होने के कारण आकाश पतंगों से भर उठता है। दूसरे स्थानों पर मकर सक्रांति को पंतगें उड़ायी जाती है जबकि बीकानेर निवासी इस दिन भंयकर गर्मी के बावजूद छतों पर पतंगे उड़ाते, पेच लड़ाते और शोर करते मिलते हैं। इस दिन गेंहू और बाजरे का खीच भी तैयार किया जाता है। इमली का शीतल पेय भी विशेष रूप से पीया जाता है।

9.4 धार्मिक मेले:

मेलों एवं त्योहारों के मूल में प्राय: धर्म होता है। धार्मिक आस्था की अभिव्यक्ति, लोक देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना, तीर्थ से पुण्य कमाने की भावना से मनाए जाने वाले धार्मिक मेलों में से कुछ प्रमुख इस प्रकार से हैं -

9.4.1 पुष्कर का मेला:

अजमेर के निकट एकमात्र ब्रहमा मंदिर वाले स्थान पुष्कर में वैसे तो आए दिन मेला ही लगा रहता है परन्तु कार्तिक पूर्णिमा को लगने वाले मेले में यहां तिल रखने को जगह नहीं मिलती। दूर-दराज से यहां लोग आते हैं और पवित्र सरोवर में स्नान कर ब्रहमाजी एवं अन्य देवी-देवताओं के दर्शन करते हैं। मेले के दौरान दूर-दराज से आने वाले साधु-संत, श्रद्धालु कई-कई दिनों तक यहां डेरा डाले रहते हैं। अजमेर जिला प्रशासन, पर्यटन तथा कला एवं संस्कृति विभाग द्वारा मेले के दौरान राजस्थान की संस्कृति से ओत-प्रोत सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते हैं।

पौराणिक कथाओ के अनुसार किसी जमाने में पुष्करपर विज्र नाभ नामक राक्षक का आंतक हुआ करता था। कहते हैं इस राक्षस ने ब्रहमा की संतानों की हत्या कर दी थी। इस बात का पता जब प्रजापति ब्रहमा को लगा तो उन्होंने प्रकट होकर कमल के फूल से राक्षस का संहार किया। कमल की पंखुड़ियां जिन तीन स्थानों पर गिरी वहां झीलें बन गयी। कहते हैं पुष्कर उन्हीं तीन झीलों में से एक हैं। यही कारण है कि इस झील को पवित्र झील कहा जाता है। राक्षस के संहार के बाद ब्रहमा ने इस स्थान पर यज्ञ करने का निर्णय किया जिसमें उन्होंने सभी देवी-देवताओं और ऋषि-मुनियों को आमंत्रित किया। यह यज्ञ कार्तिक माह में संपन्न हुआ। उसके बाद से ही कहते हैं इस स्थान का महत्व बढ़ गया। आज भी देश के कोने-कोने से हजारों की संख्या में श्रद्धालु बावन घाटों से घिरे पुष्कर के तालाब में स्नान कर पुण्य कमाते हैं।

कार्तिक माह में भरने वाला यहां का धार्मिक मेला इस मायने में अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि हिन्दु धर्म-ग्रथों में बताए गए पांच मुख्य तीर्थो में से एक में पुष्कर को भी सम्मलित किया गया है। हिन्दु धर्म में पुष्करझील में नहाने को अत्यन्त पुण्यकारी माना गया है। मेले के अवसर पर पुष्करधर्म नगरी बन जाता है। रंग-बिरंगे कपड़े पहने श्रद्धालु, गेरूएं वस्त्रों में भस्म लपेटे साधु-संत और यहां होने वाले विभिन्न सांस्कृतिक, धार्मिक कार्यक्रमों से पूरा वातवरण ही मानों महक उठता है। मेले की संध्या पुष्कर सरोवर में दीप-दान की भी परम्परा हैं। असंख्य दीपकों से सरोवर झील-मिला उठता है।

9.4.2 कैलादेवी का मेला:

सवाईमाधोपुर जिले से 18 किलोमीटर दूर स्थित कैलामाता के मंदिर में चैत्र-शुक्ला अष्टमी को मेला भरता है जो कई दिनों तक चलता है। लाखें लोग यहां दर्शनार्थ आते है, इसलिए इसे लक्खी मेला भी कहा जाता है। कैला को भवानी माना जाता है जिसकी प्रतिमा सन 1114 में एक मनोरम स्थान पर टीले के ऊपर स्थापित की गयी थी। जहां कैलादेवी का मेला

भरता है वहां पहले कभी कालिया नाम का गांव हुआ करता था। कहते है कालिया गांव में केदारगिरी साधु रहा करते थे।

कैलामाता के मंदिर में एक साथ दो मूर्तियां हैं। दाहिनी ओर कैला देवी की मूर्ति है, जिसे लोग लक्ष्मी के नाम से भी जानते हैं। बाई ओर चामुंडा की मूर्ति हैं। चैत्र कृष्ण पक्ष द्वादशी से शुक्ल पक्ष द्वादशी के बीच भरने वाले कैलामाता के मेले में दूरस्थ स्थानों से लोग धार्मिक आस्था के कारण आते हैं। राजपूत, मीणा आदि कैला माता के प्रमुख भक्त माने जाते हैं। कैला देवी के मेले के अवसर पर पशु मेले का भी आयोजन किया जाता है। पशु मेले के अंतर्गत श्रेष्ठ नस्ल के मवेशियों की प्रतियोगिताएं आयोजित कर उन्हें पुरस्कृत भी किया जाता है। देवी का मंदिर काली शील नदी के किनारे त्रिकुट पहाड़ी की तलहटी में केला गांव के उत्तर पश्चिम दिशा में स्थित है। यहां एक छोटा सा भैरों मंदिर और हनुमान मंदिर (लांगूरिया) भी स्थित हैं।

9.4.3 श्रीमहावीरजी का मेला:

सवाई माधोपुर जिले के हिण्डौन कस्बे में गंभीरी नदी के किनारे स्थित चंदनगांव में प्रतिवर्ष चैत्रशुक्ला त्रयोदशी से वैशाख कृष्ण प्रतिपदा तक श्री महावीरजी का मेला भरता है। यह मेला छठी सदी के श्री महावीर स्वामी की याद में मनाया जाता है। महावीर स्वामी जैनियों के चौबीसवें तीर्थकर माने जाते हैं। श्री महावीरजी दिगम्बर जैन संप्रदाय का प्रमुख तीर्थ स्थल है। प्राय: साल भर ही यहां तीर्थ यात्री आते रहते हैं परन्तु मेले में यहां अपार जन समूह एकत्र होता है। मेले में देश भर से लाखों श्रावक-श्राविकाएं, साधु-साध्वियां, श्रमण-श्रमणियां एवं अन्य जन एकत्र होते हैं। मेले में जैन मतावलम्बियों के अलावा भी अन्य समुदाय के लोग बड़ी संख्या में भाग लेते हैं।

श्री महावीरजी में किरपादास नाम का टिल्ला आज भी लोगों के आकर्षण का केन्द्र हैं। मेले के दौरान निकलने वाली वार्षिक रथयात्रा का रथ तब तक नहीं चलता जब तक कि उसे किरपादास के वंश का कोई पुरूष धक्का नहीं देता। जनश्रुति के अनुसार किरपादास नामक एक मोची मिट्टी के एक टिल्ले पर अपने पशु चराया करता था। एक बार उसकी एक गाय ने कई दिनों तक दूध नहीं दिया। इसका कारण जानने के लिए एक दिन किरपादास ने गाय का पीछा किया। उसके आश्चर्य का ठीकाना नहीं रहा, जब उसने देखा कि टिले पर गाय अपना दूध गिरा रही है। अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए टिल्ले की जब उसने खुदाई कि तो उसे वहां गहरे भूरे रंग की एक प्रतिमा मिली। कहते हैं इस प्रतिमा को उसने एक झोंपडी में रख दिया। कहते हैं बहुत बाद में जैन अमरचंद विलाल ने इस प्रतिमा की पहचान महावीर स्वामी के रूप में की। उन्होंने जैन प्रतिमा स्थापित करने के लिए मंदिर बनाने के लिए बडी रकम भी दान में दी। इस बारे में जनश्रुति यह भी है कि जयपुर के जैन इस प्रल्ली के अपने शहर में स्थापित करना चाहते थे, सो उन्होंने प्रतिमा को रथ में रखा परन्तु रथ बहुत प्रयासों के बाद भी नहीं चला।

सन् व 1782 में जयपुर के महाराजा ने मूर्ति के लिए मंदिर बनाने हेतु जमीन दान में दी। अठारहवीं सदी के अंतिम वर्षों में चैत्र माह में मंदिर में यह मूर्ति स्थापित की गयी। मंदिर के सामने संगमरमर का बना हुआ मानस्तम्भ (गौरव का खंभा) खड़ा है।आधुनिक मंदिर उसी

स्थान पर बना है जहां पुराना मंदिर था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि वार्षिक रथ यात्रा के दौरान रथ तब तक नहीं चलता है जब तक कि किरपादास के वंश का कोई व्यक्ति उसे धक्का नहीं देता।

श्री महावीरजी के मेले की यह भी खास बात है कि यहां हर जाति और संप्रदाय के लोग भाग लेते है। जैनों के अलावा बडी संख्या में मीणा और गुर्जर भी भाग लेते हैं।

9.4.4 ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती का उर्स:

इस्लामिक कलैण्डर के माह रजब की पहली तारीख से छठी तारीख तक अजमेर में ख्याजा गरीब नवाज का उर्स हर वर्ष मनाया जाता है। इस अवसर पर देश विदेश से आये लाखों जायरीन यहां नमाज अदा करते है। यह मुस्लिम समाज का भारत का सबसे बड़ा मेला है जहां साम्प्रदायिक सद्भाव की भी अनूठी मिशाल देखने को ये मिलती है।

उर्स ' दरअसल फारसी शब्द उरूसी का अपभशं है। इसका अर्थ है लम्बी जुदाई के बाद मिलन होने पर होने वाली खुशी, जिसे काफी तपस्या के बाद हासिल किया जाता है। सूफी समुदाय में यह सर्वाधिक खुशी का दिन है। सूफियों के खानकहों (मठों) पर हर वर्ष यह उर्स मनाया जाता है। इस दिन हजरत खाजा मोइनुद्दीन चिश्ती ने निन्यानवे वर्ष की आयु में महसूस किया कि अब महबूबे हकीकी से मिलने का समय आ गया है। उर्स चांद दिखायी देने पर दरगाह के बुलंद दरवाजे पर झंडा फहराने के साथ शुरू हो जाता है। रजब की 6 तारीख को जायरीनों पर गुलाब जल के छींटे मारे जाते है इसे कुल की रस्म भी कहा जाता है। तीन दिन बाद रज्जब की 9 तारीख को बडे कुल की रस्म अदा की जाती है। कहते है ख्वाजा साहब ईरान से भारत आए अएप्ते अजमेर में ठहरे थे। यही उनकी मजार पर लाखों लोग दुनिया भर से दूर-दूर से मनौती मांगने आते है।

9.4.5 कपिल मुनि का मेला:

बीकानेर से 50 किलोमीटर की दूरी पर कोलायत नामक स्थान, सांख्य दर्शन के प्रणेता महर्षि कपिल की तपोभूमि से विख्यात है। कपिल की तपोभूमि कोलायत पर प्रतिवर्षकार्तिक पुर्णिमा को मेला भरता है। इस दिन यहां के पावन सरोवर में स्नान का विशेष महात्मय है। दूर-दराज से लाखों श्रद्धालु कोलायत आते है तथा कपिल सरोवर में स्नान कर पुण्य कमाते हैं। कहते हैं कि ब्रह्मा के पौत्र और कर्दम ऋषि के पुत्र कपिल अपनी माता के स्नान के लिए गंगा यहीं लेकर आए थे। जिस स्थान पर उन्होंने गंगा का अवतरण कराया, वही स्थान बाद में कपिल-सरोवर के रूप में विख्यात हो गया। ऐसा माना जाता है कि कोलायत के सरोवर में स्नान गंगा स्नान, के समनि ही माना जाता है।

कोलायत सरोवर में कुल 52 घाट है। चारों और से बरगद के पेड़ों से घिरे हुए कोलायत सरोवर के हर घाट पर मन्दिर है। इन घाटों के नाम भी मन्दिर के नाम के आधार पर रखे गए है। कार्तिक पुर्णिमा को कोलायत में भरने वाले मेले में देश भर से श्रद्धालु एकत्र होते हैं। साधु-संतो के इस मेले में सांझ के समय सरोवर में दीपदान की भी परम्परा है।

पुर्नजन्म, प्रण लेने और तोड़ने, ऋषियों और मुनियों के च्युत होने और उनकी रक्षा से संबंधित कई जनश्रुतियां प्रचलित है। सदियों से कपिल मुनि के प्रभाव से यहां अनेक चमत्कार हुए है-ऐसा लोग मानते है। यही विश्वास अभी भी मेले को चलाए रखता है।

9.4.6 जंभेश्वर जी का मेला

बीकानेर के नोखा कस्बें के पास मुकाम नामक स्थान, पर फागुन माह में व आसोज माह में गुरू जंभेश्वरजी का विशाल मेला भरता है। विश्नोई समाज के लोग इस मेले में उनके गुरू जंभेश्वर जी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने मुकाम में लाखों की संख्या में दूर-दराज से एकत्र होते है। जांभोजी के मेले से प्रसिद्ध इस मेले में पेड़ों से प्यार करने वाले विश्नोई समाज की सांस्कृतिक एकता का भी संगम होता है।

यह मेला सन 1591 में प्रारंभ हुआ था। मुकाम और अन्य गांवों में करीब दो सौ परिवार अपने को उनका वंशज मानते है। विश्नोई जांभोजी की पूजा विष्णु के अवतार के रूप में करते है। जांभो जी ने एक तालाब खुदवाया था और इसके किनारे एक गांव बसा दिया था जिसका नाम जांभा रख दिया। तालाब के किनारे उन्होंने अपनी कब्र खुदवाई और अपने शिष्यों को मृत्यु के बाद वहीं दफनाने की आज्ञा दी जिसे उनके शिष्यों ने पूरा भी किया। मुकाम का एक अन्य नाम तलवा गांव भी है। इस मंदिर में मुसलमान भी श्रद्धा सुमन अर्पित करते है। इस मंदिर की आधारशिला सन 1536 में रखी गयी थी और सात वर्ष बाद समर-थल नामक उसी बालुका राशि पर यह मंदिर पूरा किया गया, जहां उनकी मृत्यु हुई थी। ऐसा कहा जाता है कि जंभेश्वर जी विकमादित्य की वंश परम्परा में 32 वीं सीढी पर थे व संत के मृत्यु स्थल के नीचे विकमादित्य का शहर तथा उसका स्वर्णिम राजसिंहासन दबा पड़ा है। जंभोजी ने विश्नोईयों को धर्म के उनतीस स्तंभ प्रदान किए।

9.4.7 बाणगंगा का मेला:

बाणगंगा मेला जयपुर जिले के एक ऐतिहासिक शहर बैराठ से 11 किलोमीटर दूर पहाड़ी नदी के किनारे आयोजित होता है। यह मेला अप्रैल मई महीने में बैशाख पूर्णिमा के दिन आयोजित होता है जिसमें भाग लेने लाखों की संख्या में लोग आते हैं। माना जाता है कि यह नदी उस जगह से निकली है जहां अर्जुन ने अपने तीर से निशाना साधा था। पांडवों ने अपने वनवास का तेरहवां साल यहां बिताया था।

ऐसा माना जाता है कि आज से दौ सौ वर्ष पूर्व यहां राधाकृष्ण मंदिर का निर्माण हुआ। उसके पश्चात ही यहां मेले की शुरूआत हुई। इस मंदिर में तीर्थयात्री अपना भोजन खुद लाते है। इस मंदिर के अलावा यहां नंद कुंड नामक पवित्र सरोवर, हनुमान मंदिर बना है। राधाकृष्ण मंदिर में दाहिने और के बरामदे पर कई प्रकार के लिंग बने है। जिनमें एक ही परनाले से जल प्रवाहित होता है। एक लिंग पर पांच मुख खुदे हुए है। यह एकादश रूद्र का पंचमुखी महादेव कहलाता है।

9.4.8 गणेश मेला:

सवाई माधोपुर जिले में रणथम्भौर के ऐतिहासिक किले का गणेश मंदिर अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इस मंदिर में प्रतिवर्षगणेश चौथ पर भगवान गणेश का मेला भरता है। मेले में दूर-दराज से श्रद्धालु अपनी आस्था को व्यक्त करने रणथम्भौर ऐतिहासिक दुर्ग स्थित गणेश मंदिर के पास एकत्र होते है।

रिद्धि-सिद्धि और भंडार भरने वाले यहां के गणेशजी अत्यधिक चमत्कारी माने जाते हैं। आस-पास के गांवो के लोगों के लोकदेवता भी गणेश मंदिर के गणेशजी ही हैं। मेले के अलावा भी यहां वर्षपर्यन्त लोगों का मेला लगा रहता है। गणेश मंदिर का इस रूप में भी महत्व हैं कि यहां दूर-दराज से लोग अपने यहां होने वाले विवाह उत्सव का निमंत्रण व्यक्तिगत रूप में देने आते हैं। विवाह निमंत्रण की कुम-कुम पत्रिका मंदिर के पुजारी को दी जाती है तो पुजारी गणेशजी की प्रतिमा के समक्ष विवाह की मनुहार पढ़कर सुनाता है। मनुहार में गणेश जी से कहा जाता है कि वे विवाह में पधारें और भंडारों को अक्षय रखें।

9.5 लोक देवी-देवताओ के मेले:

लोक आस्था से जुड़े धार्मिक स्थलों पर लगभग वर्षुपर्यन्त ही मेलों की झड़ी लगी रहती है। लोक विश्वास के चलते इन मेला स्थलों पर प्रदेश से ही नहीं बल्कि बाहर से भी लोग अपनी श्रद्धावंश आतें हैं। राजस्थान के कुछ प्रमुख लोक देवी देवताओं से जुड़े धार्मिक आस्था के केन्द्रों पर लगने वाले मेले इस प्रकार से हैं -

9.5.1 बाबा रामदेवजी का मेला:

जैसलमेर जिले के पोकरण कस्बे की उत्तर दिशा में 12 किलोमीटर दूरी पर स्थित रामदेवरा गांव है जो बाबा रामदेव के पश्चात इस नाम से जाना जाता है। यहां बाबा रामदेव की समाधि है। यहां भादवा सुदी दूज से भादवा सुदी ग्यारस तक बडा मेला भरता है। वर्ष1931 में बीकानेर महाराजा गंगासिंह ने समाधि के चारों और एक मंदिर बनवाया।

बाबा रामदेव तवंर जाति के राजपूत सन्त थे जिन्होनें वर्ष 1458 में समाधि ली थी। इनके बारे में यह कथा प्रचलित है कि मक्का से आए पांच पीरों (सन्तों) ने उनकी चमत्कारिक शक्ति की परीक्षा ली और आश्वस्त होने पर वे उनके समक्ष श्रृदानवत हो गये। तभी से मुस्लिम इन्हें रामशाह पीर व हिन्दू इन्हें भगवान कृष्ण के अवतार मानते है। भाद्रपदा में बाबा रामदेवजी का मेला भरता है। लोक देवता रामदेवजी के मेले में दूर-दराज से लोग पैदल चलकर मनौती मांगने आते हैं।रामदेवरा के समीप एक तालाब है। ऐसा माना जाता है कि इसे स्वयं बाबा रामदेव ने बनाया था। सांस्कृतिक एकता के प्रतीक इस मेले के दौरान मवेशियों का मेला भी आयोजित किया जाता है। जिसमें विभिन्न नस्लों के मवेशियों का क्रय-विक्रय भी किया जाता है।

9.5.2 डिग्गी मेला:

जयपुर से 75 किलोमीटर की दूरी पर टोंक जिले की मालपुरा तहसील में स्थित डिग्गी राजस्थान का लोकप्रिय तीर्थ स्थल है। श्री कल्याणजी अर्थात भगवान विष्णु का यहां सावन की अमावस्या को विशाल मेला भरता है। इस मेले में राजस्थान के अलावा बिहार, बंगाल, आसाम से भी यात्री अपनी मनौतियों की पूर्ति के लिए पहुंचते हैं।

9.5.3 भर्तृहरी का मेला:

अलवर के सरिस्का अभ्यारण्य के अंदर भर्तहरी का मेला भरता है। वर्षा ऋतु के भाद्रपद माह में लगने वाले यहां के मेले में बाबा भर्तृहरी की जयकार से वातवरण गूंजायमान हो उठता है। देश के कोने-कोने से साधु संत ओर बाबा लोग यहां आ धूणा रमाते हैं। मेले के दिनों में ऐसा लगता है जैसे यहां लघु कुंभ लग रहा हो।

9.5.4 जीणमाता का मेला:

सीकर जिले के रेवासा ग्राम में दक्षिण की तरफ गिरिमाला की उपत्यका में स्थित जीणमाता मंदिर में चैत्र मास ओर आश्विनी के माह में नवरात्रों के समय विशेष मेला भरता है। जीणमाता के मंदिर का निर्माण संवत् 1121 में होने का उल्लेख मिलता हैं। जीणमाता का मंदिर केवल पूर्व दिशा में खुला हुआ है, शेष तीनों दिशाओं में यह पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा हुआ है। मंदिर के पाषाणजनित मार्ग के समाप्त हो जाने पर चार-पांच बीघे का विशाल अरण्य प्रारंभ हो जाता है। ऐसा कहा जाता है कि देश-निकाले के समय पांडवों ने इस क्षेत्र में कुछ समय गुजारा था। इसकी पुष्टि यहां उपलब्ध पांच पाडवों की आदमकद प्रसार प्रतिमाओं से होती है।

जीणमाता मंदिर में अवस्थित माता की प्रतिमा अष्टभुजी है और उसके समक्ष घी और तेल के दीपक अखंड रूप से कई वर्षों से प्रज्वलित होते आए। उपलब्ध इतिहास के स्त्रोतों से यह पता चलता है कि इन दीपक ज्योतियों की व्यवस्था दिल्ली के चौहान राजाओं ने समारम्भ की थी। माता के संबंध में एक लोकाख्यान प्रसिद्ध हैं। कहते है यहां हर्ष और जीण नामक भाई-बहिन ने कठोर तपस्या की थी। हर्ष और जीण के माता-पिता का बचपन में ही स्वर्गवास हो गया था। भाभी के तानो से दुखी होकर जीण ने गृह त्याग दिया। जीण को मनाने के लिए भाई हर्ष उसके पास गया परन्तु जीण किसी भी तरह नहीं मानी तो वह भी उसी के साथ इस स्थान पर देवी को प्राप्त करने के लिए कठोर तपस्या करने लगा। अंत में देवी साक्षात् प्रकट हुई, कहते हैं वही देवी आज तक यहां विद्यमान हैं। देवी मंदिर में राजस्थान के सुदूर लोक अंचलों के अलावा बंगाल, बिहार, आसाम और गुजरात राज्यों से भी प्रतिवर्षहजारों तीर्थ यात्री यहां आते हैं।

9.5.5 करणी माता मेला:

बीकानेर से 30 किलोमीटर की दूरी पर देशनोक नामक स्थान की करणीमाता का मंदिर चूहों की देवी से भी विख्यात है। यहां साल में दो बार करणी माता का मेला लगता है। पहला बड़ा मेला नवरात्रों के दौरान चैत्र शुक्ला एकम से चैत्र शुक्ला दशमी को लगता है। दूसरा मेला

अश्विनी शुक्ला एकम से अश्विनी शुक्ला दशमी तक लगता है। मेले में देश-विदेश से लाखों की संख्या में भक्त जन देशनोक आते हैं और मनौति पूरी होने की कामना देवी से करते है। इस मंदिर में असंख्य चूहे भी समय विचरण करते देख सकते हैं। श्रृदालु इन्हें पवित्र मानकर भोग लगाते है। यह मंदिर संगमरमर पत्थर का बना है।

कहा जाता है कि देशनोंक की नींव भी माता द्वारा डाली गई। चारण व बीकानेर के शासक उनके सिद्धान्तों की पालना करते है। यह मंदिर लोगों के लिए प्रात: 4 बजे खुल जाता है। करणी माता के बारे में प्रचलित कथा के अनुसार उनका जन्म 1387 में अपनी माता के गर्भ से 21 वें महीने में हुआ था। करनी बाई जन्म से ही चमत्कार करने लगी थी व अपनी देवी शक्तियों से लोगों की मदद किया करती थी। किदवंती अनुसार एक अंधा बढई से उन्होनें अपनी काष्ठ की मूर्ति बनवायी थी व चमत्कार पूर्वक उस बढई की आंखे ठीक हो गयी व वह स्वयं देशनोक पहुंच गया। यहां मंदिर में अगर कोई व्यक्ति चूहे को कुचलकर मार डालता है तो उसे प्रायश्चित के रूप में चांदी का चूहा मंदिर में भेंट करना पड़ता है।

9.5.6 राणी सती का मेला:

शेखावाटी क्षेत्र के झुंझुनू में राणी सती का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहां भादवा मास में मेला भरता है।जिसमें लाखों लोग राणी सती के मंदिर में दशनार्थ आते है। मार्च 1988 में भारत सरकार द्वारा सती (निवारण) अधिनियम पारित कर देने के पश्चात इस मेले पर भी रोक लगा दी गई है।

9.5.7 खाटू श्याम जी का मेला:

सीकर जिले में स्थित खाटू श्याम जी मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। वैसे तो यहां वर्ष भर उपासकों की आवाजाही रहती है लेकिन प्रमुख रूप से वार्षिक मेले जो कि फाल्गुन सुदी दशमी से द्वादशी तक लगता है, उसमें धर्मावलम्बियों का आगमन होता है। यहां बडी संख्या में बच्चों के मुंडन संस्कार भी किये जाते है। पौराणिक कथाओं के अनुसार महाभारत के युद्ध दिखाने के लिए भगवान कृष्ण ने बारब्रीक का मस्तिष्क नीची पहाड़ी पर रख दिया। भगवान कृष्ण बारब्रीक से बहुत प्रसन्न हुए व उसे वरदान दिया कि तुम कलियुग में श्याम के नाम से पूजे जाओगे।

9.5.8 गोगा जी का मेला:

गोगाजी का मेला लोकिप्रय वीर गोगाजी की स्मृति में मनाया जाता है जो कि हिन्दुओं के बीच गोगा वीर तथा मुस्लिमों के बीच जाहर पीर के नाम से जाने जाते है। यह देवता साँप के देवता के रूप में विख्यात है। गोगाजी ने जिस स्थान पर समाधि ली थी वह स्थान अब गोगामेड़ी के नाम से विख्यात है। गोगा जी के भक्त देश के सभी स्थानों पर पाये जाते है। यहां भाद्रपद माह में होने वाले मेले के दौरान हजारों की संख्या में हिन्दू व मुस्लिम धर्मावलम्बी एकत्रित होकर श्रद्धानवत होते है। यह मेला तीन दिन तक चलता है। बाड़मेर जिले में यह उत्सव सर्प पूजा एवं आराधना के रूप में मनाया जाता है। भाद्रपद की कृष्ण नवमी के दिन ग्रामीण दूध एकत्रित कर उसकी स्वादिष्ट खीर बनाते है तथा गोगाजी की प्रतिमा पर भोग लगाते है।

गोगाजी के बारे में यह अवधारणा है कि इनकी पूजा करने से सभी प्रकार के विर्ष दंश से मुक्ता रहा जा सकता है।

9.6 आदिवासी जन-जातियों के मेले:

दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में लगने वाले मेले तथा त्योहारों की अपनी विशिष्ट विशेषताएं हैं। संपूर्ण दक्षिणी राजस्थान में डूंगरपुर जिले में सर्वाधिक 21 मेले भरते हैं। इसमें सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय बांसपुर तहसील में बासवाड़ा जिले से मिलती हुई सीमा पर माही तथा साम नदियों के संगम पर भरने वाला बेणेश्वर का मेला है। बेणेश्वर मेले को आदिवासियों का कुंभ कहा जाता है।

बेणेश्वर आदिवासियों का प्रमुख तीर्थ स्थल है। माघ माह पूर्णिमा पर छः दिन तक यहां मेला भरता है जिसमें लाखों आदिवासी परम्परागत उत्साह व उमंग से भाग लेते है। मेले में डुंगरपुर, बांसवाडा, उदयपुर, चित्तौड़ के अलावा मध्यप्रदेश के झाबुआ व रतलाम तथा गुजरात के पंचमहल तथा दामोह जिले के आदिवासी भी विशेष रूप से भाग लेते हैं। पूर्णिमा के दिन संगम पर स्नान, अपने पूर्वजों की अस्थियां विसर्जन करने तथा बेणेश्वर महादेव की पूजा करना आदिवासियों की प्रमुख धार्मिक कियाएं यहां संपन्न होती हैं। कहा जाता है कि बेणेश्वर महादेव का लिंग स्वयं प्रकट हुआ था। एक गाय इस लिंग पर रोज आकर अपने थन से दूध गिराती थी। एक दिन गाय पालक ने गाय का पीछा किया। भागने के प्रयत्न में गाय के खुर से लिंग का धक्का लगा और वह पांच हिस्सों में टूट गया। टूटे हुए लिंग की ही आज भी पूजा की जाती है। बेणेश्वर के वर्तमान मंदिर का निर्माण महरवाल अस्करण द्वारा सन् 1453 में करवाया गया था। इसके पास की विष्णु का मंदिर है जो सन् 1793 में जानकुंवरी द्वारा बनवाया गया, बताते हैं।

बेणेश्वर के अलावा बांसवाडा में घोटिया आम्बा तथा संगमेश्वर, उदयपुर में केसरियाजी प्रतापगढ का गौतमेश्वर मेला भी खासा लोकप्रिय हैं। होली के बाद चैत्र पुर्णिमा को आदिवासी क्षेत्रों में भरने वाला साड़ियो का मेला भी अपनी विशिष्ट परम्पराओं से अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इस मेले में युवक-युवतियों की विशेष रूप से भागीदारी होती है। वे मेले में विशेष नेजा नृत्य करते हैं। आदिवासी गांव के बाहर किसी देव स्थल पर लगने वाले साड़ियों के मेले में ऐसा माना जाता है कि देव स्थल के पुजारी या भोपे के शरीर में देवता प्रवेश करते हैं। भोपा मोर पंखों से उन लड़के-लड़कियों अथवा पुरूष स्त्रियों की पीठ पर थपकियां देता है जो नेजा नृत्य करते हैं। लाल कपड़े में नारियल तथा एक रूपये को बांधकर उसे पास के किसी वृक्ष की डाल पर बांध दिया जाता है। नेजा बांधने के बाद स्त्रियां अपने हाथों से शस्त्र के प्रतीक रूप में लकड़ियां लेकर नेजा बांधे वृक्ष की रक्षक बनकर खड़ी हो जाती है। पुरूषों के झुंड आगे बढ़कर नेजा तक पहुंचकर उसे उतारने का प्रयास करते हैं तो लड़कियां लकड़ी से पीट कर उन्हें भगा देती हैं। अंत में कोई युवक नेजा तक पहुंचकर उसे उतार लाता है। दर्शको में वही नायक बन जाता है। आदिवासी मनोरंजन के इस मेले के प्रति लोगों में विशेष उत्साह होता है।

आदिवासी मेलों के अंतर्गत डूंगरपुर जिले में नीला पानी, भेड़माता, खांडिया महादेव, हड़मतिया हनुमान, दाउदी बोरा उर्स, भैरवजी आदि के भी प्रसिद्ध मेले भरते हैं। इन मेलों में

आदिवासी भील, गिरासिया, मीणा, डामोर आदि जन-जातियां का संगम होता है। मेलों में रंग-बिरंगे कपड़ो में सजे आदिवासी विभिन्न लोक नृत्य जब करते है तो उनकी संस्कृति मानों साकार हो उठती है।

9.7 पर्यटन विभाग के मेले-त्यौहार एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम:

राजस्थान की जीवन्त सांस्कृतिक विरासत के प्रतीक यहां के मेले-त्यौहारों का आयोजन प्रदेश की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा का हिस्सा है। पर्यटन विभाग द्वारा भी पिछले कुछ वर्षों से राज्य के विभिन्न पर्यटन स्थलों पर मेले-त्यौहारों का आयोजन कर देशी-विदेशी पर्यटकों को यहां आने के लिए आमंत्रित करता है। पर्यटन विभाग द्वारा आयोजित किए जाने वाले विभिन्न मेले-त्योहारों में से कई तो विश्व प्रसिद्ध हैं। देशी-विदेशी पर्यटकों का इन मेलों में उत्साह देखते ही बनता है। कुछ प्रमुख मेले इस प्रकार से हैं -

- ऊँट उत्सव, बीकानेर
- ब्रज महोत्सव, भरपुर
- नागौर पशु मेला, नागौर
- अलवर उत्सव, अलवर
- मरू मेला, जैसलमेर
- हाथी उत्सव, जयपुर
- ग्रीष्म समारोह, माउन्ट आबू
- शरद समारोह, माउन्ट आबू
- जोधपुर स्थापना समारोह, जोधपुर
- तीज मेला, जयपुर
- मेवाड़ समारोह, उदयपुर
- विजयदशमी उत्सव, जयपुर
- मीरा महोत्सव, चित्तौड़गढ
- दशहरा उत्सव, कोटा
- चन्द्रभागा मेला, झालावाड़
- बूंदी उत्सव, बूंदी
- समर फेस्टीवल, जयपुर
- जन्माष्टमी उत्सव, डीग
- हाड़ौती एडवेन्चर एवं स्पोर्ट्स
- बैलून उत्सव, बाड़मेर

9.8 सारांश:

लोक जीवन को आल्हादित, हर्षित करने वाले मेले एवं त्यौहार ही होते हैं। राजस्थान के मेले एवं त्यौहार विश्व प्रसिद्ध हैं। वैसे भी मेले एवं त्योंहार किसी प्रदेश की संस्कृति की पहचान

होते हैं। राजस्थान का प्रत्येक त्यौहार, मेला, लोक जीवन की किंवदन्ती अथवा किसी ऐतिहासिक कथानक से जुड़ा है। लोकोत्सव, मेले, त्यौहारों के अपने गीत, अपने नृत्य भी है। वर्षों से आयोजित हो रहे मेले, त्योहारों ने आज भी समाज को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बांध रखा है।

तीज, गणगौर. शीतला अष्टमी, अक्षय तृतीया आदि राजस्थान के महत्वपूर्ण लोकोत्सव हैं तो धार्मिक रूप में पुष्कर, कैला देवी, कपिलमुनि बाणगंगा, जंभेश्वर, महावीर जी, गणेशजी आदि के मेलों में प्रदेश की संस्कृति मानों शाकार हो उठती है। लोक आस्था के पावन तीर्थ यहां के लोक देवी देवताओ के मंदिरों पर लगने वाले मेलों में जीणमाता, करणीमाता, राणी सती, बाबा रामदेवजी, गोगाजी, खाटू-श्यामजी, डिग्गी, भर्तृहरी आदि के मेलों में जन समुदाय अत्यधिक उमंग, उल्ला से भाग लेते हैं। आदिवासी क्षेत्रों में लगने वाले मेलों के अंतर्गत बेणेश्वर का मेला लघु कुंभ ही होता है। इधर के वर्षों में पर्यटन विभाग द्वारा भी मेलों एवं सांस्कृतिक आयोजनों की परम्परा प्रारंभ की गयी है। इन मेलों का विशेष प्रचार भी मीडिया में होता है तो विदेशों से पर्यटक विशेष रूप से इनमें भाग लेने आते हैं। वर्षों से चली आ रही मेले-त्यौहारों की राजस्थान की समृद्ध परम्परा आज भी यहां की जीवन्त संस्कृति की प्रतीक हैं। आपने इस इकाई में राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में लगने वाले मेले-त्यौहारों के बारे में जानकारी प्राप्त की है, इससे आप पर्यटन की दृष्टि से भी इनके महत्व को समझ सकेंगे।

बोध प्रश्न:

1. राजस्थान के विभिन्न लोकोत्सवों की पर प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

2. राजस्थान के धार्मिक मेलों का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।

   .....

   .....

3. राजस्थान में लगने वाले विभिन्न लोक देवी-देवताओं के मेलों का में संक्षेप में कीजिये।

   .....

   .....

4. आदिवासी किस प्रकार अपने मेलों के द्वारा अपने संस्कृति से जुड़े हुए है। स्पष्ट करें। संक्षेप में उनके मेलों का भी वर्णन करें।

   .....

   .....

5. पर्यटन विभाग द्वारा आयोजित किए जाने वाले मेलों, की जानकारी दीजिए।

   .....

   .....

इकाई- 1o:राजस्थान की हस्तकलाएं

रूपरेखा :

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 हस्तकलाओ का इतिहास

10.3 राजस्थान के रत्नाभूषण

10.4 राजस्थान की हस्तकलाएं

- 10.4.1 लकड़ी, हाथीदांत एवं चन्दन का कार्य
- 10.4.2 कुट्टी का काम
- 10.4.3 ब्लू पॉटरी
- 10.4.4 पीतल की नक्काशी
- 10.4.5 बुनाई एवं रंगाई-छपाई हस्तकलाएं
- 10.4.6 टेराकोटा
- 10.4.7 उस्ताकला
- 10.4.8 लाख का काम
- 10.4.9 मीनाकारी
- 10.4.10 संगमरमर की मूर्तियां

10.5 हस्तकलाओं को प्रोत्साहन

10.6 सारांश

10.0 उद्देश्य:

इस इकाई को पढने के बाद आप -

- हस्तकलाओं के इतिहास के बारे में जान सकेंगे।
- राजस्थान की विभिन्न हस्तकलाओं से अवगत हो सकेंगे।
- हस्तकला उत्पादों के आयोजित होने वाले मेलों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हस्तकलाओं के पर्यटन विकास में योगदान को रेखांकित कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना:

पर्यटक किसी स्थान पर भ्रमण के लिए जाते हैं तो वहां की दृश्यावलियों को ही निहारने का उद्देश्य लिए नहीं होते बल्कि वे भ्रमण स्थल से संबद्ध प्रसिद्ध वस्तुओं को भी क्रय करना चाहते हैं। प्राकृतिक दृश्यावलियों के साथ ही स्थान विशेष के लोगों का जीवन, उनका व्यवहार, वहां निर्मित विभिन्न उत्पादों के प्रति उत्सुकता पर्यटन के प्रति आकर्षण का कारण होती है। राजस्थान में जब कोई पर्यटक आता है तो वह यहां के गौरवमयी इतिहास, समृद्ध कला संस्कृति, किले, गढ, दुर्ग, महल आदि के साथ ही यहां के जन-जीवन को भी नजदीक से महसूस करना चाहता है। पर्यटक चाहते हैं कि वे यहां जब रूके तो यहां के लोगों द्वारा निर्मित की जाने वाली

वस्तुओं को भी अनमोल यादगार के रूप में सहेजकर अपने यहां ले जाएं। इस दृष्टि से स्थानीय लोगों द्वारा निर्मित किए जाने वाले हस्तकला उत्पादों का पर्यटन में विशेष महत्व होता है। राजस्थान के हस्तकला और रत्नाभूषणो की पहचान विदेशों तक में हैं। पर्यटक जब राजस्थान आते हैं तो यहां के विभिन्न एम्पोरियमों बाजार की दुकानों में सजे हस्तकला उत्पाद सहज ही उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते है। स्थानीय लोगों द्वारा उपयोग में लिए गए इस प्रकार के उत्पादों के प्रति भी पर्यटकों का आकर्षण विशेष रूप से होता है। वैसे भी राजस्थान को हस्तकला की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध प्रदेश कहा जाता है। हाथों से निर्मित होने वाले यहां के उत्पादों का विदेशों में विशेष रूप से निर्यात भी होता है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि राजस्थान के हस्तकला उत्पादों का बाजार भारत ही नहीं है बल्कि विदेशों तक में है। राजस्थान की कौन-कौन सी हस्तकलाएं हैं, हस्तकलाओं का क्या कुछ रहा है इतिहास, हस्तकलाओं के विपणन में हस्तकलाओं के मेले कहा तक होते हैं कारगर? आईए, जानें -

10.2 हस्तकलाओं का इतिहास:

हस्तकलाओं का इतिहास मानव सभ्यता के विकास से जुड़ा है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मानव ने अपने उपयोग के लिए विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करना प्रारंभ कर दिया था। हाथों की कला से निर्मित ऐसी वस्तुओं में कलात्मकता देखते ही बनती थी। प्राचीनकाल से ही राजस्थानी हस्तशिल्प के उत्कृष्ट नमूने प्रदेश के लोगों की कलात्मक अभिरूचि को प्रदर्शित करते रहे हैं। राजस्थान की हस्तकलाओं का इतिहास तभी से जाना जा सकता है जब से मनुष्य ने पत्थरों के औजार बनाने प्रारंभ किए। राजस्थान की विभिन्न सभ्यताओं की खुदाई से प्राप्त अवशेषों में हस्तकला उत्पाद प्राय: सभी स्थानों पर मिले हैं। कालीबंगा की खुदाई से सिन्धु घाटी सभ्यता के जो अवशेष प्रदेश में मिले हैं, उनसे पता चलता है कि कभी राजस्थान हस्तकला उद्योगों का प्रमुख केन्द्र रहा है। कालीबंगा के उत्खनन कार्य से मिली वस्तुओ में मिट्टी के कलात्मक बर्तन, मूर्तियां, पत्थर के औजार आदि विशेष रूप से प्राप्त हुए हैं। इनसे सहज ही इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि राजस्थान हस्तकलाओ के लिहाज से आरंभ से ही खासा समृद्ध रहा है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में डूंगरपुर से प्राप्त कांस्य प्रतिमाओं, नोह की यक्ष मूर्तियां, कुषाण काल के वस्त्रों आदि को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि राजस्थान मूर्तिकला, मिट्टी के बर्तनों, हस्तनिर्मित कपड़ों की दृष्टि से आरंभ से ही खासा समृद्ध रहा है। राजस्थान की समृद्ध हस्त कलाओं के इतिहास को यहां के संग्रहालयों से भी जाना जा सकता है। राज्य के संग्रहालयो में संग्रहित अनेकानेक मूर्तियां, मिट्टी के बर्तन, वस्त्रों, आभूषणों, अनेक कलात्मक वस्तुओं का संग्रहण यहां की हस्तकलाओं का जीवन्त इतिहास है। तृतीय शताब्दी के रंगमहल के उत्खनन से प्राप्त शिव-पार्वती की मूर्तियों में पार्वती को गोल शीशा हाथ में लिए तथा राजस्थानी लहंगा पहने दिखाया गया है तो जोधपुर संग्रहालय में रखी छठी शताब्दी पूर्व की विष्णु की मूर्ति में मगरमच्छ के सिर मध्य की परन्तु विपरीत दिशा में हीरों का हार मकर से निकलता दिखाया गया है। यही नहीं विभिन्न अन्य मूर्तियों में श्रृंगार की अनेक वस्तुएं दिखायी

देती है तो लकड़ी से निर्मित वस्तुओं का भी अनुपम भंडार इस बात का गवाह है कि राजस्थान में प्राचीनकाल से ही हस्तकलाओं का प्रचलन था।

यद्यपि राजस्थान की हस्तकलाओं ने प्राचीनकाल में ही सुदूर स्थानों तक अपनी पहचान बना ली थी परन्तु बारहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक के समय में राजपूत राजाओं की आपसी कलह ओर मुगलों से टक्कर लेने में व्यस्त रहने के कारण उस दौरान हस्तकलाओं का अधिक विकास नहीं हो सका था। हस्तकलाओं के कलाकारों को पर्याप्त संरक्षण नहीं मिलने से ही उनकी कला का विकास तब नहीं हो सका था, मुगल कलाओ ने तब से ही राजस्थान के हस्तकलाकारों को अपनी ओर आकर्षित करना प्रारंभ कर दिया था। राजपूत ओर मुगल सरदारों की घनिष्ठता के कारण बाद में यहां के हस्तशिल्पियों ने मुगल कला से प्रभावित हस्त निर्मित वस्तुओं के निर्माण पर अधिक ध्यान देना प्रारंभ कर दिया। मुगलों एवं राजपूतों में परस्पर हस्तकलाओं के आदान-प्रदान से भी बाद में हस्तकलाओं के विकास की राह खुली।

राजस्थान की हस्तकलाओं के अंतर्गत तृतीय शती तक के कपड़े का प्रमाण नगर से उपलब्ध हो चुका है। वैसे भी कपड़ा, समय के प्रभाव से नष्ट हो जाता है। वस्त्र बुनाई के साथ ही चांदी का काम भी तृतीय शती के आहत सिक्कों में नगर से ही प्राप्त हुआ। विराट नगर के बौद्ध चैत्य में तीन सौ वर्ष ई.पूर्व के आठ पहलू छब्बीस लकड़ी के स्तम्भ लगे हुए थे, जो इस बात का प्रमाण है कि राजस्थान में लकड़ी की हस्तकलाओं का कार्य अती प्राचीनकाल से ही होता रहा है।

हस्तकलाओ के अंतर्गत राजस्थान में कलाकार स्थानीय कच्चे माल का ही उपयोग करते रहे हैं। जन मानस की रूचि, उनकी मांग के आधार पर ही यहां हस्तकला उत्पाद निरंतर बनाए जाते हैं। आज जीवन के वैभव के साथ ही रोजमर्रा के उपयोग से जुड़ी बहुतेरी हस्कला वस्तुओं में कुशल कारीगरों की लगन, निष्ठा एवं श्रम संबंधी उपयोगी उत्पादन केवल कुछ लोगों के मन बहलाव अथवा वैभव के प्रतीक न बनकर जन-जन तक पहुंचने के भी साधन बने हुए हैं।

राजस्थान के हस्तकला उत्पादो में जयपुर के मूल्यवान रत्न, मीनाकारी व नक्काशी की वस्तुएं, प्रस्तर प्रतिमाएं, मिट्टी के खिलौने, ब्ल्यू पॉटरी, लाख की चूड़ियां, बाड़मेरी, सांगानेरी व बगरू की हाथ की छपाई, जयपुर का हाथी दांत का काम, आकर्षक लहरिये व चूनडियां, नागरा जूतियां, जोधपुर की कशीदाकारी जूतियां, पर्स, मोठड़े, बादले व बंधेज की ओढनियां, उदयपुर के काष्ठ खिलौने, नाथद्वारा की फड़ पेन्टिग, मीनाकारी, सलमा सितारों व गोटे किनारी के काम से युक्त परिधान, सवाई माधोपुर के खस के बने पानदान, डिबिया व पखिया कोटा डोरियो की साड़ियां, प्रतापगढ की थेवा कला देश-विदेश में विशेष रूप से विख्यात है। राजस्थानी हस्तकलाओं की विशेषता उनकी सुन्दरता, उपयोगिता है।

राजस्थान की हस्तकलाओं का इतिहास यहां की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से जुड़ा है परन्तु अंग्रेजो के समय में हरत्तकलाओं का विकास समुचित रूप से इसलिए नहीं हो सका था कि उन्होंने हस्तकलाकारों को पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं दिया। यही नहीं स्वतंत्रता के पश्चात बहुत से मुस्लिम हस्तकलाकारों द्वारा भारत छोड़कर पाकिस्तान जाने के कारण हस्तकलाओं को खासी

क्षति पहुंची। स्वतन्त्रता पश्चात देश में लघु उद्योग निगम, हैण्डीकाफ्ट्स बोर्ड आदि की स्थापना के साथ ही समय-समय पर लगने वाले हस्तशिल्प उत्पाद मेलों से जरूर हस्तकलाओं को प्रोत्साहन एवं उत्पाद को बाजार मिला।

गत एक शताब्दी में जयपुर की मीनाकारी ने जहां विश्व स्तर पर अपनी पहचान बनायी है वहीं जयपुर की कुन्दन कला भी खासी लोकप्रिय हुई है। जयुपर के रत्नाभूषण भी विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। हाथी दांत से बनी वस्तुएं, पत्थरों की मूर्तियां का भी राजस्थान एक शताब्दी से प्रमुख केन्द्र बन गया है। उदयपुर, जोधपुर, भरतपुर में भी हाथी दांत की वस्तुओं का निर्माण होता है। दैनिक उपयोग में आने वाली विभिन्न अन्य वस्तुओं के निर्माण के साथ ही विलासिता से जुड़ी वस्तुओं के उत्पादन में पिछले पांच दशकों में पराजस्थान में जो कार्य हुआ है, उससे यहां के पर्यटन व्यवसाय में भी खासी बढोतरी हुई है।

10.3 राजस्थान के रत्नाभूषण :

राजस्थान को उत्सवधर्मिता का प्रदेश इसीलिए कहा जाता है कि यहां पर 7 वार 9 त्योंहार होते हैं।अर्थात् सप्ताह में सात दिन और त्योहार 9 आते हैं। यहां के लोगों में आभूषण पहनने के प्रति आरंभ से ही आकर्षण रहा है। मेले-त्योहारों पर सज-धज कर जाने की परम्परा ने ही राजस्थान के रत्नाभूषण व्यवसाय का तीव्रतम विकास किया है। रत्नाभूषणों के अंतर्गत विशेष रूप से महिलाओं के पहनने वाले गहनों की कारीगरी देखते ही बनती है। महिलाओं द्वारा पहनी जाने वाली चूडियां, कंगन, पायल, हार, बाजूबंद, सर पर पहनने वाला बोर, कमर में पहना जाने वाली कन्दौई, नाक में पहनी जाने वाली नथ आदि नाना प्रकार के आभूषणों के निर्माण में भी अद्भूत कलात्मकता होती है। राज्य में मुगलों के आर्विभाव से पहले से ही परम्परागत आभूषणों की अपनी विशिष्ट शैली रही है। गूगल और राजपूत सम्पर्क वृद्धि के साथ ही गहनों की बनावट में भी अन्तर आने लगा। गूगल-राजपूत शैली से निर्मित रत्नाभूषण आज भी बनाए जाते हैं। जड़ाऊ गहनों के आभूषणों के लिए जयपुर, बीकानेर, उदयपुर आदि प्रसिद्ध स्थान हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में जहां चांदी के आभूषण पहनने का अधिक रिवाज है वहीं शहरी क्षेत्रों में स्वर्ण आभूषण की ओर अधिक आकर्षण है। जन जातियां द्वारों पीतल के गहने पहनने का भी रिवाज वर्षों से चला आ रहा है। गांवों में विशेषकर महिलाओं द्वारा बोरला धारण किया जाता है। सर पर मांग के स्थान पर धारण किये जाने वाला बोरला चमकते हुए मूल्यवान पत्थरों से जड़ा होता है।

राजस्थान में परम्परागत रत्नाभूषण हस्तकला को जयपुर के कला प्रेमी राजा मानसिंह ने खासासंरक्षण दिया। उन्होंने 16 वीं शताब्दी में राजस्थान के विभिन्न भागों से खोज-खोज कर कुशल कारीगरों को जयपुर में प्रश्रय दिया और रत्नाभूषणों के निर्माण को उद्योग का दर्जा दिया। जयपुर आज उन्हीं के कारण मूल्यवान पत्थरों को तराशने और उन पर पालिश करने के लिए विश्वभर में विख्यात है। इस हस्तकला उद्योग में हजारों लोगों को रोजगार मिला हुआ है। यहां यह गौरतलब है कि राजस्थान में बनने वाले आभूषणों का 70 प्रतिशत भाग जयपुर में ही तैयार होता है।

चांदी से निर्मित होने वाले रत्नाभूषणों के अलावा हस्तावे, लोहे, गंगाजली, गिलास, चिरागदान, फूलदान, गमले, चुसकियां, सुराहियां और विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी भी बनाए जाते हैं। गले में पहने जाने वाले हारों के लिए भी चांदी की भगवान की मूर्तियां कलात्मक ढंग से निर्मित की जाती है। स्वतंत्रता से पहले रजवाड़ो के जमाने में चांदी अधिक काम में आती थी। चांदी को एक हजार डिग्री ताप पर गलाकर पतर बनाया जाता है ओर इसी से फिर विभिन्न आभूषण और अन्य वस्तुओं का निर्माण होता है।

10.4 राजस्थान की हस्तकलाएं:

राजस्थान को हस्तकलाओं का गढ़ कहा जाता है। यहां के हस्तशिल्पियों ने देश ही नहीं विदेशों में अपनी कला से अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है। राज्य की प्रमुख हस्तकलाओं के अंतर्गत लकड़ी, हाथी दांत की वस्तुएं, पत्थर का काम, कुट्टी का काम, लाख का काम, ब्लू पॉटरी, टेराकोटा, ऊंट की खाल से बनाए जाने वाली वस्तुएं, गलीचे, दरियां आदि पर्यटकों में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। राजस्थान की प्रमुख हस्तकलाएं इस प्रकार से है-

10.4.1 लकड़ी, हाथीदांत एवं चन्दन का कार्य:

लकड़ी पर हाथीदांत की पच्चीकारी का कार्य राजस्थान में प्राचीनकाल से ही होता आ रहा है। जयपुर के आमेर महल के सुहाग मंदिर में चंदन के किवाड़ो पर 17 वीं शती में हुआ हाथीदांत की पच्चीकारी का काम आज भी प्रमाणस्वरूप विद्यमान है। चन्दन की उपलब्धता सही होने से राजस्थान में हालांकि बहुत अधिक कार्य नहीं हुआ फिर भी हाथीदांत की कुराई का काम करने वाले कारीगर चन्दन का कार्य करते रहे हैं। चन्दन के हाथी, जाली के कटे हुए लैम्प, बुक शेल्फ, देवी-देवताओं की विभिन्न प्रकार की मूर्तियां आदि का कार्य करने वाले राजस्थान के चन्दन शिल्पी देश-विदेशों तक में प्रसिद्ध हैं। लकड़ी के कार्यो के अंतर्गत लकड़ी के घोड़े, हाथी, डेस्क, पशु-पक्षी, सिंगार पेटियां भी राजस्थान में विशेष रूप से बनायी जाती है।

लकड़ी पर हाथीदांत का कार्य राजस्थान में आरंभ से ही होता रहा है। लकड़ी की श्रृंगार पेटियां, कलमदान, चौकियां, पलंग के पाये, झूले आदि इस कदर खूबसूरत होते हैं कि मन करता है इनको निहारते ही रहें। बीकानेर-शेखावटी के मकानों की संपूर्ण छतें और नीचे की लकड़ी की मठोठ में सुन्दर चित्रकारी का कार्य देखते ही बनता है। डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ, भीलवाड़ा, उदयपुर में लकड़ी के खिलौने के साथ ही वहां के मकानों की छतों पर लकड़ी का उत्कृष्ट कार्य देखा जा सकता है। जोधपुर में लकड़ी से उत्पादित विभिन्न वस्तुएं खासी प्रसिद्ध हैं। विरासत से जुड़े आकार, डिजायन के अनुरूप आधुनिक रूप में लकड़ी से निर्मित होने वाली वस्तुएं राजस्थान में लगभग सभी स्थानों पर बनायी जाने लगी है।

राजस्थान के कुछ भागों में लकड़ी पर नक्काशी का कार्य भी अत्यधिक सुन्दर और कलात्मक ढंग से किया जाता है। उदयपुर व सवाईमाधोपुर लकड़ी के खिलौने व कलात्मक वस्तुएँ तथा बीकानेर व शेखावटी लकड़ी के नक्काशीदार सजावटी दरवाजों के लिए प्रसिद्ध स्थान है। राजस्थान में भरतपुर, जयपुर व उदयपुर में हाथी दाँत पर कुराई व कटाई करके कलात्मक

वस्तुओं, खिलौनों, शतरंज के मोहरे, कंघे, मूर्तियॉ आदि बनाने का कार्य होता है। उदयपुर व पाली हाथी दाँत की चूड़ियों के लिए विश्व प्रसिद्ध है।

10.4.2 कुट्टी का काम:

कुट्टी कार्य के अंतर्गत कलाकार कागज, चाक मिट्टी, फेविकोल, गोंद को गलाकर पीस कर लुग्दी बनायी जाती है। इस लुग्दी से वांछित आकृति बनाने के लिए पहले उस वस्तु का मिट्टी में माडल बनाकर प्लास्टर ऑफ पेरिस में उसका माडल से सांचा बनाया जाता है। तैयार लुग्दी को सांचे या डाई में डालकर जमा दिया जाता है। सूखने पर हाथ, पांव, कान, सींग, जो सांचे से नहीं निकल सकते, को लुग्दी द्वारा तैयार किए गए मानव या पशु पक्षी के आकार के साथ जोड़ दिया जाता है। हाथ से फिनिशिंग देने पर खड़िया का चाइना क्ले का अस्तर बनायी हुई वस्तु पर कर दिया जाता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के अंतर्गत इच्छित रंग कर विभिन्न आकृतियां जीवन्त रूप में तैयार करने की परम्परा राजस्थान में आरंभ से ही रही है।

राजस्थान में मुगल काल से ही कुट्टी का कार्य होता चला आया है। कुट्टी के कार्य के अंतर्गत सेठ-साहुकारों द्वारा अपने पुरखों की प्रतिमाएं बनवाने का कार्य जहां कलाकारों से करवाया जाता रहा है वहीं राजा-महाराजाओं द्वारा भी विभिन्न कार्यो के लिए कलाकारों को अपने यहां आश्रय दिया जाता रहा है। आदमकद आकार की मानव प्रतिमाएं, विभिन्न प्रकार के खिलौने, पशु-पक्षी आदि बनाने के लिए जयपुर के कलाकार विश्वभर में अपनी पृथक विशिष्ट पहचान रखते हैं।

10.4.3 ब्लू पॉटरी:

ब्लू पॉटरी का काम राजस्थान में मुगल बादशाहों के संबंध के कारण आगरा और दिल्ली से जयपुर लाया गया था। मुगलों से पूर्व चीन और फारस में ब्लू पॉटरी की परम्परा रही है। पालीशदान टाइलों का काम तुगलक स्मारकों में चौदहवीं सदी से पाया जाता है। जयपुर में आमेर के मानसिंह महल, रामबाग होटल, उदयपुर, बीकानेर के महलों में टाइल का काम देखा जा सकता है। ब्लू पाटरी के अंतर्गत बड़े-बड़े फूलदानों से लेकर छोटी राखदानी तक का कार्य इतना कलात्मक होता है कि देखते हुए कलाकार की कला पर अचरज होता है।

ब्लू पाटरी के अंतर्गत ही राजस्थान में मिट्टी व चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने का कार्य भी प्राचीन काल से होता आया है। अलवर में 'कागजी' नामक बहुत पतलेदार बर्तन बनते है। जयपुर में चीनी मिट्टी के सफेद व नीले रंग के तथा फूल-पत्तियों के डिजायनर बर्तन व कलात्मक खिलौने बनाये जाते है। बीकानेर में सुनहरी पेंटिंग वाले चीनी मिट्टी के कलात्मक व सजावटी बर्तन व अन्य वस्तुएं बनाई जाती है। चीनी-मिट्टी के बर्तनों पर रंगीन और आकर्षक चित्रकारी करने की ब्लू पॉटरी कला में आजकल हरा, पीला, हल्का भूरा ओर गहरा भूरा आदि रंग भी विशेष रूप से प्रयोग में लाए जाते हैं।

10.4.4 पीतल की नक्काशी:

राजस्थान की हस्तकलाओं में पीतल की नक्काशी का कार्य अत्यधिक लोकप्रिय है। कहते हैं 16 वीं शती के मध्य से ही पीतल की नक्काशी का कार्य राजस्थान में किया जाता रहा है। महाराजा मानसिंह ने पीतल की नक्काशी करने वाले कलाकारों को प्रश्रय ही नहीं दिया बल्कि इसमें रूचि लेकर पंजाब और उत्तर प्रदेश से भी इस कला के कलाकारों को अपने यहां बुलाया था। राजस्थान के कलाकारों द्वारा निर्मित किए जाने वाले पीतल के गमले, विभिन्न प्रकार के बर्तन, चित्रफेम उपहार में दी जाने वाली तश्तरियां आदि भारत ही नहीं विदेशों तक में अलग से ही पहचाने जाते हैं। पीतल के काम के अंतर्गत जोधपुर के बादले खासे प्रसिद्ध हैं।

10.4.5 बुनाई एवं रंगाई-छपाई हस्तकलाएं:

राजस्थान में कपड़ा बुनाई एवं उन पर रंगाई-छपाई की कला यहां की सांस्कृतिक पहचान लिए हैं। राजस्थान की पीली मरूभूमि और पीले प्रकाश में समरसता के प्रतिरोध में रंग-बिरंगी वेशभूषा यहां की आरंभ से ही विशेषता रही हैं। कपड़ों को बुनकर सुन्दरतम ढंग से तैयार करने के साथ ही कपड़ों की रंगाई का काम नीलगरों अथवा रंगरेजों द्वारा किया जाता है। राजस्थान में भूरे, कत्थई, नीले और हरे रंगो को पक्का रंग समझा जाता है तथा अमूममन लोकाभिव्यक्ति अथवा उदासीनता के दौर में ऐसे कपड़े पहने जाते हैं जबकि आसमानी, लाल, पीले, केसरिया आदि चटख रंगों को कच्चा रंग समझा जाता है तथा उत्सव, तीज त्योहार के साथ ही सौंदर्य के लिए इनको पहने जाने का रिवाज आरंभ से ही रहा है।

कपड़ा निर्माण के अंतर्गत बुनकरों द्वार रेजा लगभग राज्य के सभी स्थानों पर तैयार किया जाता है। उत्कृष्ट कपड़े के रूप में सूत, सिल्क के ताने-बाने का कैधून, मागरोल का मसूरिया, तनसुख, मथानिया की मलमल, बीकानेर-जैसलमेर की ऊन, अंगरखा, पगड़ी, पेचा, सेला, साफा, पटका, घाघरा, ओढ़नी व कूर्ती कांचली आदि अत्यन्त कलात्मक ढंग से तैयार की जाती है।

रंगाई छपाई की दृष्टि से सांगानेर, पाली, बाड़मेर व बीकानेर राज्य के प्रमुख केन्द्र है। यह छपाई लकड़ी के ठप्पों से की जाती है। रंगाई-छपाई के अंतर्गत बीकानेर के लहरिये व मोठड़े भी विश्व प्रसिद्ध है तो किशनगढ़, चित्तौड़ व कोटा में किया जाने वाला रूपहली व सुनहरी छपाई का काम देश-विदेश में अपनी अलग पहचान रखता है। बंधेज के कार्य में महिलाएं धागे से वस्त्रों पर घुंडिया बाधती है। इसके बाद इस कपड़े को अलग-अलग रंगों में डूबोकर रंग लिया जाता है और सूखने के बाद में कपड़े को खींचकर घुंडियां हटा दी जाती है और फिर इस्त्री कर दी जाती है। जयपुर में इसके लिए बगरू व सांगानेर क्षेत्र विशेष प्रसिद्ध है।

वस्त्रों पर कशीदे के कार्य में भी राजस्थान की अपनी विशिष्ट पहचान है। यह कार्य यहां अत्यधिक कलात्मक होता है। राजस्थानी कशीदाकारी व छपाई कला के प्रतीक के रूप में कैरी, कमल, मोर, हाथी और ऊंट की डिजायन विशेष रूप से विख्यात है। कढाई के इस कार्य में कांच, मोती व घात्विक कणों का प्रयोग करते हुए उसे आकर्षक बनाया जाता है। कोटा की मसूरिया मलमल व कोटा डोरिया की साड़ी तो विश्व भर में प्रसिद्ध है। इसी प्रकार राजस्थान में

बीकानेर व मालपुरा क्षेत्र ऊन उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र है। मालपुरा में बने ऊनी चमका या घूघी जिसमें पानी प्रवेश नहीं कर पाता व बीकानेर की ऊनी सर्ज विश्व प्रसिद्ध है। जयपुर, जोधपुर व टोडागढ़ (अजमेर) में भी कम्बल बनाने का केन्द्र है।

राजस्थान में दरी व गलीचे का कार्य भी बहुतायत से होता है। जोधुपर, नागौर, टोंक, बाड़मेर, शाहपुरा आदि स्थानों पर निर्मित दरियां विदेशों तक में निर्यात होती है। दरियों में धागा 20 प्लाई का बढ़िया बारीक समझा जाता है। दरियों पर विभिन्न प्रकार की बारीक चित्रकारी, कलात्मकता देखते ही बनती है।

बीकानेर में उत्तम श्रेणी की ऊन से वियना व फारसी डिजायनों के गलीचे बनाये जाते है। गलीचा बनाने का कार्य जेलो में अधिक करवाया जाता रहा है। बीकानेर जेल की गलीचों का कार्य सर्वाधिक सुन्दर माना जाता रहा है क्योंकि वहां भेडों से बहुतायत से ऊन प्राप्त होती रही है। सूत और ऊन के ताने-बाने लकड़ी के रोलर पर लगाये जाकर गलीचे की बुनायी की जाती है। बुनाई में जितना बारीक धागा व गांठे होती है, गलीचा उतना ही बढ़िया समझा जाता है। गलीचे का कार्य जयपुर, ब्यावर, किशनगढ़, टोक, मालपुरा, केकड़ी, भीलवाडा, कोटा आदि स्थानों पर विशेष रूप से किया जाता है।

10.4.6 टैराकोटा:

राजस्थान की टैराकोटा कला की अपनी पहचान हैं। पक्काई मिट्टी के खिलौने टेराकोटा, बर्तन बनाने का इतिहास राजस्थान में काफी पुराना है। कालीबंगा आहड़ की खुदाई प्राप्त खिलौने, बर्तन इस बात के गवाह है कि आरंभ से राजस्थान में इन कलाओं में अत्यधिक समृद्धि रही है। राजस्थान में नाथद्वारा के पास मोलेला गांव तो टैराकोटा के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध हैं। मोलेला की मिट्टी के साथ एक चौथाई गोबर मिलाया जाता है और उसको जमीन पर थाप दिया जाता है और हाथ और साधारण औजार से ही विभिन्न आकृतियां उभारी जाती है। एक सप्ताह तक सूखने के बाद इन आकृतियां को 800 डिग्री सै. ताप में पकार कर गैरूं रंग कर दिया जाता है। राजस्थान में आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में और शहरों में सजावट के लिए मोलेला के टैराकोटा की अत्यधिक मांग हैं। मारवाड़ में ईसरगोर, ढोला-मारू, घुडसवार आदि अधिक बनाये जाते हैं। टैराकोटा के अंतर्गत बनाए जाने वाले मटके और सुराहियां भी अत्यधिक कलात्मक होती हैं। जयपुर में मिट्टी के बर्तनों के निर्माण के अंतर्गत सुराही और बेलनुमा मर्तबानों पर परशिया का प्रभाव विशेष रूप से दिखायी देता है।

10.4.7 उस्ता कला:

राजस्थान का बीकानेर शहर ऊँटों की नगरी के नाम से जाना जाता है। यहां आयोजित होने वाला कैमल फेस्टीवल सुदूर देशों तक में लोकप्रिय हैं। ऊँट के कुप्पों पर मुनबत के काम के कारण भी बीकानेर की पहचान विशेष रूप से हैं। बीकानेर के उस्ता कलाकारों द्वारा किए जान वाले इस कार्य के तहत ऊँट की खाल पर स्वर्ण नक्काशी का सुन्दर कार्य किया जाता है। कांच व लकड़ी की वस्तुओं पर भी बीकानेर में यह कार्य किया जाता है। कुप्पियां, शिशियों आईना, छोटे डब्बे-डाब्बियां, सुराहियों पर भी यह कार्य किया जाता है। बीकानेर में इस कार्य के लिए

अलग से प्रशिक्षण केन्द्र भी लघु उद्योग निगम के तहत खोला हुआ है। उस्ता कला केन्द्र से मशहूर इस केन्द्र में कैमल हाईड का प्रशिक्षण दिया जाता है।

10.4.8 लाख का काम:

राजस्थान में जयपुर व जोधपुर लाख के कार्य के लिए विश्व विख्यात है। लाख की चूड़ियॉ व कड़े, पाटले, खिलौने, मूर्तियाँ, हिण्डोले लाख का लेपन कर बनायी गए वस्तुएँ आदि की प्रसिद्धि पूरे विश्व भर में फैली हुयी है। लाख की चूड़ियों पर कॉच व मोतियों आदि तरह-तरह के डिजायन बनाये और सजाये जाते है। लाख के काम के अंतर्गत चपड़ी को पानी में गरम कर पिघलाया जाकर रंगा मिलाकर गूंथा जाता है और बट्टी बना ली जाती है। चाक, मिट्टी व सूखा बिरोजा मिलाकर कड़ाही में गरम कर लुआब तैयार किया जाता है, फिर उसे गूंथ कर उसके बेलन तैयार किए जाते हैं। इसके बाद लकड़ी के बटकड़े में चूड़ी की साईज के खांचे बने होते हैं, उनमें बेलन की चपडी को ठोस भर दी जाती है। पुन: लकड़ी के गोल बेलन के ऊपर बटकड़े से निकाल कर चूड़ी को गोल कर ली जाती है।

पिछले कुछ समय से लाख के काम के पशु-पक्षी, पेन्सिल एवं अन्य खिलौने भी बनाए जाने लगे है। राजस्थान के सवाईमाधोपुर, खेड़ला, लक्ष्मणगढ़, कोटा, कैसली में लकड़ी के खिलौने एवं अन्य वस्तुओं पर खराद से लाख का काम किया जाता है जो अत्यन्त पक्का होता है।

10.4.9 मीनाकारी

मीनाकारी का कार्य मूल्यवान व अर्द्धमूल्यवान रत्नों तथा सोने व चांदी के आभूषणों पर किया जाता है। मीनाकारी में फूल, पत्ती, मोर, शुंगी आदि का अंकन प्राय: किया जाता है। जयपुर में सोने के आभूषणों और खिलौनों पर बडी सुंदर मीनाकारी की जाती है। सोने के आभूषणों के अतिरिक्त चांदी के खिलौनों व आभूषणों पर भी मीनाकारी की जाती है। नाथद्वारा मीनाकारी का प्रसिद्ध केन्द्र है।

मीनाकारी दो प्रकार की होती है - एक पक्की और दूसरी कच्ची। प्रथम मीनाकारी भट्टी में पकाई जाती है व कच्ची मीनाकारी जयपुर में पीतल के बर्तनों व खिलौनों आदि पर की जाती है। प्रतापगढ (चित्तौड़गढ) की प्रसिद्ध "थेवा कला" भी मीनाकारी का ही एक रूप है। इसमें शीशे पर सोना मढकर कलाकृतियाँ बनायी जाती है। इसी प्रकार बीकानेर में ऊंट की खाल से बनी विविध वस्तुओं को सोने की बारीक नक्काशी और तारबंदी करके आकर्षक स्वरूप प्रदान किया जाता है।

मीना की कारीगरी भारत में दरअसल विदेशों से आयी और राजा-महाराजाओं ने इस कला को प्रश्रय प्रदान कर प्रोत्साहित किया। कागज जैसे पतले पत्तर पर मीनाकारी में बीकानेर के मीनाकार सिद्धहस्त माने जाते हैं। ताम्बे पर केवल सफेद, काला और गुलाबी रंग काम में लाया जा सकता है। मीना तलवार, छूरियों की मूंठ तथा आभूषणों में बाजू, बंगडी, हार, ताबीज आदि पर किया जाता है।

10.4.10 संगमरमर की मूर्तियॉ:

राजस्थान में मकराना में संगमरमर की खानें है तथा जयपुर व इसके आस-पास के क्षेत्रों में मूर्तियों का निर्माण किया जाता है। मूर्तियों के साथ-साथ कलात्मक निर्माण की वस्तुएँ जैसे फव्वारे आदि विश्व भर में प्रसिद्ध है। राजस्थान के डूंगरपुर से हरा, काला, तलवाड़ा, छिट्टा, आवलापुरा, धमोतर में कड़ा सफेद, धौलपुर से लाल, भरतपुर से गुलाबी, मकराना से सफेद संगमरमर, जोधपुर से बादामी, राजसमन्द से कालाशी लिए सफेद संगमरमर, भैंसलाना से काला संगमरमर, जालौर से ग्रेनाईट और कोटा से स्लेटी पत्थर खानों में उपलब्ध होता है। इन पत्थरों से विभिन्न प्रकार की मूर्तियां, खिलौने, घरों के अंदर कलात्मक झरोखे, जालियां आदि निर्मित की जाती है। पत्थरों पर उत्कृष्ट कारीगरी के साथ ही उसमें बारीक खुदाई के कारण राजस्थान के कलाकारों के उत्पादों की पर्यटकों में विशेष मांग रहती है। जयपुर की संगमरमर की देवी-देवताओं की मूर्तियां विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं तो यहां व्यक्ति विशेष की स्मृति में निर्मित होने वाली आदमकद मूर्तियां, प्रतिमाएं भी अत्यधिक प्रसिद्ध है।

उपरोक्त हस्तकलाओं के साथ ही राजस्थान में विभिन्न प्रकार के अन्य हस्तकला उत्पाद भी अत्यधिक लोकप्रिय है। चमड़े की जूतियां एवं अन्य काम में आने वाले सामान, जुट निर्मित गृहसज्जा के उत्पाद, विभिन्न प्रकार की पेन्टिंग, मनके, तांबे की कुल्हाड़ियां पीतल के विभिन्न खिलौने दैनिक उपयोग की वस्तुओं आदि के लिए भी राजस्थान के हस्तकलाकारों की विशेष पहचान है।

10.5 हस्तकलाओं को प्रोत्साहन:

राजस्थान की विभिन्न हस्तकलाएं यहां की समृद्ध संस्कृति की पहचान हैं। आधुनिकीकरण ने हालांकि हस्तकलाओं को खासा नुकसान पहुंचाया है। हाथों का काम जब से मशीन ने प्रारंभ किया है तब से हस्तकलाकारों की रोजी-रोटी पर भी प्रतिकूल असर पडा है, बावजूद इसके पर्यटन उद्योग का प्रभावी विकास बहुत कुछ हस्तकला उत्पादों पर ही निर्भर हैं। पर्यटक सुदूर देशों से राजस्थान आते है तो यहां के एम्पोरियम, दुकानों से हस्तकला उत्पाद विशेष रूप से खरीदना चाहते है। ऐसे में यह जरूरी है कि हस्तकलाओं के विकास एवं प्रोत्साहन की दिशा में सभी स्तरों पर प्रभावी प्रयास किए जाएं।

राजस्थान में हस्तकलाओं को प्रोत्साहन दिए जाने के लिए ही उदयपुर में शिल्प ग्राम की स्थापना की हुई है। उदयपुर की फतहसग़गर झील के निकट अरावली की पहाडियों के मध्य में पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र द्वारा स्थापित शिल्पग्राम में गांवो में निर्मित किए जाने वाली विभिन्न हस्तकलाओं को एक ही स्थान पर संग्रहित किया हुआ है। आदिवासी एवं लोक कलाओं के संरक्षण की दिशा में शिल्प ग्राम का विशेष योगदान है।

राजस्थान में हस्तशिल्पियों को प्रेत्साहन के लिए वर्ष 1983 से सिद्धहस्त शिल्पियों को पुरस्कृत करने की योजना भी शुरू की गयी थी। इस योजना के तहत राजस्थान लघु उद्योग निगम प्रत्येक पुरस्कृत शिल्पी को पांच हजार रूपये नकद, ताम्रपत्र तथा अंग वस्त्र प्रदान करता है। इसके साथ ही अन्य श्रेष्ठ शिल्पियों को एक हजार रूपये नकद, अंग वस्त्र तथा श्रेष्ठता

प्रमाण पत्र दिया जाता है। हस्तशिल्प के क्षेत्र में राजस्थान के जिन हस्तशिल्पियों द्वारा हस्तशिल्प वस्तुओं का सर्वाधिक निर्यात किया जाता है उन्हें भी हस्तशिल्प निर्यात संवर्द्धन परिषद् द्वारा पुरस्कृत किया जाता है।

हस्तशिल्प प्रोत्साहन के लिए राजस्थान सरकार द्वारा समय-समय पर मेलों, उत्सवों का भी आयोजन किया जाता है। इन मेलों में प्रदेश के सभी स्थानों से हस्तशिल्पियों को आमंत्रित कर उन्हें अपने उत्पाद बेचे जाने का अवसर उपलब्ध कराया जाता है। जयपुर में जवाहर कला केन्द्र में प्रतिवर्ष हस्तशिल्प मेला लगाया जाता है तो अन्य स्थानों पर भी इस प्रकार के मेले इस उद्देश्य से लगाये जाते है कि लोगों को हस्त शिल्प उत्पाद क्रय करने के लिए प्रेरित किया जा सके तथा हस्तशिल्पियों को भी संरक्षण मिल सके।

10.6 सारांश:

राजस्थान को हस्तकलाओं का गढ़ कहा जाता है। यहां के हस्तकला उत्पादों की मांग विदेशों तक में हैं। पर्यटक जब राजस्थान आते हैं तो उनकी चाह यहां के स्थानों को देखने के साथ ही हस्तशिल्प की ओर भी विशेष रूप से होती है।

हस्तकलाओं का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी की मानव सभ्यता। राजस्थान में प्राचीनकाल की खुदाई से मिली विभिन्न वस्तुएं और संग्रहालयों में संग्रहित कलात्मक चीजों को देखकर इस बात का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि हस्तकलाओं की दृष्टि से आरंभ से ही राजस्थान समृद्ध राज्य रहा है।

यहां के रत्नभूषणों के अंतर्गत किया जाने वाला बारीक कार्य देखते ही बनता है तो विभिन्न हस्तकला उत्पादों में की कलात्मकता की बात ही कुछ और है। बाडमेर की कांच कसीदाकारी हो या फिर चांदी पर मीनाकारी का कार्य या फिर कपड़े पर हाथ की छपायी का कार्य या फिर संगमरमर पर खुदायी और मूर्तिकला कार्य-सभी कुछ अद्भुत कलात्मकता लिए होते है। राजस्थान की हस्तकलाओं के अंतर्गत पीतल पर खुदायी, लकड़ी के खिलौने, हाथीदांत के खिलौने, कुट्टी का कार्य, पीतल पर नक्काशी का कार्य, कैमल हाइड, ब्लू पॉटरी, कपड़े बुनाई, लघु चित्रकारी, कसीदाकारी आदि का कार्य इतना सुन्दर होता है कि देखते ही बनता है।

हस्तकलाओं को प्रोत्साहन के लिए राज्य सरकार द्वारा विभिन्न प्रयास हस्तकला उत्पाद मेलों के आयोजन के रूप में किए जाते हैं तो हस्तकला पुरस्कार भी प्रदान किया जाता है। हस्तकलाओं के प्रदेश राजस्थान की हस्तकलाओं के संरक्षण और प्रोत्साहन से ही पर्यटन उद्योग को प्रभावी रूप में गति दी जा सकती है। इस इकाई में राजस्थान की हस्तकलाओं के बारे में आपको विस्तार से जानकारी दी गयी है ताकि आप पर्यटन विपणन में यहां की इस समृद्ध धरोहर का उपयोग कर सकें।

बोध प्रश्न:

1. राजस्थान हस्तकलाओं का गढ है।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में राजस्थान की हस्तकलाओं के इतिहास पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

2. राजस्थान की विभिन्न हस्तकलाओं की जानकारी देते हुए उनका महत्व समझाईए।

.....

.....

3. हस्तकला प्रोत्साहन के लिए राज्य में कौन-कौन से प्रयास किए जाते है?

.....

.....

इकाई- 11:साहसिक पर्यटन एवं मनोरंजन

रूपरेखा :

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 साहसिक खेल पर्यटन अवधारणा

11.4 राजस्थान में साहसिक पर्यटन

11.5 साहसिक पर्यटन को बढावा देने के उपाय

11.6 पर्यटन नीति और साहसिक पर्यटन विकास

11.7 सारांश

11.0 उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- साहसिक खेल पर्यटन की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- विभिन्न साहसिक खेलों के बारे में जान सकेंगे।
- राजस्थान में साहसिक खेल पर्यटन की नवीन उभरती प्रवृतियों से अवगत हो सकेंगे।
- साहसिक खेल पर्यटन विकास की संभावनाओं का पता लगा सकेंगे।
- पर्यटन के नये आयाम, साहसिक पर्यटन को गहराई से समझ सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना:

पर्यटन के इधर जो नित नए रूप उभरकर सामने आ रहे हैं, उनमें साहसिक खेल पर्यटन का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। वैसे भी साहस के कारनामें करने के प्रति आरंभ से ही मनुष्य जिज्ञासु रहा है। पर्यटन के संदर्भ में तो यहां तक कहा जा सकता है कि पर्यटन का आरंभिक विकास साहस प्रवृति के कारण ही हुआ। भारत में आदि शंकराचार्य ने चार दिशाओं में हिन्दुओं के लिए चार धामों की स्थापना की तो लोग अपने घरों से निकलकर दुर्गम रास्तों की बाधाओं को पार करते इन पर पहुंचने लगे। तीर्थाटन से पर्यटन की हुई शुरूआत की कड़ी में साहसिक यात्राओं ने नए इतिहास ही नहीं रचे बल्कि लोगों को निरंतर पर्यटन के लिए प्रेरित भी किया। अपरिचित स्थानों, सभ्यता एवं संस्कृति को जानने, समझने व परखने की जिज्ञासा वस्तुत: मनुष्य की स्वभावगत प्रवृति है और इस प्रवृति का ही परिणाम पर्यटन है।

पर्यटन के आधुनिक रूप में साहसिक यात्राओं का विशेष योगदान रहा है, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। साहसिक यात्राओं के साथ ही साहस के कारनामें, साहस से जुड़े खेलों की ओर भी इधर विशेष रूप से पर्यटकों का रूझान बढ़ा है। भारत वैसे भी विविधताओं वाला देश है। यहां कहीं दूर तक लहराता रेत का समन्दर है तो कहीं बर्फ के पहाड़ो का अपना सौन्दर्य है। कहीं शीतलता का अहसास कराते नदी और नाले हैं तो कहीं पर्वतों की गगन चुम्बी चोटियां अपनी ओर अनायास ही पर्यटकों को अपनी ओर खींचती है। इन सबमें साहसिक पर्यटन की अपार संभावनाएं है। राजस्थान में बर्फ और सागर के अलावा सब कुछ है। यहां भी साहसिक

पर्यटन की संभावनाएं कम नहीं है। साहसिक पर्यटन की क्या है अवधारणा? साहसिक खेलों में पर्यटकों की पसंद और रूझान, साहसिक खेल पर्यटन की राज्य में क्या कुछ है संभावनाएं? आईए, जानें -

11.2 साहसिक खेल पर्यटन अवधारणा:

किसी नए स्थल, वहां पर पहुंचने, वहां आमोद-प्रमोद करने की मनुष्य की सहज प्रवृति है। मनुष्य की यह सदैव जिज्ञासा रहती है कि वह उस स्थान विशेष के बारे में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे जिसके बारे में उसने सुना या पढ़ा है। स्वास्थ्य एवं शिक्षा का लाभ, पर्यावरण व मनोरंजन की चाह ने ही पर्यटन की ओर मनुष्य को प्रेरित किया है। आरंभ में मनुष्य की यात्राओं के मूल कारण में साहस ही कहीं न कहीं छुपा रहा है। जाने अनजाने ही कोलम्बस ने नई दुनिया के रूप में साहसिक यात्रा के जरिये अमेरिका की खोज कर ली, तो वास्कोडीगामा ने भारत को खोज निकाला। वस्तुत: इतिहास के पृष्ठ महान् साहसिक यात्राओं के कारनामों तथा शौर्य की गाथाओं से भरे पड़े है। इन यात्रियों ने अपनी यात्रा के दौरान विभिन्न जोखिमों को झेलते हुए और जूझते हुए अपनी मंजिल को तलाशा; ऐसी मंजिलों को, जिन्होनें पूरे विश्व के लिए ज्ञान और अनुभव के द्वार खोले। ज्ञान, धर्म तथा आध्यात्मिक अनुभूति आदि के कारण हेनसांग, फाह्यान तथा इत्सिंग जैसे बौद्ध पर्यटकों ने चीन से भारत के उस समय के दुर्गम रास्तों को तय करते हुए बौद्ध दर्शन को प्राप्त किया था।

दरअसल, साहसिक यात्राओं ने ही पर्यटन को बाद में अत्यधिक समृद्ध किया। इस रूप में रोमांच तथा खेल के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि ये आरंभ से पर्यटन के हिस्से रहे हैं। रोमांच और खेलों के माध्यम से पर्यटन विकास की सोच ने ही साहसिक खेल पर्यटन की अवधारणा को जन्म दिया। किसी स्थान विशेष पर घूमने के लिए जाने पर वहां के दृश्यावलोकन के साथ ही कुछ समय के लिए वहां के वातावरण से अपने आपको आत्मसात करने के लिए भी इधर साहसिक खेलों की ओर पर्यटकों का रूझान बढा है। वातावरण को आत्मसात करने का अर्थ हैं वहां मौजूद पर्यटन की संभावनाओं का सभी स्तरों पर उपयोग करना। मसलन, पहाडों पर भ्रमण के दौरान वहां की ट्रेंकिग करना, पर्वतारोहण, रॉक क्लाईम्बिंग, बर्फ के पहाडों पर स्कीइंग करना, नदियां में विभिन्न प्रकार की खेल क्रीड़ाओं में भाग लेना, रेत के लहराते समन्दर में जीप, कैमल सफारी करना, बैलूनिंग, हैंग ग्लाईडिंग आदि के रूप में विभिन्न साहसिक खेलों का स्थान-विशेष पर जाकर आनंद लेना। इस रूप में साहसिक खेलों की प्रवृति ने इधर साहसिक पर्यटन की नई अवधारणा को अनायास ही जन्म दे दिया है।

साहसिक पर्यटन की देश में अपार संभावनाओं को देखते हुए ही अब विभिन्न स्थानों को वहां के साहस खेलों की अनुकूलता के आधार पर विकसित किए जाने की भी पहल की जाने लगी है। विशेष रूप से विदेशी पर्यटक आजकल भारत में साहसिक पर्यटन में विशेष रूचि लेकर भ्रमण को आने लगे हैं। साहसिक खेल पर्यटन मुख्य रूप से ऐसे पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र होता है, जो -

- किसी खेल विशेष में दक्ष-प्रशिक्षित हों और ऐसे स्थानों की तलाश में हों जहां वह खेल आसानी से खेला जा सके। खेल-विशेष में रूचि के कारण उसमें प्रशिक्षण के

लिए भी पर्यटक स्थान विशेष की संभावनाओं के आधार पर वहां जाना पसंद करते हैं।

- साहसिक खेल या रोमांच को जो लोग नियमित रूचि के रूप में लेते हो और वह उनके जीवन की अनिवार्यता का हिस्सा हो।
- इस प्रकार के पर्यटक जो अवसर मिलने पर साहसिक खेल या रोमांच में हिस्सा लेने में रूचि रखते हो।
- रोमांच या साहस से जुड़े खेलों के दर्शक के रूप में हिस्सा लेने वाले व्यक्ति भी पर्यटक के रूप में साहस या रोमांच के खेल की प्रतियोगिता स्थल पर जाना पसंद करते हैं।
- पर्यटन में एकरसता को तोडकर नया कुछ कर नवीन अनुभूति प्राप्त करने के इच्छुक पर्यटक।

वैसे भी भारत की विविधता की जलवायु और प्राकृतिक विविधता यहां साहसिक खेल पर्यटन की असीम संभावनाएं लिए है। प्रकृति अपने अद्भुत रहस्यों से मनुष्य को आरंभ से ही आकर्षित करती रही है। प्रकृति पर विजय पाने की चाह और इसके गढ़ रहस्यों को अनावृत करने की इच्छा से साहसिक पर्यटन को नए आयाम मिले है। साहसिक पर्यटन के विभिन्न अंगों में चट्टानों पर चढाई करना, ट्रेकिंग, रिवर राफ्टिंग, माउन्टेनियंरिग, स्कीईग, पैरा गलाइडिंग आदि प्रमुख हैं। खेलोमेंभाग लेने के अंतर्गत, विशेष रूप से साहसिक कीड़ाओं (खेलकूद) में भाग लेना जोखिम उठाना आदि स्पोर्टसमैनशिप के अंतर्गत आता हैं। इसके लिए शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक हैं।

प्रतिवर्ष विदेशी पर्यटकों में से लगभग चालीस-पचास हजार ऐसे पर्यटक होतें हैं जो केवल साहसिक पर्यटन में रूचि रखने के कारण ही यहां आना पसंद करते हैं। वे यहां की अद्भूत प्राकृतिक विशेषताओं से आकर्षित होकर यहां आते है। यहां के पहाड़, बर्फीली चोटियां, नदियां, चट्टानें, समतल मैदान, दूर तक फैला रेगिस्तान आदि उन्हें यहां साहसिक खेलों के लिए मानों आमंत्रित करता है। भारत में नब्बे के दशक से पूर्व साहसिक क्रीडा साधारणत: विदेशी पर्यटकों द्वारा ही की जाती थी। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि साहसिक पर्यटक अमूमन विदेशी ही हुआ करते थे। जैसे-जैसे साहसिक खेलों के लिए स्थान- विशेषों की विशिष्ट पहचान बनने लगी। साहसिक खेल पर्यटन केन्द्र अस्तित्व में आने लगे, भारतीय भी साहसिक पर्यटन में रूचि लेने लगे। आज विदेशी सैलानियों के साथ ही अच्छी खासी संख्या भारत में घरेलू साहसिक पर्यटकों की भी है। अब तो देश के विभिन्न कोनों में साहसिक पर्यटन स्थल ही विकसित नहीं हो गए है बल्कि साहसिक पर्यटन की प्रतियोगिताएं भी बड़ी संख्या में आयोजित की जाने लगी है।

भारत सरकार की नई पर्यटन नीति में भी साहसिक पर्यटन को प्रोत्साहित किए जाने पर विशेष रूप से जोर दिया गया है। पर्यटन नीति में कहा गया है कि साहसिक पर्यटन को सभी स्तरों पर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि साहसिक और दूरस्थ गंतव्यों, पहाड़ों, गुफाओं तथा वनों के लिए चिन्हित वरीयता के साथ युवा पर्यटकों की एक नई श्रेणी उभर रही है। यह श्रेणी ठहरने के लिए 5 सितारा आवास नहीं देखती, बल्कि केवल सादे और स्वच्छ

स्थान देखती है। पंचायतों ओर स्थानीय निकायों को पर्यटकों की इस श्रेणी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

11.3 साहसिक क्रीडाओं का वर्गीकरण:

साहसिक पर्यटन के अंतर्गत आने वाले विभिन्न साहसिक खेलों में साहस एवं रोमांच का विशेष मिश्रण होता हैं।

साहसिक क्रीडाओं का वर्गीकरण प्रकृति के अनुसार होता है। साहस क्रिडाओं को उपयोगी और रोमांचक बनाने के लिए खेल-कूद संबंधी कुछ सामान्य एवं अन्य साधन प्रयोग में और लाये जाते है। भारत में साहसिक पर्यटन के अनगिनत साहसिक खेलों को मुख्यत: तीन भागों में विभाजित किया जा सकता हैं-

- पानी (समुद्र, नदी या झील आदि) में खेली जाने वाली क्रीडा
- जमीन पर खेले जाने वाले साहसिक खेल
- वायु या आकाश में खेली जाने वाली क्रीडा
- शीतकालीन खेल

11.3.1 पानी में खेली जाने वाली क्रीडा :

भारत में सदानीरा नदियां, झीले और मीलों लम्बे समुद्रतटों को देखते हुए पानी के बहुत से रोमांचक खेलो की भी अपार सम्भावनाएं है। विश्वभर से आने वाले पर्यटको की रूचि सैर-सपाटे के साथ ऐसे खेलो में भी रहती है। ऐसे में पानी के खेलो की दृष्टि से भारत को उताम पर्यटन स्थल के रूप में प्रचारित किया जा सकता है। लक्ष्यद्वीप के शांतमूंगे से लेकर गोआ की उत्ताल तंरगों तक विंड सर्फिग, स्कूबा डाइविंग, स्नारकेलिंग वाटर स्कीइंग और नौकायन तक बहुत से खेलों का आनंद लिया जा सकता हैं। हालांकि वर्तमान में देश में विंड-सर्फिग की सुविधा केवल गोआ में ही उपलब्ध हैं परन्तु इसकी संभावना के दूसरे क्षेत्र भी कम नहीं है। स्कूबा डाइविंग, अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में, हिमाचल प्रदेश में पोग बांध और मेघालय में उमियम झील के अलावा किसी और स्थान को हालांकि पानी के खेलों के आकर्षणके रूप में विकसित नहीं किया जा सका है परन्तु देश की बहुत सी नदियां, झीलो और समुद्र तटों पर ऐसे खेलों की असीमित संभावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। पर्यटकों को देश आमंत्रण के तहत उनकी रूचियों के आधार पर पानी के विविध खेलों के चित्ताकर्षक पर्यटन स्थल के रूप में भारतीय पर्यटन को पेश किया जाए तो इसके दूरगामी परिणाम पर्यटन विकास के रूप में स्वत: ही हमारे सामने होगें। जल क्रिडाओं की ओर पिछले कुछ वर्षों से पर्यटकों का विशेष रूप से रूझान भी हुआ है। विभिन्न जल क्रीडाएं इस प्रकार से हैं -

❑ **कायकिंग :** कायक फाईबर की बनी एक या दो व्यक्तियों के बैठने वाली एक छोटी नाव होती हैं। यह डांडो सहित एक बंद नाव होती हैं। प्रारंभ में यह नाव सील मछली के शिकार के लिए आर्कटिक क्षेत्र में प्रयुक्त होती थी। यह बडी सरलता से उलट जाती हैं। अत: खिलाड़ी यह प्रयास करते है कि यह बिना उल्टे ही तेजी से चलती रहे। इन्हीं नावों के द्वारा विविध प्रकार

की दौड़ै तथा अन्य कीड़ांए होती है जो नाव के अंदर पैंडिल चलाने वाले के लिए बड़ी रोमांचक होती हैं।

❑ **कैनोइंग :** यह एक लंबी और संकरी नाव होती है जो खुली हुई होती हैं। इस नाव की विशेषता यह होती है कि यह सपाट होती हैं और दोनों कोनो पर (लम्बाई की और) नुकीली होती हैं। यों तो यह पैंडल द्वारा चलाई जाती हैं, पर इसमें छोटी मोटर भी रखी जा सकती हैं। यह लगभग तीस-चालीस इंच चौड़ी और बारह से चौदह फुट तक लम्बी होती हैं तथा वजन में बहुत हल्की होती हैं। एक तो व्यक्ति इसे उठाकर और पानी में डालकर कीड़ांए कर सकता हैं। जहां शांतजल होता हैं वहीं इसके द्वारा विविध प्रकार की दौड़े एवं अन्य प्रतियोगिताएं हो सकती हैं।

❑ **वाइट वाटर रेफ्टिंग :** भारतीय उपमहाद्वीप की उत्तरी सीमा पर हिमालय की 2 हजार 700 कि.मी. लम्बी अविछिन्न पर्वत श्रृंखलाएं है। यहां की हिमाच्छादित पहाडियॉ और उनसे बहकर आने वाली नदियां जब अनेक धाराओं का जल ग्रहण कर व खड़ी चट्टानों को काटकर ऊबड-खाबड रास्तों से आगे बढती रजतवर्णी धवल रेपिड्स का रूप ले लेती हैं तो ये रेपिड्स यानी नदी का तेज प्रवाह वाटर स्पोर्ट्स के लिए भारत को इन, खेलों का स्वर्ग बना देते है। भारत के उत्तर में लद्दाख से पूर्व में सिक्किम तक नदियों की ऐसी जल धाराएं साहसिक खेलों के लिए सर्वथा उपयुक्त है। विश्व के सर्वश्रेष्ठ व्हाईट रिवर रेफ्टिंग के रूप में इनका मुकाबला नहीं है। सिक्किम में तीस्ता, असम में ब्रहमपुत्र, अरूणाचल प्रदेश में भराली, ऋषिकेश के निकट गंगा, मनाली के पास व्यास, लद्दाख में सिंधु आदि नदियां में रिवर रेफ्टिंग खेल की अनुकूल स्थितियां है। भारत में व्हाइट रेफ्टिंग से सबंधित अभियानों का संचालन भारत सरकार का पर्यटन कार्यालय, इंडियन रिवर्स एसोसिएशन (आईआरआरए) और इंडियन ऐसोसिएशन ऑफ प्रोफेशनल रेफ्टिंग आउटपिरर्स (आइएपीआरओ) संस्थान करते है। रेफ्टिंग अभियानों में सुरक्षा के मापदंड, बचाव प्रकियाएं और नदी व शिखरों की संहिताएं अंतराष्ट्रीय स्तरों के अनुरूप है।

❑ **सरफिंग :** लहरों या तरंगों से संबधित यह खेल ऐसी नावों द्वारा खेला जाता हैं जो लहरों पर तैर सके, विशेष रूप से समुद्र की लहरों पर। यह नौका प्लास्टिक फोम और फाइबर ग्लास कोटेड होती है। इसकी लम्बाई लगभग सात-आठ फीट होती हैं और वजन बहुत हल्का तीन से छः किलोग्राम तक। इस नौका को चलाते समय इसको बैलेन्स करने की आवश्यकता अधिक होती हैं।

❑ **विन्ड सरफिंग :** इस नौका में पाल भी बंधा रहता है जिसके द्वारा हवा चलने पर उसका बैलेन्स करना पडता हैं। इस नाव के पाल को इधर-उघर स्थानान्तरित किया जा सकता है। नाव और पाल दोनों का एडजस्टमेंट रखना पडता हैं। उक्त दोनों पर की क्रीडां केरल के कावलम बीच व गोपालपुर बीच, कन्याकुमारी व उड़ीसा के बीचों में होती हैं। ये खेल वास्तव में सुरक्षित बीचों पर खेलने के लिए होते हैं।

❑ **स्किन डाइविंग:** इसमें पानी के अंदर तैराक रहकर अपना शोघकार्य और फोटोग्राफी कर सकता हैं। स्किन डाइविंग में प्रयोग में आने वाले उपकरण तैरने के पंख(Flippers), कोल्ड वाटर

सूट, चेहरे पर लगाने वाली मास्क, ऑक्सीजन सिलैंडर आदि होते है जिनके सहारे तैराक अधिक समय तक पानी में रूक पाता है।

❑ **स्कूबा डाइविंग:** जब स्किन डाइवर्स पानी के अंदर 'सैल्क-कन्टेन्ड' सांस लेने के उपकरणों का प्रयोग करते हैं तब वह 'स्कूबा डाइविंग' कहलाता हैं। विदेशों में व भारत में विभिन्न संस्थानों में इसका प्रशिक्षण जाता हैं।

11.3.2 जमीन पर खेले जाने वाले साहसिक खेल:

पहाड़ो पर सैर करना, लम्बी दूरी की पहाड़ी यात्राएं करना या फिर पर्वतों की नुकीली चोटियों पर चढ़ाई करना- ये सभी ऐसे साहसिक खेल है जिनकी ओर पर्यटक अब विशेष रूप से आकर्षित होने लगे हैं। नुकीली चट्टानों पर स्पाईडर मैन की तरह चढाई करने के खेल रॉक क्लाईम्बिंग की ओर बढे रूझान ने तो कृत्रिम दिवारों का निर्माण करवा वहां पर चढ़ाई के प्रति आकर्षण तक पैदा कर दिया है। रेत के धोरो में कैमल एवं जीप सफारी के साथ ही इधर के वर्षों मे किलो महलों जंगलों में, एलिफेंट सफारी ने भी साहसिक पर्यटन के विकास का कार्य किया है। भूमि से संबद्ध कुछ प्रमुख साहसिक खेल इस प्रकार से हैं -

❑ **पर्वतारोहण :** पर्वतों की चोटियों के ढलानों पर उतरना-चढना बड़ा रोमांचक एवं साहसिक होता हैं'। हजारों फीट की ऊंचाई वाले पर्वतों पर चढाई करने में साहस का जज्बा होना नितान्त आवश्यक है। कई लोग पहाड़ों पर भ्रमण, या ट्रेकिंग को ही पर्वतारोहण मान बैठने की भूल कर बैठते है। यह सही नहीं है। ट्रेकिंग और पर्वतोरोहण में भेद है। पहाड़ो पर 15 हजार फीट तक की चढाई को ट्रेकिंग कहा जाता है जबकि इससे अधिक ऊंचाई पर की जाने वाली दुर्गम चढाई को पर्वतारोहण या माउन्टेनियंरिग का दर्जा दिया जाता है। भारत में युथ होस्टल ट्रेकिंग उप माउन्टेनियरिंग के प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करता है। नेहरू इंस्टीट्यूट ऑफ माउन्टेनियंरिग देश की शीर्ष संस्था है जो देश विदेश में अत्यधिक लोकप्रिय है। साहसिक पर्यटन के तहत पहाड़ी की चोटिंयों पर दुर्गम चढाई के प्रति भी आकर्षण कम नहीं है। हिमालय में क्रिडा के रूप में पर्वतारोहण की शुरुआत 1883 में उस समय हुई जब यूरोप से डब्लयू डब्लयू ग्राहम हिमालय में आरोहण के उद्देश्य से भारत आए। भारत की उत्तर सीमा पर पश्चिम से पूर्वी सिरे तक फैले हिमालय में सैंकडों ऐसी चोटियां है, जो पर्वतारोहण के असीम अवसर प्रदान करती है। अब तो हिन्दुस्तान की सैर को आने वाले पर्यटकों में अच्छी-खासी तादाद उनकी ही होती है जो पर्वतारोहण के लिए भारत को चुनते है। देश में 1957 में इंडियन माउंटेनरिग फाउन्हेशन का जन्म हुआ। बगैर मुनाफा कमाए ऊंचाइयों पर ट्रेकिंग, पर्वतारोहण अभियानों के लिए सहायता जुटाने और आधार प्रदान करने के साथ ही साहसिक अभियानों को प्रोत्साहित कर उन्हें कियान्दित करने का महत्वपूर्ण कार्य आज इंडियन माउन्टेनरिग फाउंडेशन द्वारा ही किया जा रहा है। मौसम की भरोसेमंद भविष्यवाणियों, सुसंगठित अन्वेषण एवं अनुसंधान सुविधाओं के साथ ही उन्नत सड़क संचार की बदौलत हिमालय ने दुनिया के सबसे चुनौती भरे परन्तु सुरक्षित पर्वत के रूप में अब अपनी विश्व पर्यटन नक्शे में पहचान बना ली है।

❑ **रॉक क्लाइम्बिंग:** भारतीय उपमहाद्वीप में फैली पहाड़ियॉ और चट्टानों की बहुतायत, खड़ी चढ़ाईयां, पर्वतीय पार्श्व रॉक क्लाइम्बिंग के लिए वर्षपर्यन्त असीम अवसर प्रदान करती है। देश के बहुत से स्थानों पर कृत्रिम रॉक के जरिये भी अब क्लाइम्बिंग की जाने लगी है। भारत में रॉक क्लाइम्बिंग के लिए कुछ प्रमुख केन्द्र इस प्रकार से है-राजस्थान में माउंट आबू और सरिस्का, गढवाल में हिमालय की निचली पहाड़ियां, पुणे के आस-पास पश्चिमी घाट की पहाड़ियां, बैंगलोर-मैसूर राजमार्ग के किनारे चामुंडी हिल्स, कश्मीर और हिमाचल प्रदेश में हिमालय की निचली पहाड़ियां।

❑ **मोटर रैली:** मोटर रैली साहस एवं रोमांच का अद्भूत मिश्रण लिए ऐसा खेल है जो थोड़ा खर्चीला भी है। मोटर रैलियां बीचों, पर्वतों, वनों, सडकों में भी आयोजित होती है। प्रकृति के साथ निकटतम संबंध इन रैलीज में होता है।

❑ **ट्रेकिंग :** इस खेल का प्रमुख आधार "ट्रेक' अर्थात् पथ है। साहसिक पर्यटन के तहत देश में ट्रेकिंग के प्रति पिछले कुछ वर्षों से अत्याधिक आकर्षण पैदा हुआ है। पहाड़ों पर सैर करने के तहत पैदल यात्रा ऐसी गतिविधि है जिसमें भारी भरकम और महंगे उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती। प्रकृति के अनुरूप नजारों को नजदीक से निहारने, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों को नजदीक से देखने के लिए ट्रेकिंग के प्रति विदेशी पर्यटकों की रूचि विशेष रूप से रहती है। ट्रेकिंग के लिए भारत में हिमालय की पहाडियॉ और वनस्पति जगत विलक्षण है। यहां सभी तरह के वन है। यहां के वनों में उष्ण कटिबंध के दलदली वन, ऊंचे पेडों के वन और यहां तक कि ठंडे और गर्म रेगिस्तानी विस्तार के वन भी ट्रेकिंग के लिए आकर्षित करते है। दक्षिणी में नीलगिरी, पश्चिम में सहरत्रादि और मध्य भारत में सतपुड़ा की पहाडियां में ट्रैकिंग के बहुत से वैकल्पिक मार्ग है। पश्चिम बंगाल में संरकफू, सिक्किम में दजोगरी और उत्तरप्रदेश में हर की दून जैसे ट्रैक मार्ग पर्यटकों को मानो मौन नियंत्रण देते है। राजस्थान में अरावली की पर्वत श्रृंखलाएं ट्रेकिंग के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

❑ **सफारी:** पिछले कुछ वर्षा से साहसिक खेलों के अंतर्गत जीप, कैमल, घोड़ा, हाथी सफारी आदि के प्रति विशेष रूचि पैदा हुई है। राजस्थान में सफारी पर्यटन की दृष्टि से असीम संभावनाए हैं। इधर जयपुर में नाहरगढ़ की पहाड़ियों पर हाल के वर्षों में एलिफेन्ट सफारी की पहल की गयी है तो जैसलमेर तथा बीकानेर के धोरों में तो जीप एवं कैमल सफारी काफी वर्षों से की जा रही है। यह उस समय लाभकारी होता है जब हमारे पास समय तो कम हों पर भ्रमण के लिए स्थान अधिक हो। ऊंट सफारी राजस्थान और थार के रेगिस्तानों में (जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर आदि में), घोड़ा सफारी किलों में, राजमहलों आदि में, हाथी सफारी घने जंगलों में, जीप सफारी सडकों और नगरों में विशेष रूप से आयोजित की जाती हैं।

11.3.3 वायु या आसमान में खेली जाने वाली किड़ाएं :

आसमान की सैर अब कल्पना की उड़ान मात्र नही रही है। विभिन्न ऐसे खेल पर्यटकों में आकर्षण के केन्द्र बनते जा रहे है जिनमें हवा में तैरने से लेकर आसमान की उड़ान करना सम्मिलत हैं। ऐसे खेलों में साहस का जज्बा होने के साथ ही कुछ कर गुजरने की चाह भी सम्मिलत होती है। इधर के वर्षों में हेली स्कीइंग, पैरा ग्लाइडिंग, हैंग ग्लाइडिंग, बैलूनिंग आदि

साहसिक पर्यटन के पर्याय के रूप में उभरकर सामने आए है। कुछ प्रमुख साहसिक खेल इस प्रकार से है।

❑ **हेली स्कीइंग -** साहसिक पर्यटन के तहत भारत एशिया का पहला ऐसा देश है जहां पर हेली स्कीइंग की सुविधांए उपलब्ध है। कश्मीर में हिमालय की खूबसूरत पहाडियॉ हेली स्कीइंग के लिए अत्यधिक उपयुक्त स्थल है। हेली स्कीइंग के तहत खिलाड़ी को हेलीकोप्टर से पहाड़ के ऊपर या ढलानों पर उतारा जाता है ताकि वे ऊपर चढने में लगने वाली ऊर्जा बचा सकें।

❑ **पैराग्लाइडिंग और हैंग-ग्लाइडिंग -** साहसिक खेलों के शौकीन लोगों के बीच पैराग्लाइडिंग अत्यधिक लोकप्रिय होती जा रही है। पैराग्लाइडिंग हैंग ग्लाइडिंग का ही परिष्कृत रूप है। पैराग्लाइडिंग के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले एयरो-फायल डैने हैंग-ग्लाइडिंग के डैनों से दस गुना हल्के होते है। भारत में हिमाचल प्रदेश में बिलासपुर और मनाली में पैरा ग्लाइडिंग एवं हैंग ग्लाइडिंग को विशेष रूप से बढ़ावा दिया जा रहा है। हिमाचल प्रदेश में बीर के बिलिंग नामक स्थान पर तो वार्षिक हैंग-ग्लाइडिंग प्रतियोगिता भी आयोजित की जाती है। ऊटी में भी हैंग ग्लाइडिंग खासा प्रचलन में आ रहा है। देश में हैंग ग्लाइडिंग के कुछ प्रमुख केन्द्र जम्मू कश्मीर में श्रीनगर घाटी, मुम्बई-पुणे, राजमार्ग पर पुणे और कामसेन, महाराष्ट्र में तलेग़ांव, सतारा, सिंहगढ, मु, जंजीरा, तमिलनाडू में नीलगिरी पहाडिया,मध्यप्रदेश में महू-इन्दौर, कर्नाटक में मैंसूर, मेघालय में शिलांग, बैंगलोर के आस-पास का क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश में बिलिंग, कांगडा, धर्मशाला, शिमला, कसौली आदि हैं। हैंगग्लाइडिग के लिए भारत में हैंगग्लाइडिग क्लब पुणे, नई दिल्ली,मुम्बई, चंडीगढ, शिमला, देवलाली, बंगलूर और कालाहटी में सक्रिय है। अधिकतर क्लबों के पास अपने निजी हैंग ग्लाइड्स है। भारत में हैंग ग्लाइड्स मैसूर के राजहंस दी स्पोर्टस लिमिटेड द्वारा देश में ही बनाए जाते है। विदेशी पर्यटकों की भारतीय स्थानों पर हैंग ग्लाइडिंग के प्रति रूचि को देखते इस क्षेत्र में पर्यटन के लिहाज से विकास के लिए विशिष्ट प्रयास किए जाने चाहिए।

❑ **बैलूनिंग -** बैलूनिंग के प्रति भी भारत में आकर्षण निरंतर बढ़ रहा है। हालांकि बैलून की व्यापारिक उड़ानों के लिए देश में फिलहाल अनुमति नहीं है फिर भी आकर्षण से भरे इस दिलचस्प खेल की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। बैलून गुब्बारा 1000 वर्ग गज रिपस्टाप नायलोन से बनता है। औसत गुबारे की चौड़ाई 50 फीट और उंचाई 70 फीट होती है। उसके भीतर का आयतन 57000 घनफीट होता है। बैलून को इस्पाती रस्सियों के जरिये बॉस्केट से जोड़ा जाता है। लचीली खपच्चियों से बनी बॉस्केट को धातु की रस्सियों की बुनावट से मजबूत किया जाता है। बैलून के मुंह पर सिलेंडरों से भरी प्रोपेन या बूटेन गैसों को जलाया जाता है। पंखा चलाकर जब बैलून के मुंह से ठंडी हवा भरी जाती है और बर्नर जला दिया जाता है तब धारदार लपट से गरम हवा उठती है जिसमें बैलून हवा में ऊपर जाने लगता है। ठंडी और गरम हवा का नियमन करके बैलून का चालक उसे किसी भी निश्चित रास्ते पर मोड़ सकता है। भारत में प्रतिवर्ष नवंबर माह में अंतराष्ट्रीय बैलून समारोह आयोजित किया जाता है जिसमें दुनिया भर के लोग बैलून उड़ान के लिए सम्मलित होते है। बैलून की व्यापारिक उड़ानों के लिए भारत में अभी अनुमति नहीं है। बैलून उड़ानों के लिए पहले बैलून क्लब ऑफ इंडिया से इजाजत लेनी

जरूरी है। दिल्ली के सफदरजंग हवाई अड्डे में स्थित बैलून क्लब ऑफ इंडिया इस हवाई खेल का मुख्यालय और बैलूनों की उड़ान का प्रस्थान बिंदु हैं।

❑ **स्काई डाइविंग :** स्काई डाइविंग एक प्रकार से पैराशूटिंग का खेल ही हैं। इसके अंतर्गत सात सौ पचास से पच्चीस सौ फीट तक की उंचाई से पैराशूट की सहायता से व्यक्ति हवाई जहाज से कूदता हैं। ऊंचाई से कूदने की रफ्तार 150 कि.मी. से, तीन सौ कि.मी. प्रति घंटा के मध्य होती हैं।

11.3.4 शीतकालीन खेल:

साहसिक पर्यटन के अंतर्गत शीतकालीन खेल के रूप में स्कीइंग आज सबसे अधिक प्रचलित है। रोमांच के इस खेल में भारत विश्व में अग्रणी है। कश्मीर में गुलमर्ग का स्की-रिर्सोट अंतराष्ट्रीयख्याति का है। यहां इस खेल के आधुनिकतम उपकरण मौजूद है। गुलमर्ग में आइस स्केटिंग भी होती है। साहस के इस खेल के अंतर्गत भारत में उत्तरांचल के गढ़वाल क्षेत्र में औली स्की-रिर्सोट की भी अपनी पहचान है। औली में अत्याधुनिक टेक्नोलोजी का स्कीइंग-रिर्सोट है तो चेयर-लिफट, स्की-लिफट, आरामदेह लकड़ी के केबिन और बडे रेस्तरां भी आकर्षण के केन्द्र है। औली में हर स्तर के स्की-ढलान है। औली जैसे ही हिमाचल प्रदेश में सोलंग नाला और पूर्वी अरूणाचल प्रदेश में भी स्कीइंग की असीमित संभावनाएं है। शिमला के पास नरकंडा के ढालों पर जनवरी से अप्रैल तक स्कीइंग का शानदार मौसम रहता है तो कुफरी और रोहतांग दर्रे के ढलान भी भारत के प्रमुख स्कीइंग क्षेत्रों के रूप में अपनी पहचान बना चुके है। शिमला में आइस स्केटिंग, आइस हॉकी, फिशर स्केटिंग और स्पस्केटिंग आदि भी अब खासे लोकप्रिय खेल हो चुके है।

11.4 राजस्थान में साहसिक पर्यटन:

राजस्थान में साहसिक पर्यटन की अपार संभावनाएं हैं। यहां बर्फ और समुद्र के अलावा सब कुछ हैं। दूर तक पसरा रेगिस्तान और उसके धोरे जहां कैमल ओर जीप सफारी के लिए सर्वथा उपयुक्त है वहीं अरावली की पर्वत श्रेणियां और घने जंगलो वाले क्षेत्रों में माउन्टेनियरिंग, ट्रेकिंग का आनन्द लिया जा सकता है। यही नहीं इधर के वर्षों में आसमान में उड़ने से संबद्ध विभिन्न साहसिक खेलों में भी राजस्थान की लोकप्रियता सुदूर देशों तक में हुई हैं। राजस्थान में साहसिक पर्यटन के अंतर्गत नदियों में की जाने वाली विभिन्न जल क्रीडाओं का भी अपना विशिष्ट स्थान है। इस संबंध में वर्ष 1982 के एशियाई खेलों की मेजबानी को भी विशेष रूप से याद किया जा सकता है। एशियाड में हुई नौकायन प्रतियोगिता का आयोजन जयपुर की रामगढ झील पर किया गया था। तब झील में पर्याप्त पानी था। उसी दौरान झील नौकायन केन्द्र की स्थापना की गई थी। अनेक नौकाएं वहां उपलब्ध कराई गई थी।

राजस्थान की झीलें और नदियों वाटर स्पोर्ट्स के लिए सर्वथा उपयुक्त है। अलवर के निकट सुरम्य पहाड़ियों के बीच सिलीसेड झील, झीलो की नगरी से मशहूर उदयपुर की झीलों में पानी में खेले जाने वाले खेलों को विशेष रूप से खेला जा सकता है। उदयपुर से पचास किलोमीटर दक्षिण में स्थित जयसमन्द झील तो वाटर स्पोर्ट्स के लिए आदर्श स्थान हैं। करीब

नब्बे स्कवायर किलोमीटर में फैली जयसमन्द झील में हर तरह के वाटर स्पोर्ट्स का आयोजन किया जा सकता हैं। हालांकि इधर के वर्षों में इस ओर ध्यान भी दिया जा रहा है परन्तु इस दिशा में अभी और ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। कोटा में चम्बल नदी में सेना द्वारा वाटर स्पोर्ट्स का प्रदर्शन समय-समय पर किया जाता रहता हैं। चम्बल नदी के अलावा भरतपुर में बंधबारैठा, अलवर में सिलीसेड, उदयपुर में जयसमन्द, जयपुर में रामगढ झील में वाटर स्पोर्ट्स के विकास की विपुल संभावनाएं हैं। पर्यटन की दृष्टि से इस दिशा में ध्यान दिया जाए तो इसके दूरगामी परिणाम सामने आ सकते हैं।

वाटर स्पोर्ट्स के साथ ही राजस्थान में पहाड़ा क्षेत्रों में अच्छे मौसम के दौरान पर्वतारोहण, ट्रेकिंग आदि के प्रति इधर विशेष रूप से पर्यटकों का रूझान बढा है। राजस्थान के पर्वतीय क्षेत्रों में अच्छे मौसम में पर्वतारोहण की अच्छी संभावनाएं रहती हैं। प्रदेश के मेवाड़ क्षेत्र में उदयपुर, कुंभलगढ, चित्तौड़ और माऊंट आबू के चारों और के क्षेत्र के साथ अलवर में सारिस्का ओर जयपुर में आमेर और रामगढ की पहाडियां पर्वतारोहण के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

पर्वतारोहण संस्थाओं द्वारा अब तो राज्य के विभिन्न पर्वतीय इलाकों में साहसिक खेलों के प्रशिक्षण के आयोजन भी नियमित रूप से किए जाने लगे हैं। बाहर से आने वाले पर्यटकों को भी इन स्थानों पर पर्वतारोहण, ट्रेकिंग, रॉक क्लाईम्बिंग करते हुए देखा जा सकता है। पर्वतों पर साहस और रोमांच के शौकीन छोटे-छोटे समूहों में पर्वतीय क्षेत्रों के साथ ही सघन वनों वाले क्षेत्रों में ट्रेकिंग करते हैं। जयपुर में आमेर और रामगढ के साथ गलता और झालाना की पहाडियों में भी नियमित ट्रेकिग अभियान चलाए जा रहे हैं। इसमें कई निजी संस्थान भी जुडे हैं। राजस्थान राज्य खेल परिषद द्वारा भी पर्वतारोहण प्रशिक्षण आयोजन की ओर पहल की गयी है। परिषद द्वारा समय-समय पर स्कूली बच्चो को माउंट आबू की पहाडियो में प्रशिक्षण भी दिया गया।

पर्वतारोहण के साथ रॉक क्लाईम्बिंग के अंतर्गत जयपुर में चौगान स्टेडियम में राज्य खेल परिषद द्वारा एक कृत्रिम दीवार भी बनाई गई है। यहां सुबह और शाम नियमित रूप से बच्चों को वाल क्लाइंबिग का प्रशिक्षण दिया जाता हैं। बीकानेर में भी कृत्रिम दीवार के माध्यम से प्रशिक्षण की सुविधा है। इस खेल के प्रति पिछले कुछ सालों में स्कूली बच्चों का रूझान काफी बढा हैं। कई विद्यालयों के बच्चे प्रतिवर्ष नियमित अभियान पर जाते हैं। पर्वतारोहण की प्रतियोगिताएं भी प्रतिवर्ष आयोजित की जाती है। यहीं नहीं प्रदेश के बच्चे राष्ट्रीय प्रतियोगितायों में भी हिस्सा लेते हैं। अकेले जयपुर में इन दिनों करीब आधा दर्जन से ज्यादा निजी पर्वतारोहण संस्थान चल रहें हैं। दो बार माउंट एवरेस्ट फतह करने वाली राजस्थान की संतोष यादव ने भी अपने पर्वतारोहण की शुरूआत जयपुर में झालाना की पहाड़ियों से ही की थी। बीकानेर में मगन बिस्सा और उनकी पत्नी द्वारा माउन्टेनियरिंग प्रशिक्षण का महत्ती कार्य वर्षों से किया जा रहा है।

पर्वतारोहरण ट्रेकिंग और जल क्रिडाओं के साथ ही राजस्थान में आसमान में उड़ान के साहस और रोमांच से भरे खेलों के प्रति भी कम आकर्षण नहीं है। राजस्थान के पहाड़ी और मैदानी क्षेत्रों में पैरा सेलिंग और पैरा ग्लाइडिंग की अच्छी संभावनाएं है। नीलगगन मे उड़ने के

लिए जयपुर का विद्याधरनगर स्टेडियम खासा लोकप्रिय भी हो रहा है। राज्य सरकार ने एडवेंचर स्पोर्ट्स के लिए इस स्टेडियम को विशेष रूप से चुना है। यहां रिटायर्ड स्वाड्रन लीडर एसपीएस कौशिक के निर्देशन में पैरासेलिंग का आनंद उठाया जा सकता है।

माउंट आबू की ऊंची पहाड़ियों और साथ में बड़े बड़े मैदान भी पैरासैलिंग और पैरा ग्लाइडिंग के लिए अत्यधिक संभावनाएं लिए हैं। उदयपुर में जयसमन्द और जयपुर में सांभर झील के सूखे तट पर पैरासैलिंग और पैरा ग्लाइडिंग का शानदार प्रदर्शन होता रहा है। प्रदेश में पिछले एक दशक से नाहरगढ की पहाड़ियों में भी पैरासैलिंग और पैराग्लाइडिंग और बैलूनिंग होती आ रही है। इधर के वर्षों में तो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताएं भी इन खेलों की यहां हुई हैं। राजस्थान खेल परिषद् के पास पैरासेलिंग और ग्लाइडिंग के लिए अच्छे उपकरण मौजूद है और इनके जरिये बच्चों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम भी परिषद् द्वारा चलाए जाते हैं। गुलाबी नगर में तो पिछले कई सालों से गुब्बारों की उडान यहां के लोगों के लिए रोमांचक नजारा प्रस्तुत करती हैं। बडे-बडे गुब्बारों में बैठकर गैस के जरिये आसमान की सैर अपने आप में जहां साहस का काम हैं, वही इसे देखने वाले भी रोमांचित हो उठते हैं। जयपुर में बैलूनिंग का प्रदर्शन पिछले कुछ सालों से नियमित चल रहा हैं लेकिन बेहद खर्चीला होने के कारण स्थानीय स्तर पर अभी इस साहसिक खेल के लोग नहीं हैं। अधिकांशत: दिल्ली और फरीदाबाद से जुडे कुछ निजी क्लब के लोग ही यहां इस खेल का प्रदर्शन करते रहे हैं। राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों को वहां मौजूद साहसिक पर्यटन संभावनाओं के दृष्टिगत अगर विकसित किया जाए तो निश्चित ही यह पर्यटन विकास में कारगर कदम साबित हो सकता है।

मरूस्थली प्रदेश राजस्थान में इधर के वर्षों में कैमल, जीप सफारी पर्यटन ने भी विशेष रूप से अपनी पहचान बनायी है। पहले प्रदेश के बाड़मेर और जैसलमेर में फैले थार के मरूस्थल में यदा-कदा सीमा सुरक्षा बल के जवान ही ऊंटों पर गश्त करते नजर आया करते थे लेकिन आज यह इलाका कैमल सफारी के लिए मशहूर हैं। बडी संख्या में देशी और विदेशी पर्यटक जैसलमेर और बाड़मेर के रेतीले टीलों में कैमल सफारी का आनन्द लेते देखे जा सकते हैं। नाहरगढ़ की पहाड़ियों में पर्यटन विभाग एवं वन विभाग द्वारा हाल के वर्षों में एलीफेंट सफारी की शुरुआत की गयी है। बीकानेर, जैसलमेर के धोरों पर जीप सफारी भी पर्यटक विशेष रूप से करते हैं।

जयपुर में अमरूदो का बाग, चित्रकूट स्टेडियम और लक्ष्मी विलास होटल के मैदान में मोटोकास के आयोजन भी इधर विशेष रूप से किये जाते रहे हैं। इन मैदानों पर मोटोकास के लिए कृत्रिम जम्प और बाधाएं बनाई जाती हैं। कुछ निजी क्लबों द्वारा हर साल इसका आयोजन किया जाता हैं। टीवीएस और यामाहा जैसी मोटरसाईकिल निर्माता बडी कंपनियों द्वारा प्रायोजित इस रोमांचक खेल में देशभर के मोटर साईकिल चालकों के साथ स्थानीय चालकों की भी इसमें रूचि कम नहीं रहती हैं।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि राजस्थान में साहसिक पर्यटन की असीम संभावनाएं हैं। साहसिक पर्यटन गंतव्य के रूप में राज्य के संभावना वाले क्षेत्रों को चिन्हित कर उनको पर्यटन नक्शे पर लाए जाने की आवश्यकता है। अगर ऐसा होता है तो निश्चित ही आने वाले वर्षों में राजस्थान की पहचान यहां के किले, महल और स्थापत्यकला से समृद्ध बेमिशाल

इमारतों, संस्कृतिक की अनमोल विरासत के स्थान के साथ ही साहसिक पर्यटन स्थल के रूप में भी सुदूर देशों तक होगी। तब यहां आने वाले देशी-विदेशी पर्यटकों की संख्या में और भी बढोतरी होगी।

11.5 साहसिक पर्यटन को बढ़ावा देने के उपाय:

राजस्थान में साहसिक पर्यटन की अपार संभावनाओं को देखते हुए यह जरूरी है कि यहां साहस और रोमांच से जुड़े खेलों को सभी स्तरों पर बढावा दिया जाए। साहस और रोमांच से जुड़े खेलों से साहसिक पर्यटन विकास के लिए यह आवश्यक है कि -

- लम्बे ट्रेक वाले स्थानों पर ट्रेकर्स के लिए ठहरने की पर्याप्त और अच्छी सुविधाओं का विकास किया जाए। साथ ही राज्य के ट्रेकिंग स्थलों को ठीक से चिन्हित कर वहां के जीव जन्तुओं, और पेड़-पौधों के बारे में पर्यटकों को आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराने की दिशा में पहल की जाए।
- पानी के खेलों के लिए उपयुक्त झीलों और नदियों को चिन्हित कर वहां जल क्रिडाओं के लिए अनुकूल व्यवस्थाएं की जाए। साथ ही जलीय क्षेत्रों में जल क्रिडाओं संबंधित राज्य, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं के आयोजन को बढावा दिया जाए। इससे साहसिक पर्यटन वातावरण का निर्माण होगा और जल क्रिडाओं वाले प्रदेश के पर्यटन स्थल विश्व मानचित्र. पर भी अपनी पहचान बना सकेंगे। इसी से यहां और पर्यटकों के आगमन को सुनिश्चित किया जा सकेगा।
- साहसिक खेलों की सुविधाओं की सहज उपलब्धता की ओर ध्यान देने की भी विशेष आवश्यकता है। इस दृष्टि से साहसिक खेलों के आवश्यक उपकरणों को पर्यटकों की आर्थिक क्षमता के आधार पर उपलब्ध कराने की दिशा में पहल की जाए ताकि सामान्य आर्थिक क्षमता के पर्यटक भी साहस और रोमांच के खेलों का आनंद ले सकें।
- साहस और रोमांच से जुड़े खेलों को सिखाने, प्रशिक्षण देने तथा इनमें भाग लेने आने वाले सैलानियों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित व्यक्तियों की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए।
- साहस और रोमांच के खेलों से संबद्ध पर्यटन स्थलों पर पहुंच को सुगम करने के लिए वहां आवागमन की सुविधाओं का विकास किया जाए।
- साहसिक पर्यटन से संबद्ध खेलों में भाग लेने के लिए शारीरिक क्षमता के मानदंड जटिल एवं कड़े नहीं होकर व्यावहारिक होने चाहिए ताकि सामान्य पर्यटक इन मापदंडों को पूरा कर अपनी रूचि के अनुसार इनमें भाग ले सकें।
- साहस और रोमांच के खेलों से संबद्ध प्रदेश के पर्यटन स्थलों का व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए।

साहस और रोमांच के खेलों के लिए राजस्थान देश का उत्कृष्टतम केन्द्र बन सकता है, यदि सुनियोजित तरीके से इस पर ध्यान दिया जाए। इस दिशा में प्रयास इस रूप में किए जाएं कि प्रदेश के पर्यावरण को क्षति पहुंचाए बगैर हम साहसिक पर्यटन गंतव्य के रूप में राजस्थान का विकास कर सकें। इस दिशा में ध्यान देने की आवश्यकता यह भी है कि हर क्रिया

प्रतिक्रिया को जन्म देती है। साहसिक पर्यटन विकास की क्रिया पर्यावरण को क्षति पहुचाने वाली भी हो सकती है, इसलिए यह जरूरी है कि इसके नकारात्मक पहलुओं को ध्यान में रखकर विकास को अमलीजामा पहनाया जाए। साहसिक खेलों के विकास के अंतर्गत पहाड़ी क्षेत्रों में स्वार्थपरक लोगों द्वारा जमीनों पर अनाधिकृत कब्जा करने, नियमों का उल्लंघन कर होटलों, आवासों का निर्माण करने से देश के पहाड़ी स्थलों के पर्यावरण को बहुत क्षति पहुंची है। इसे ध्यान में रखते हुए राजस्थान में आरंभ से ही ऐसी प्रवृतियों पर अंकुश लगाया जाए। प्राकृतिक सौन्दर्य युक्त स्थलों पर वनों को नुकसान पहुंचाए बगैर कैसे पर्यटन गतिविधियां हों, इस पर गंभीरता से विचार किया जाए। पर्वतीय और वन क्षेत्रों में पर्यटन गतिविधियां से कचरा जमा होने की प्रवृति को आरंभ से ही रोके जाने की पहल आदि पर ध्यान देकर ही साहसिक पर्यटन को बढावा दिया जाए तभी इस पर्यटन का दीर्घकालीन लाभ प्रदेश को मिल सकता है। इसलिए यह जरूरी है कि क्षणिक लाभ के लिए दीर्घकालिक क्षति को ध्यान में रखकर ही साहसिक पर्यटन को प्रदेश में बढावा दिया जाए।

11.6 पर्यटन नीति और साहसिक पर्यटन विकास:

राजस्थान सरकार द्वारा वर्ष 2001 में घोषित नई पर्यटन नीति में साहसिक पर्यटन पर विशेष ध्यान देने की बात कही गयी है। नई पर्यटन नीति के अंतर्गत निजी क्षेत्र द्वारा पर्यटन एवं मनोरंजनात्मक सुविधाओं के विकास में सहयोग प्रदान करने के लिए एक समर्थ कानूनी ढांचा प्रदान करने के लिए उपयुक्त नियम, मार्ग निर्देश तैयार किए जाने पर जोर दिया गया है। नीति में कहा गया है कि राजस्थान प्रदेश प्रमुख रूप से मरूस्थलीय है, परन्तु विदेशी एवं स्वदेशी पर्यटकों को अधिक आकर्षित करता है। उनमें से अधिकाशं ने ट्रेकिंग, घुडसवारी एवं ऊंट सफारी, पोलो एवं गोल्फ जैसी गतिविधियों के प्रति अपनी गहन रूचि प्रकट की है। इसे देखते हुए साहसिक पर्यटन की इस प्रकार की गतिविधियों को सभी स्तरों पर बढावा दिया जाना चाहिए।

पर्यटन नीति में स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि मरूस्थल के अलावा, सम्पूर्ण राज्य में अनेक झीलें हैं, जिनमें निर्धारित तरीके जल-क्रीड़ाएं विकसित की जाएगी। राजस्थान की चुनिन्दा झीलों में, जम्मू एवं कश्मीर पर्यटन विभाग से परामर्श कर हाऊस बोट्स नौकाएं चलाई जाएंगी। विशेष जल क्रीड़ा गतिविधियां जैसे नौकायन, केनोइंग, कयाकिंग वाटर स्पोर्ट्स आदि प्रारम्भ की जाएंगी। चम्बल जैसी बारहमासी नदियों में नदी नौकाएं चलाई जाएंगी तथा इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के प्राधिकारियों से परामर्श कर इन्दिरा गांधी नहर में "केनाल सफारी ' चलाने की सम्भावनाओं का भी पता लगाया जाएगा। प्रयास किए जाएंगे कि जम्मू-कश्मीर एवं केरल राज्यों से झीलों में चलने वाले शिकारों को प्राप्त किया जाए एवं उनको राज्य की बड़ी झीलों में "लहरों पर महल" के नाम से विपणन किया जाए। इन हाउस बोट्स का बाहरी स्वरूप राज्य की विशिष्ट कलात्मक शैली के अनुरूप होगा। इन गतिविधियों से पर्यटकों का ने केवल मनोरंजन होगा, अपितु इससे वे राज्य के भीतर अधिक समय तक रूक भी सकेंगे, जिससे स्थानीय निवासियों के लिए रोजगार के बहुत से अवसर उत्पन्न होंगे।

11.7 सारांश:

पर्यटन के आधुनिक रूप में साहसिक यात्राओं का विशेष योगदान रहा है। साहसिक यात्राएं करते हुए ही बहुत से यात्रियों ने पर्यटन के नए-नए स्थानों की खोज कर ली थी तो पर्यटन का भी इन गतिविधियों से निरंतर विस्तार हुआ। इधर के वर्षों में साहसिक पर्यटन की ओर विश्व पर्यटन का विशेष रूझान हुआ है। भारत में पहाड़, नदियां, झरने, चट्टानें, घने जंगल, दूर तक फैले समतल मैदान और रेगिस्तान आदि साहसिक खेलों के लिए सर्वथा अनुकूल हैं। यहां पर साहस और रोमांच से भरे खेलों की अपार संभावनाओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि साहसिक पर्यटन में हिन्दुस्तान विश्व पर्यटन में अपनी विशिष्ट पहचान बना सकता है।राजस्थान भी साहसिक पर्यटन की अपार सभावनाएं लिए हैं। यहां बर्फ और समुद्र के अलावा सब कुछ है। दूर तक पसरा रेगिस्तान और उसके धोरे जहां कैमल ओर जीप सफारी के लिए सर्वथा उपयुक्त है वहीं अरावली की पर्वत श्रेणियां और घने जंगलो वाले क्षेत्रों में माउन्टेनियरिंग, ट्रेकिंग का आनन्द लिया जा सकता है। यही नहीं इधर के वर्षों में आसमान में उड़ने से संबद्ध विभिन्न साहसिक खेलों में भी राजस्थान की लोकप्रियता सुदूर देशों तक में हुई हैं। राजस्थान में पहाड़ी क्षेत्रों में अच्छे मौसम के दौरान पर्वतारोहण, ट्रेकिंग आदि के प्रति इधर विशेष रूप से पर्यटकों का रूझान बढा है।

साहसिक पर्यटन की प्रदेश की अपार संभावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए ही राज्य की पर्यटन नीति में भी साहसिक पर्यटन को बढावा देने पर जोर दिया गया है। पर्यटन नीति में साहस और रोमांच भरे खेलों को बढावा देकर पर्यटकों का अधिकाधिक मनोरंजन किए जाने के साथ ही स्थानीय लोगों की आय वृद्धि के उपाय किए जाने पर विशेष रूप से जोर दिया गया है। इस इकाई में राजस्थान में साहसिक पर्यटन के विभिन्न आयामो के बारे में आपको जानकारी दी गयी है ताकि आप भी साहसिक पर्यटन विकास में सहभागी बन सकें।

बोध प्रश्न :

1. साहसिक पर्यटन की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

2. भारत में साहसिक पर्यटन की क्या सभावनाएं हैं?

   .....

   .....

3. साहस और रोमांच से जुडे खेलों के जरिए कैसे पर्यटन का विकास किया जा सकता है?

   .....

   .....

4. राजस्थान में साहसिक पर्यटन की संभावनाओं पर आलोचनात्मक टिप्पणी प्रस्तुत करें।

   .....

   .....

5. राजस्थान की पर्यटन नीति में साहसिक पर्यटन को बढावा देने के लिए किए गए प्रावधानों पर प्रकाश डालते हुए साहसिक पर्यटन को बढावा देने के उपायों की चर्चा करें।

.....

.....

इकाई -12: पधारो म्हारे देस...

रूपरेखा :

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 पर्यटन और विकास

12.3 घरेलू पर्यटन और विकास

12.4 पर्यटन और संस्कृति क्षरण

12.5 पधारो म्हारे देस...

12.6 सारांश

12.0 उद्देश्य:

इस इकाई को पढने के बाद आप -

- पर्यटन से विकास पर पड़ने वाले प्रभावों को जान सकेंगे।
- स्वदेशी पर्यटन के महत्व को समझते आर्थिक विकास में इसकी भूमिका से अवगत हो सकेंगे।
- संस्कृति संरक्षण की पर्यटन सोच से जुड़ सकेंगे।
- राजस्थान के पर्यटन नारे के अन्तर्निहित तत्वों के बारे में जान सकेंगें।
- राजस्थान की पर्यटन संस्कृति को समझ सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना:

पर्यटन विश्व का तेजी से बढता ऐसा उद्योग है जो विदेशी मुद्रा प्राप्ति का बड़ा स्त्रोत ही नहीं है बल्कि बहुत से लोगों को रोजगार प्रदान करने की क्षमता भी रखता है। किसी भी देश के लिए पर्यटन दरअसल आज आपसी सद्भाव-भाईचारे की भावना को बढावा देने वाले उद्योग के रूप में भी अपनी विशिष्ट पहचान बना चुका है। भारत के संदर्भ में तो यह विशेष रूप से कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिक उन्माद, क्षेत्रीयवाद व आतंकवाद जैसी समस्याओं के समाधान की दिशा में पर्यटन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, बशर्ते कि सुनियोजित प्रबंधन के तहत पर्यटन को सभी स्तरों पर क्रियान्वित किया जाए। यही नहीं पर्यटन के जरिये ही सत्त आर्थिक विकास के साथ साथ देश के सम्यक विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है। पर्यटन के जरिये देश की विरासत तथा लोगों की सूझ-बूझ विकसित कर राष्ट्रीय सौहार्द और एकता तथा राष्ट्रीय गौरव की भावनाओं को बढावा दिया जा सकता है। पर्यटन वस्तुत: राष्ट्रीयता का प्रत्यक्ष समर्थक है। इससे पारम्परिक एवं जातीय संस्कृति और समुदाय में भी गौरव की भावना को बढावा मिलता है।

इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि एक स्थान पर दूसरे स्थान के पर्यटक जब पहुंचते हैं तो वे वहां पर अपनी-अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का अप्रत्यक्षत: कहीं आदान-प्रदान भी कर रहे होते हैं। पर्यटन स्थलों के निवासियों को विश्व में जो कुछ हो रहा है, उसके बारे में

जानकारी वहां आने वाले अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटक ही देते हैं। राजस्थान के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि यहां आरंभ से ही पर्यटन की संस्कृति रही है।

राजस्थान की बहुरंगी संस्कृति में 'अतिथि देवो भव:' की परम्परा आरंभ से ही रही है। यहां मेहमाननवाजी की शानदार परम्परा में आगंतुकों के लिए पलक पावड़े बिछाने की सोच ने ही पर्यटन को आजादी से पहले ही व्यवस्थित रूप प्रदान कर दिया था। तब, जब राजा-महाराजाओं ने अपने किले,महलो के द्वार बाहर से आने वाले लोगों के लिए खोलने प्रारंभ कर दिए थे। लोक संस्कृति में भी 'पधारो म्हारे देस' का आज का पर्यटन नारा न जाने कब से मरूस्थल की रेत राग से ऐक-मेक होता जन-जन की आवाज बना हुआ है। क्या है पर्यटन की राजस्थान की संस्कृति, कैसे यहां की पर्यटन संस्कृति से विकास के नए आयाम स्थापित किए हैं, संस्कृति संरक्षण की सोच का विस्तार किस प्रकार से हो सकता है? आईए, जानें -

12.2 पर्यटन और विकास:

पर्यटन को विकास का पर्याय कहा जा सकता है। यह तो सर्वविदित ही है कि विदेशी मुद्रा प्राप्ति का पर्यटन सबसे बडा स्त्रोत है। इसके साथ ही सच यह भी है कि पर्यटन ही वह एक मात्र स्त्रोत है जिसमें थोड़े प्रयासों, या यू कहें कि लोगों की समझ को विकसित करके ही आय अर्जन की जा सकती हैं। यह बात हमारे देश के लिए इस लिए महत्वपूर्ण है कि यहां पर्यटन के लिए अखूट संशाधन हैं। विविधताओं की यहां की संस्कृति, ऐतिहासिक विरासत, प्राकृतिक विविधताएं आदि सभी कुछ पर्यटन की अपार संभावनाएं लिए हैं। ऐसे में पर्यटन विकास के लिए ठोस उपाय यदि देश में संस्कृति संरक्षण की सोच के साथ किए जाएं तो निश्चित ही उसके बेहतर परिणाम टिकाऊ विकास के रूप में स्वत: ही सामने होंगें।

पर्यटन ही एक मात्र ऐसा उद्योग है जिसे सही मायने में जन उद्योग कहा जा सकता है। पर्यटन को विकास का पर्याय इस रूप में कहा जा सकता है कि इससे विकास के रास्ते खुलते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पर्यटकों की किसी स्थान पर अधिक आवाजाही से उस स्थान का स्वत: ही विकास प्रारंभ हो जाता है। उदाहरण के रूप में इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि जब किसी स्थान पर कोई पर्यटक आता है तो वह वहां कुछ दिन के लिए रहता है, इसके लिए वह होटल में ठहरता है। वह वहां के दर्शनीय स्थलों की सैर करता है तो वाहन का उपयोग करता है, अलावा इसके स्थान विशेष की वस्तुओं को क्रय भी करता है, वह खान-पान के तहत खर्च भी करता है। कुल मिलाकर जितनी भी कियाएं वह करता है, उन सबमें अलग-अलग रूप में वह मुद्रा खर्च करता है और यह मुद्रा सीधे उस पर्यटक की सेवाएं अथवा वस्तु उपलब्ध कराने वाले को मिलती है। इससे उस स्थान विशेष की अर्थव्यवस्था में एक पर्यटक प्रत्यक्षत: कितना योगदान देता है, इसे स्पष्ट ही समझा जा सकता। एक ओर जहां पर्यटक स्थानीय लोगों को अपनी पर्यटन क्रियाओं से रोजगार प्रदान करता है वहीं दूसरी ओर अपनी क्रियाओं से वह स्थानीय आय वृद्धि का कार्य भी करता है।

अगर किसी स्थान विशेष पर पर्यटन पर आने वाल पर्यटक अथवा पर्यटकों को वहां का परिवेश, वहां का वातावरण, मेहमाननवाजी पसंद आती है तो वहां बार-बार पर्यटक आऐंगे और ऐसे में उस स्थान में होटल चलाने वाले, स्थानीय गाईड, खान-पान वाले रेस्टोरेंट, हस्तकलाओं

के सामान विक्रेताओं, टैक्सी चालकों आदि सभी को लाभ मिलता है और यह लाभ वहां की निरंतर आय वृद्धि करता है और ऐसे में एक समय वह भी आता है जब पर्यटन स्थल के स्थानीय लोगों का जीवन स्तर भी उच्च होने लगता है। इस सबमें महत्वपूर्ण भूमिका स्थानीय जन की ही होती है न कि सरकार की। ऐसे में आज आवश्यकता इस बात की अधिक है कि पर्यटन में अधिकाधिक जन भागीदारी सुनिश्चित की जाए। पर्यटन पर पर्यटक जो व्यय करता है उसका लाभ उस स्थान विशेष के विकास पर ही खर्च होता है, इस बात को समझते हुए अगर पर्यटन उद्योग के विकास पर ध्यान दिया जाए तो इसके बेहतर परिणाम सामने आ सकते है।

हालांकि पर्यटन नीतियों में पर्यटन के तीव्र विकास पर विशेष ध्यान देने के पहलुओं को भी सम्मलित किया जाता रहा है परन्तु यह सब संभव कैसे होगा? यह सब संभव होगा तो बस लोगों की पर्यटन उद्योग में अधिकाधिक भागीदारी से ही। यह भागीदारी पर्यटन उद्योग में निवेश करने के साथ ही यहां आने वाले पर्यटकों को बेहतर वातावरण प्रदान कर की जा सकती है। पर्यटन उद्योग के अंतर्गत निवेश के प्रोत्साहन के अंतर्गत सरकार द्वारा अनेक रियायतें भी प्रदान की गयी है। इन रियायतों का पर्यटन उद्योग को कितना लाभ मिलता है यह तो एक अलग पहलू है परन्तु इस बात से तो इन्कार किया ही नहीं जा सकता कि पर्यटन को अगर स्थानीय विकास की महत्ती गतिविधी के रूप में स्वीकार करके इस दिशा मे प्रयास किया जाता है तो निश्चित ही आने वाले वर्षो में पर्यटन से प्रदेश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास को तीव्र गति दी जा सकती है।

दरअसल पर्यटन विदेशी मुद्रा प्राप्ति का सबसे बड़ा स्त्रोत्र है। विदेश से आने वाले सैलानियों का ग्राफ इस बात पर भी निर्भर करता है कि उस देश में माहौल कैसा है। यहां के सदानीरा शांति के वातावरण, यहां के अलमस्त जीवन की पहचान यहां के लोग ही यहां आने वाले पर्यटकों को करा सकते हैं। ऐसे में पर्यटन का बेहतर वातावरण निर्माण अगर सभी स्तरों पर किया जाए तो इसके बेहतर परिणाम निकट भविष्य में आ सकते है।

यहां गौरतलब बात यह भी है कि हर वर्ष 40 लाख भारतीय विदेश जाते हैं। इसकी वजह आसानी से समझी जा सकती है। समूचा पर्यटन उद्योग विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश भारत के लोगों की मानसिकता को समझते हुए उन्हें लुभावने विज्ञापनों अन्य बाजारी तरीकों से अपनी ओर आकर्षित करने की दिशा में प्रयत्नशील है। इसकी बानगी प्रचार माध्यमों में लगातार प्रकाशित हो रहे मलेशिया, थाइलैण्ड, इटली, स्विट्जरलैंड, मैक्सिकों, आस्ट्रिया आदि के पैकेज ट्यूर विज्ञापनों से स्वत: ही मिलती है। क्या भारत के चित्ताकर्षक पर्यटन स्थल विश्व के देशों से कम हैं' दरअसल समृद्ध विरासत के भारतीय पर्यटन स्थलों का समुचित प्रचार-प्रसार करने के साथ ही भारत आने के लिए विदेशी पर्यटकों को पैकेज ट्यूर बनाकर आमंत्रित किया जाए तो निश्चित ही इसके बेहतर परिणाम सामने आएंगे। अलावा इसके देश की ऐसी इन्टरनेट साईट का विकास किया जाए जो इस बात को दूसरे देशो के सामने रखे कि भारत ही एक मात्र देश है जहां विभिन्न संस्कृतियॉ का संगम ही नही है बल्कि एक समय में अनेक ऋतुओं का आनंद भी यहां लिया जा सकता है। वैदिक संस्कृति की सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचार इस दिशा में महत्ती पहल हो सकती है। इन्टरनेट को टूरनेट के रूप में परिवर्तित करके इस दिशा में सार्थक प्रयास किए जा सकते हैं।

जरूरी यह भी है कि बेहतर पर्यटन प्रबंधन के तहत देश में आने वाले पर्यटकों को सम्मानजनक वातावरण प्रदान करने के लिए केन्द्र सहित राज्य सरकारें अपने स्तर पर पहल करें। राज्यों को यह समझना होगा कि पर्यटन के विकास से ही वहां शांति और अमन का वातावरण कायम होगा और इसी से आर्थिक विकास को गति दी जा सकेगी। पर्यटन को बजाय सरकारी उद्योग के रूप में क्रियान्वित किए जाने के जन उद्योग के रूप में कियान्वित किए जाने के निरंतर प्रयास भी इस दिशा में जरूरी हैं। इसी से पर्यटन व्यवहार में समग्र विकास का आधार बन सकता है।

12.3 घरेलू पर्यटन और विकास:

विश्व पर्यटन संगठन ने पर्यटन को 'व्यक्तियों की सावकाश ' कारोबार या अन्य प्रयोजनों के लिए निरन्तर एक वर्ष से कम अवधि के लिए इनके सामान्य परिवेश से अलग किसी स्थान की यात्रा करने या ठहरने से संबंधित कार्यकलाप के रूप में परिभाषित किया हैं। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय एवं घरेलू पर्यटन दोनों सम्मिलित हैं। यही नहीं विश्व पर्यटन संगठन का तो यहां तक अनुमान है कि पर्यटन, विश्व घरेलू पर्यटन 10:1 के अनुपात से अतर्राष्ट्रीय पर्यटन से कहीं अधिक है। देश में प्रतिवर्ष 250 मिलियन घरेलू पर्यटक 95 हजार करोड रूपये से भी अधिक की आय का सृजन करते हैं। ये तथ्य इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करते है कि घरेलू पर्यटन के विकास की दिशा में आज भी भारतीय पर्यटन उद्योग में अपार संभावनाए मौजूद है। ऐसे में क्या यह जरूरी नहीं हो जाता कि घरेलू अथवा स्वदेशी पर्यटन की ओर विशेष ध्यान दिया जाए?

विश्व पर्यटन संगठन की सामान्य नीति में भी स्वदेशी पर्यटन विकास पर विशेष बल दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्राष्ट्रीय यात्रा एवं पर्यटन पर रोम में वर्ष 1963 के हुए सम्मेलन में स्वदेशी पर्यटन के महत्व को समझाते हुए ही इस बात पर विशेष ध्यानाकर्षण किया गया कि एक विकसित स्वदेशी यात्रा उद्योग विदेशों से आगन्तुकों के स्वागत के लिए आधार निर्मित करता है। इस सम्मेलन में पर्यटन को एक महत्वपूर्ण सामाजिक तथा आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारक मानते हुए विभिन्न देशों की सरकारों को पर्यटन, विशेषकर घरेलू पर्यटन को बढावा दिये जाने की सिफारिश भी की गयी थी।

विशाल भू-भाग और प्राकृतिक विविधताओं के प्रदेशों वाले हमारे देश की खास बात ही यह है कि यहां पर वर्ष पर्यन्त विभिन्न ऋतुओं का आनंद लिया जा सकता है। देश के बड़े भू-भाग में बसने वाले विभिन्न प्रदेशों के लोग धार्मिक आस्था, साहसिक गतिविधियॉ, सैर सपाटे आदि के लिए निरंतर एक दूसरे प्रांत की सैर करते है। यह सब उनका स्वदेश पर्यटन ही तो है। इस स्वदेश पर्यटन पर विशेष ध्यान न दिया जाना या फिर इसके अव्यवस्थित रूप की ही परिणति है कि आर्थिक रूप में आज भी घरेलू पर्यटकों के महत्व को अर्थव्यवस्था के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। जबकि यह ऐसा पर्यटन है जो देश में पर्यटन वातावरण निर्माण के साथ ही आज भी बहुत से लोगों के रोजगार का साधन बना हुआ हैं। यह सही है कि विदेशी पर्यटकों के आगमन से देश को काफी बडी मात्रा में विदेशी मुद्रा का अर्जन होता है तथा अर्थव्यवस्था के विकास को भी काफी हद तक गति दी जा सकती है परन्तु विदेशी पर्यटकों के

आगमन को प्रोत्साहन का आधार स्वदेशी पर्यटन ही हो सकता है। दरअसल स्वदेशी पर्यटन देश में आने वाले विदेशी सैलानियो के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने में विशेष रूप से मदद करता है। जब लोगों में कम खर्च वाले स्वदेशी पर्यटन की भावना का विकास होगा तो निश्चित ही इस भावना से वे पर्यटन व पर्यटकों के महत्व को समझेंगे।

देश में तीर्थाटन से ही पर्यटन का उद्‌गम हुआ है। हम यूं भी कह सकते है कि स्वदेशी पर्यटन के महत्व को बहुत पहले ही हमारे देश में स्वीकार कर लिया गया था ओर उसकी परिणति हमारे सामने तीर्थाटन के रूप में सामने आयी। स्वदेशी पर्यटन का एक बहुत बड़ा अंग तीर्थयात्रा ही है। चाहे धार्मिक रूप में ही सही, लोगों को अपने घर से बाहर निकलने और बाहर के लोगों में जानकारी प्राप्त करने के अवसर को प्रदान करने की मानसिकता ने ही तीर्थाटन को जन्म दिया ओर इसी तीर्थाटन का परिष्कृत रूप पर्यटन के रूप में अब हमारे सामने तेजी से उभरकर आया है। देश में राष्ट्रीय एकता व अखंडता के बीच साम्प्रदायिक उन्माद के बीज बोने के इस दौर में आवश्यकता है कि देश के लोग भावनात्मक रूप में एक दूसरे से जुडे रहें- ऐसे में स्वदेशी पर्यटन इसमें महत्ती भूमिका निभा सकता है। लोगों को अगर एक राज्य से दूसरे राज्य में यात्रा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए, उनको हमारे सांस्कृतिक गौरव के बारे में जानकारी दिलाने की दिशा में स्वदेशी पर्यटन के प्रोत्साहन के जरिए अवसर प्रदान किया जाए तो उसके सकारात्मक परिणाम आपसी सद्भाव, भाईचारे के रूप में स्वत: ही हमारे सामने होंगे। एक दूसरे राज्यों की यात्रा का अवसर भाषाओं की विभिन्नता, विश्वास, संस्कृति, एक दूसरे के रीति रिवाजों को जानने और समझने का अवसर तो देती ही है साथ ही इससे एक बडी सामाजिक आवश्यकता की भी स्वत: ही पूर्ति होती है।

हालांकि स्वदेशी पर्यटन को अभी भी विकास के मानक के रूप में नहीं देखा जा सका है परन्तु विकास की प्रभावी कियान्विति के लिए घरेलू पर्यटन पर अधिक ध्यान दिया जाना आज के संदर्भ में आवश्यक है। यह सही है कि विदेशी पर्यटकों के देश में अधिक आवक से बडी मात्रा में राष्ट्र को विदेशी मुद्रा प्राप्ति होती है परन्तु यहां इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में स्वदेशी पर्यटन निरंतर लाभ के मार्ग को प्रशस्त करता है।

भारत के विशाल प्राकृतिक परिवेश, ऐतिहासिक इमारतों, रहन-सहन, खान-पान, तीज-त्यौहार आदि में भिन्नता होने के बावजूद कश्मीर से कन्याकुमारी तक का विशाल भू-भाग आज भी देश को एकता के सूत्र में बांधे हुए हैं- ऐसे में स्वदेशी पर्यटन यहां आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक लाभ प्रदान करने का महत्वपूर्ण स्त्रोत हो सकता है। एक प्रदेश का पर्यटक दूसरे प्रदेश में जब पर्यटन करने जाता है तो निश्चित ही वह वहां के सामाजिक, आर्थिक परिवेश पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। एक स्थान की संस्कृति का दूसरे स्थान की संस्कृति से सरोकार भी पर्यटन के जरिये होता है। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि स्वदेशी पर्यटन एक सामाजिक आवश्यकता है। अगर लोग एक राज्य से दूसरे राज्य यात्रा करने जाऐगें तो न केवल उनके अनुभव व ज्ञान का दायरा बढता है बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक विरासत के आदान-प्रदान में भी सहायता मिलती है। देश की विरासत तथा लोगों की सूझ-बूझ के जरिये स्वदेशी पर्यटन राष्ट्रीय सौहार्द और एकता तथा राष्ट्रीय गौरव की भावना को बढावा दे सकता

है। इस प्रकार घरेलू पर्यटन राष्ट्रीय एकता, राष्ट्र निर्माण और राष्ट्रीयता का भी प्रत्यक्ष समर्थक है। इससे पारम्परिक एवं जातीय संस्कृति और समुदाय में भी गौरव की भावना को बढावा मिलता है। साथ ही शहरी पर्यावरण की गुणवत्ता का विकास भी स्वदेशी पर्यटन से ही संभव है।

संक्षेप में स्वदेशी पर्यटन के महत्व को निम्न बिन्दुओं से और अधिक समझा जा सकता है-

- सामाजिक सांस्कृतिक मुद्दों के प्रति लोगों में जागरूकता पैदा करने में स्वदेशी पर्यटन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, चूंकि इससे पारस्परिक मेल-मिलाप के जरिये सद्भाव पैदा होता है।
- राज्यों के मध्य आर्थिक, सामाजिक अथवा लिंग-भेद जैसी असमानतांए दूर करने का कारगर एवं व्यवहारिक माध्यम स्वदेशी पर्यटन ही है, चूंकि इससे राज्यों तथा क्षेत्रों के मध्य विकास से जुडी असमानतांए सामने आती है और इन असमानताओं को दूर करने के लिए मानसिकता बनती है।
- पर्यटन देश का बड़ा सेवा-क्षेत्र भी हैं। इसमें महिलाओं, युवाओं, समाज के कमजोर वर्गो, विकलांगों तथा जनजातीय समुदायों को रोजगार पर लगाने की क्षमता है, ऐसे में स्वदेशी पर्यटन के विकास से इन समुदायों को सशक्त बनाकर सामाजिक न्याय और समानता उपलब्ध करायी जा सकती हैं।
- देश की प्राकृतिक ओर सांस्कृतिक विरासत के प्रति जागरूकता तथा उनके संरक्षण, परिरक्षण तथा पुर्नस्थापन को बढावा देना आज की महत्ती जरूरत हैं। स्वदेशी पर्यटन को अगर ग्रेत्साहन मिलता है तो निश्चित ही इस दिशा में वातावरण निर्माण को बढावा मिलेगा और लोगों द्वारा प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के प्रति प्रतिबद्धता सुनिश्चित होगी।
- इधर पर्यटन के जो नए स्वरूप उभर कर सामने आ रहे है उनमें ग्रामीण पर्यटन के प्रति लोगो का विशेष रूझान हुआ हैं। लोग अब अवकाश मिलते ही शहर से दूर कुछ पल गुजारना चाहते हैं, ऐसे में स्वदेशी पर्यटन को बढावा देकर ग्रामीण विकास को बल दिया जा सकता है। स्वदेशी पर्यटन गावों को शहरी स्थानान्तरण से रोकने में भी कारगर भूमिका निभा सकता हैं।
- स्थान विशेष की परम्परागत कलाओं शिल्प, उत्सव आदि के एक स्थान से दूसरे स्थान पर आदान-प्रदान का संवर्धन करने में स्वदेशी पर्यटन के महत्व से इंकार नहीं किया जा सकता।
- स्वदेशी पर्यटन देश में पर्यटन उद्योग की आधारभूत संरचना का निर्माण करता है।

घरेलू पर्यटन को बढावा दिए जाने से ही दरअसल देश में पर्यटन को जन उद्योग बनाए जाने को दिशा में पहल को असली जामा पहनाया जा सकता है। इस दिशा में राज्य सरकारों को तो अपनी ओर से प्रयास किए जाने की जरूरत है ही साथ ही केन्द्र सरकार द्वारा भी अपने स्तर पर विदेशी पर्यटको को आकर्षित करने के साथ ही स्वदेशी पर्यटन को बढावा देने वाले पैकेज ट्यूर इस रूप में आयोजित करने की जरूरत है कि उनका लाभ वास्तविक रूप में घरेलू पर्यटकों को मिल सके। दरअसल, घरेलू पर्यटन करने वाला सबसे बडा वर्ग देश का मध्यम

वर्ग हैं। आज पर्यटन क्षेत्र में जितनी भी सुविधाओं का विस्तार किया जा रहा है, वे इतनी महंगी होती है कि आम घरेलू पर्यटक के लिए तो उनकी पहुंच ही नही हो पाती। ऐसे में आवश्यकता इस बात की भी है कि देश के सभी महत्वपूर्ण पर्यटन स्थलों पर मध्यम व कम आय वर्ग के घरेलू पर्यटकों के लिए भी सुविधाओं का विस्तार किया जाए।

पर्यटन स्थलों पर निवास करने वाली आबादी का प्रमुख आय का स्त्रोत वहां का पर्यटन व्यवसाय ही होता है। ऐसे में अगर देश में आतंकवाद, साम्प्रदायिक उन्माद वहां की घटनाओं से विदेशी पर्यटको की उदासीनता रहती है तो स्वभाविक है कि पर्यटन स्थलों पर रहने वाले लोगों की आर्थिक स्थिति पर भी इसका विपरीत असर पडेगा। इस दिशा में स्वदेशी पर्यटन को प्रोत्साहित किया जाए तो निश्चित ही पर्यटन स्थलों पर रौनक बनी रहेगी और इसी व्यवसाय पर आधारित रहने वाले लोगों के आर्थिक स्तर पर भी बुरा प्रभाव नहीं पडेगा। वैसे भी युद्ध के हालात, आतंकवाद और साम्प्रदायिकता भी कुछ घटनाओं को विदेशी मीडिया द्वारा बढा-चढाकर इस रूप में परोसा जाता है कि ऐसे देश में फिर लम्बे समय तक के लिए पर्यटक आने से कतराने लगते हैं। चूंकि घरेलू पर्यटको को वास्तविकता का पता होता है तो वे इससे अधिक प्रभावित नहीं होते। इस रूप में भी स्वदेशी पर्यटन को आज की जरूरत कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

घरेलू पर्यटन को बढावा दिए जाने की दिशा में राज्य सरकारें दरअसल महत्व भूमिका निभा सकती है। राज्य सरकारों द्वारा पर्यटन अवकाश का प्रावधान अगर किया जाता है तो इसके अच्छे परिणाम घरेलू पर्यटन को मिलने वाली गति से स्वत: ही हमारे सामने होगें। पर्यटन अवकाश के प्रावधान के साथ राज्य सरकारों द्वारा भले ही आर्थिक भत्ते की राशि का प्रावधान नहीं किया जाए परन्तु सरकारी स्तर पर अवकाश अवधि के लिए रेल व बस किरायों में रियायत का प्रावधान इस दिशा में अच्छी पहल हो सकता है। चूकि रेल व बस का बड़ा नेटवर्क अभी भी सरकार के हाथों में है, यात्रा किराये में रियायत का प्रावधान देश में पर्यटन को बढावा दिए जाने के लिए कोई बड़ी बात भी नहीं होगी। हॉ, यह प्रावधान पर्यटन अवकाश स्वीकृति प्रमाणपत्र के आधार पर ही प्रदान की जाए तो सुविधा का दुरूपयोग नहीं होगा और सही मायने में इससे पर्यटन को सभी स्तरों पर बढावा मिलेगा।

देश के सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, पुरामहत्व के पर्यटन स्थलों का अलग-अलग वर्गीकरण कर उनके विशेष पैकेज तैयार कर उनका प्रभावी प्रचार-प्रसार किया जाए तो निश्चित ही अलग-अलग रूचि के देश के लोगों के लिए घरेलू पर्यटन में रूचि ही पैदा नही होगी बल्कि बडे स्तर पर इससे देश में पर्यटन वातावरण निर्माण भी हो सकेगा। तब हो संभव सकता है, देश में आने वाले विदेशी पर्यटकों द्वारा भी अपने देशों में भारतीय पर्यटन वातावरण व यहां की विशेषताओं का स्वयं के स्तर पर वहां जाकर प्रचार करना। हो सकता है तब यहां आने वाले विदेशी पर्यटकों की संख्या का ग्राफ भी स्वत: बढ़े। इस रूप में घरेलू पर्यटन को बढावा दिया जाना देश के पर्यटन उद्योग के विकास के लिए महती कदम कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

12.4 पर्यटन और संस्कृति क्षरण :

यह सही है कि बेहतर प्रबंधन के जरिए पर्यटन को देश के विकास का सबसे बड़ा स्त्रोत बनाया जा सकता है परन्तु इतना ही सच यह भी है कि पर्यटन विकास ने हमारी गौरवयमी संस्कृति पर भी कम हमला नहीं किया है। पर्यटन के जरिए आर्थिक लाभ की सोच के चलते बहुत बार ऐसा भी हुआ है कि हमारी संस्कृति के मूल्यों, परम्पराओं को भुला भी दिया गया है। राजस्थान के संदर्भ में बात करें तो अजमेर के पुष्कर, जैसलमेर आदि स्थानों पर पर्यटन ने संस्कृति का निरंतर क्षरण ही किया है। विदेशी पर्यटकों द्वारा ऐसा कई बार हुआ है जबकि भारतीय मूल्यों की उपेक्षा करते हुए नंगेपन को बेशर्मी से प्रदर्शित किया गया। यही नहीं स्थानीय निवासियों को चंद रूपयों का लालच देकर उनसे वह सब कुछ करवाया गया है, जिसकी अपेक्षा पारम्परिक भारतीय मूल्यों में तो कदापि नहीं की जा सकती थी।

पर्यटन से संस्कृति के क्षरण का एक रूप यौन पर्यटन का बढता दायरा भी है। अतिथि विदेशी पर्यटकों का एक पहलू यह भी है कि भारत अब उनके लिए अपनी यौन कुंठा को पूरा करने वाला देश बनता जा रहा है। राष्ट्रीय मानवाधिकार की और से कराए गए हाल के एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में यौन पर्यटन काफी तेजी से बढ़ रहा है और भयावह पहलू यह है कि इस क्षेत्र में भारत बैंकाक के रास्ते पर चल पड़ा है। उस बैंकाक के रास्ते जहां के पर्यटन का मूल आकर्षण ही सैक्स है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के सर्वेक्षण के अंतर्गत जो चौंकाने वाली बातें कही गयी है उनके अनुसार भारत के सबसे पसंदीदा पर्यटन स्थलों गोवा और केरल की ओर संकेत करते हुए कहा गया है कि विदेशियों के लिए अपनी यौन कुंठा की पूर्ति के ये महत्वपूर्ण केन्द्र है। गोवा की संस्कृति में काफी खुलापन है, वहां के होटलों ने यौन गतिविधियों को बढावा देकर आसान कमाई का रास्ता बना लिया है। केरल की वैकल्पिक चिकित्सा और परस्परिक मसाज की जो ख्याति विश्वभर में हुई है, होटल वालों ने उसकी आड़ में वहां पर यौन गतिविधियो को बढ़ावा देना प्रारंभ कर दिया है।

दुखद पहलू यह भी सामने आ रहा है कि इसकी आड़ में विदेशी पर्यटकों की अप्राकतिक यौन इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए कम उस के बच्चे और बच्चियों को भी परोसा जाने लगा है। विकासशील देशों के अंतर्गत पिछले कुछ वर्षो में 'यौन पर्यटन' के लिए एशिया एक बडे केन्द्र के रूप में उभरकर सामने आया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के ताजा अध्ययन के अनुसार थाइलैंड में 8 लाख, भारत में 4 लाख और फिलिपिन्स में 60 हजार बच्चे पर्यटन के नाम पर शोषण के शिकार हो रहे है। एशिया के बहुत से देशों में कई ट्रेवेल एजेन्सियॉ और कतिपय एयरलाईन्स ' 'सैक्स टूअर' ' के नाम से विज्ञापन देने लगी है। दरअसल अपने रोजमर्रा के जीवन से उबे हुए विदेशी पर्यटक बडी संख्या में यौन संबंधी फेंटेसी की तलाश में अविकसित देशों की और रूख करते है।

यह सही है कि पर्यटन विदेशी मुद्रा प्राप्ति का बड़ा स्त्रोत है परन्तु इसके लिए संस्कृति का को मिटाना उचित है, इस पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। थोड़े समय के लिए यौन पर्यटन से भले ही अच्छी-खासी विदेशी मुद्रा प्राप्ति हो जाए परन्तु दीर्घकालीन इसका प्रभाव नुकसानदायक ही है। एड्स की भयावह बीमारी के साथ ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यटन

की संभावनाओं को भी दीर्घकालीन रूप में "यौन पर्यटन" नुकसान ही पहुंचाता है। ऐसे में "यौन पर्यटन" के खिलाफ मुहिम चलाकर प्रभावी कदम उठाए जाएंगे तभी पर्यटन वास्तविक रूप में विकास गतिविधि के रूप में फल-फूल पाएगा अन्यथा इस उद्योग के रूग्ण होने की संभावना ही अधिक है। इस रूप में समाज पर पर्यटन का प्रभाव सकारात्मक की बजाय दीर्घकालीन नकारात्मक ही अधिक पडने वाला है।

12.5 पधारो म्हारे देस...

पर्यटन दीर्घकालीन विकास का आधार तभी बन सकता है जब इसके सभी नकारात्मक पहलुओं को दृष्टिगत रखते हुए उन्हें न्यूनतम करने के प्रयास सभी स्तरों पर किए जाएं। इसके लिए पर्यटन की ऐसी संस्कृति का विकास किये जाने की आवश्यकता है जिसमें 'अतिथि देवो भव:' की प्राचीन भारतीय भावना तो गहराई से जुड़ी हुई हो परन्तु साथ ही इस बात के प्रति सावचेती भी हो कि पर्यटन हमारे मूल्यों और संस्कृति पर किसी भी स्तर पर चोट नहीं पहुंचाए।

राजस्थान के संदर्भ में यह विशेष रूप से कहा जा सकता है कि यहां आन-बान और शान की संस्कृति पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण लिए हैं। 'पधारो म्हारे देस... ' के नारे के साथ पर्यटन यहां विकास का आरंभ से ही आधार बना हुआ है। पर्यटन को हालांकि आजादी से पूर्व ही राजस्थान में अपना लिया गया था परन्तु पर्यटन का प्रभावी विकास अभी भी यहां व्यवहार में नही किया जा सका है। यह सही है कि स्वदेशी एवं विदेशी पर्यटकों की संख्या का ग्राफ निरंतर यहां बढा है परन्तु इतना ही सच यह भी है कि पर्यटन स्थलों के प्रचार व प्रसार का दायरा अत्यधिक सीमित रहा है। यही कारण है कि यहां के पर्यटन वैभव का देश में तो प्रचार हुआ परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राज्य ने पर्यटन में कोई विशेष पहचान अभी तक नहीं बना पायी है। जो विदेशी पर्यटक प्रदेश में आते हैं उनके आने का भी अधिक श्रेय भी वे पर्यटक ऐजेन्सियॉ है जो देशभर के पर्यटन स्थलों के पैकेज ट्यूर तैयार करती है तथा अपने स्तर पर ही पर्यटन का प्रचार-प्रसार करती है। राज्य के पर्यटन आकर्षण का नारा 'पधारो म्हारे देस' भी इसी बात का गवाह है।

अर्से से यहां इसी नारे के साथ पर्यटन आमंत्रण किया जा रहा है। यह सही है कि राजस्थान की मेहमाननवाजी की शानदार परम्परा का 'पधारो म्हारे देस' बेहतरीन स्लोगन है परन्तु क्या इस नारे को विदेशों से आने वाले सैलानी समझ पाते है? केरल ने जैसे ' गौड्स ऑवन कन्ट्री' अर्थात् देवताओं की अपनी भूमि लोगन से विश्वभर के पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित किया है वैसा ही प्रयास अगर राजस्थान में किया जाए तो इसके बेहतर परिणाम यहां आने वाले विदेशी सैलानियों की बढी संख्या के रूप में देखा जा सकता है। इतिहासकार कर्नल टॉड ने तो राजस्थान के बारे में बहुत पहले ही यह कह दिया था कि - 'राजस्थान में ऐसा एक भी स्थान नहीं है जहां ' थर्मापोली ' के समान रण का आंगन न बना हो और न कोई ऐसा नगर ही है जहां 'न्यूनियाड' न पैदा हुआ हो। राजस्थान की तुलना में युनान के ऐपो का सौन्दर्य भी हल्का हो जाता है।'

धोरों की धरती के अनुपम सौन्दर्य, स्थापत्य कला से समृद्ध यहां के किलो महलों व स्मारकों के साथ ही यहां की समृद्ध लोक संस्कृति व विरासत का व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार

सुव्यवस्थित तरीके से किया जाए तो निश्चित ही यहां आने वाले विदेशी पर्यटकों की संख्या में इजाफा किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की भी है कि प्रदेश में पर्यटन प्रोत्साहन के लिए निजी क्षेत्र की भागीदारी बढायी जाए। इन्टरनेट पर प्रदेश की समृद्ध पर्यटन विरासत को उभारने वाली वेबसाईटें तैयार करने के साथ ही उसके विदेशी भाषाओं के संस्करण तैयार कर उनका दूरनेट के रूप में अधिकाधिक उपयोग इस दिशा में महती कदम हो सकता है। अलावा इसके राजस्थान के पर्यटन का एक खास पहलू यहां के शानदार किले व महल हैं। किले व महलों की शानदार विरासत पर डॉक्यूमैंट्री फिल्मों का निर्माण कर उनका प्रसारण विदेशी चैनलों पर किया जाए तो उसके भी बेहतर परिणाम पर्यटन उद्योग के विकास के रूप में देखे जा सकते हैं।

राजस्थान के पर्यटन स्थलों पर पर्यटन विभाग द्वारा स्थापित पर्यटन होटल्स और मोटल्स की एक खास बात यह है कि उनका नामकरण अत्यधिक खूबसूरत है। कुरजा, घुमर, तीज, ढोला-मारू, खादीम, चिंकारा आदि होटल्स और मोटल्स अपने नाम के साथ यहां की संस्कृति की गाथाओं को भी बयान करते है। हालांकि शुरूआती दौर में ये होटल्स व मोटल्म आकर्षण के केन्द्र रहे परन्तु शनैशनै: इन सबकी स्थिति बद से बदतर होती चली गयी। आज स्थिति यह है कि कोई भी पर्यटक इनमें ठहरना पसंद नही करता। दरअसल, इनमें दी जाने वाली सुविधाओं का स्तर इतना निम्न है कि पर्यटक इनकी बजाय दूसरे होटलों व मोटलों में ठहरना अधिक पसंद करते हैं। इस दिशा में आवश्यकता इस बात की है कि विभाग के होटलों व मोटलों में कार्यरत कर्मचारियों व अधिकारियों के अभिप्रेरण व उचित कार्यदशाओ की व्यवस्था बेहतर प्रबंधन के तहत की जाए। अलावा इसके होटलों में प्रदत सुविधाओं का भी विस्तार समय के अनुसार किया जाना जरूरी है।

प्रदेश में पर्यटन व होटल उद्योग के प्रोत्साहन के लिए जो कदम उठाए जाते हैं, उनका भी कमजोर पहलू यह है कि उनके बारे में जानकारी जरूरतमंद उद्यमियों व निजी क्षेत्र के संस्थानों तक पहुंचती ही नहीं है। ऐसे में उनको लागू करने के अर्सा होने के बाद भी निजी क्षेत्र की भूमिका पर्यटन उद्योग में न के बराबर ही रहती है। इसके लिए जरूरी यह है कि सैद्धान्तिक रूप में ही नहीं बल्कि व्यावहारिक रूप में पर्यटन की योजनाओं व नीतियॉ का व्यापक स्तर पर कियान्वयन किया जाए। पर्यटन के हमारे नारे 'पधारो म्हारे देसकृ ' को नारा नहीं बल्कि संस्कृति का हिस्सा बनाया जाए तो निश्चित ही यहां आने वाले पर्यटकों की संख्या में निंरतर बढोतरी होगी बल्कि पर्यटन से अर्थव्यवस्था को भी सभी स्तरों पर सुदृढ किया जा सकेगा।

'पधारो म्हारे देस' की परम्परा वाले राजस्थान की अर्थव्यवस्था को पर्यटन से खासा लाभ हो सकता है, अगर यही के लोग इस उद्योग को अपनी संस्कृति का हिस्सा बनाने के लिए मानसिक रूप से राजी हो जाएं। वैसे भी स्फोनों के लिए पलक पावड़े बिछाने को सदैव उत्सुक रहने वाले यहाँ के निवासियॉ की मेहमाननवाजी पूरे विश्व में अपनी अलग पहचान रखती है।

वैसे भी अगर किसी स्थान विशेष पर पर्यटन पर आने वाले पर्यटक अथवा पर्यटकों को वहां का परिवेश वहां का वातावरण, मेहमाननवाजी पसंद आती है तो वही बार-बार पर्यटक आएंगे और ऐसे में उस स्थान में होटल चलाने वाले, स्थानीय गाईड, खान-पान वाले रेस्टोरेंट,

हस्तकलाओं के सामान विकताओं, टैक्सी चालकों आदि सभी को लाभ मिलता है और यह लाभ वही की निरंतर आय वृद्धि करता है और ऐसे में एक समय वह भी आता है जब पर्यटन स्थल से स्थानीय लोगों का जीवन स्तर भी उच्च होने लगता है। इस सबमें महत्वपूर्ण भूमिका स्थानीय जन की ही होती है न कि सरकार की। ऐसे में आज आवश्यकता इस बात की अधिक है कि पर्यटन में अधिकाधिक जनभागीदारी सुनिश्चित की जाए। पर्यटन पर पर्यटक जो व्यय करता है उसका लाभ उस स्थान विशेष के विकास पर ही खर्च होता है, इस बात को समझते हुए अगर पर्यटन उद्योग के विकास पर ध्यान दिया जाए तो इसके बेहतर परिणाम सामने आ सकते है। पर्यटन से होने वाले लाभ के बारे में व्यापक प्रचार-प्रसार कर लोगों का मानस पर्यटन उद्योग के विकास का बनाया जाए तो इसके सभी स्तरों पर सकारात्मक परिणाम सामने आ सकते है।

दरअसल पर्यटन के अंतर्गत व्ययकरने एवं अर्थव्यवस्था में प्रत्यक्ष संबंध है। प्रथम उपभोक्ता से संबंधित 'वस्तुएं जिसका प्रत्यक्ष संबंध है और इसके अंतर्गत पर्यटन के लिए किए गए व्यय यथा परिवहन, आवास, खान-पान व अन्य क्रय संबंधित खर्च व सेवांए है। दूसरे पर्यटन से प्रत्यक्ष जुड़े व्यवसाय व अन्य व्यवसाय व उद्योग जो पर्यटन उद्योग की वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति करते है। इस रूप में पर्यटन दरअसल एक व्यापक क्रिया है जिसमें विभिन्न सेवाओं के साथ-साथ मनु य की आवश्यकताएँ भी प्रत्यक्षता से जुड़ी हुई होती है।

राज्य में वर्ष 1989 में ही पर्यटन को उद्योग घोषित कर दिया गया था और इसके साथ ही पर्यटन को एक आर्थिक गतिविधि के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। वर्ष 2001 में राज्य की पर्यटन नीति भी घोषित कर दी गयी। इस पर्यटन नीति में राज्य में उपलब्ध समृद्ध पर्यटन संसाधनों का अधिकतम उपयोग कर अधिकाधिक रोजगार के अवसर विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध कराने पर ध्यान दिया गया। इसके साथ ही नीति में राज्य की समृद्ध एवं विविध हस्तकलाओं एवं शिल्पकलाओं के लिए बाजार उपलब्ध कराना, राज्य की समृद्ध जैवेधिक प्राकृतिक, ऐतिहासिक स्थापत्य कला एवं सांस्कृतिक विरासत को वैज्ञानिक तरीकों से प्रबन्ध किया गया।

पर्यटन नीति में हालांकि पर्यटन के तीव्र विकास पर विशेष ध्यान देने के पहलूओं को सम्मिलित किया गया परन्तु यह सब संभव नहीं हो सका। यह सब संभव होगा तो बस लोगों की पर्यटन उद्योग में अधिकाधिक भागीदारी से ही। यह भागीदारी पर्यटन उद्योग में निवेश करने के साथ ही यहॉ आने वाले पर्यटकों को बेहतर वातावरण प्रदान कर की जा सकती है।

यहां आने वाले पर्यटकों को अगर आत्मीय और सम्मान का वातावरण सभी स्तरों पर मिलता है तो निश्चित ही अधिक पर्यटक यही आएंगे। इस दिशा में देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू की कही बात को भी हमें सदैव ध्यान में रखना होगा। उन्होनें पर्यटन के महत्व को देखतें हुए बहुत पहले कह दिया था -'हमें विदेशी दोस्त पर्यटकों का स्वागत न केवल आर्थिक कारणों से करना चाहिए क्योंकि वे विदेशी मुद्रा लाते है, बल्कि इसलिए भी क्योकि इससे आपसी सूझ-बूझ से ज्यादा जरूरत अन्य किसी चीज की नहीं है। हालांकि हमारे लोग परम्परा से और आदत से विदेशी पर्यटकों के प्रति दयावान और नम्र होते है। वे उनका स्वागत

करतें रहेगें, मगर मैं अधिकारियों तथा राज्य व केन्द्र सरकारों से जुड़े तथा सबंधित लोगों से यह कहना चाहूंगा कि वे आगंतुको के साथ नम्रता से पेश आए और उनका ख्याल रखें।'

12.6 सारांश:

पर्यटन को विकास का पर्याय कहा जात्रा है। जब कभी किसी स्थान पर पर्यटक पहुंचता है तो वह जितना कुछ भी उस स्थान पर खर्च करता है वह सीधे स्थानीय अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन जाता है। इसे ऐसे समझा जा सकता है कि पर्यटक होटल में रूकता है, खान-पान करता है। वह स्थानीय टैक्सी, रिक्सा आदि का उपयोग करता है। स्थानीय उत्पाद को क्रय करता है। ऐसे में उसकी यह सब क्रय गतिविधियां उस स्थान विशेष की आय का हिस्सा बन जाती है। ऐसे में यह जरूरी है कि पर्यटन के प्रति वातावरण निर्माण किया जाए। जितने अधिक पर्यटक किसी स्थान पर आएंगे, उतना ही वहां का विकास हो सकता है। इसे ध्यान में रखते हुए पर्यटन को सिद्धान्त में ही नही व्यवहार में जन उद्योग के रूप में क्रियान्वित किए जाने की आवश्यकता है।

पर्यटन विदेशी मुद्रा का सबसे बड़ा स्त्रोत है। ऐसे में यह जरूरी है कि विदेशी पर्यटन को बढावा दिया जाए परन्तु इस परिप्रेक्ष्य में स्वदेशी पर्यटन के महत्व से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। अभी भी विदेशी पर्यटकों की बजाय स्वदेशी पर्यटकों की संख्या अधिक है। विश्व पर्यटन संगठन ने भी स्वदेशी पर्यटन के महत्व को स्वीकार करते इस पर विशेष ध्यान दिए जाने पर जोर दिया है। स्वदेशी पर्यटन से आर्थिक विकास ही नहीं होता आपसी सूझ-बूझ को भी बढावा मिलता है।

स्वदेशी एवं विदेशी पर्यटन के बढते महत्व को देखते हुए यह जरूरी है कि पर्यटन को आर्थिक विकास के एक साधन के रूप में सभी स्तरों पर अपनाया जाए परन्तु पर्यटन दीर्घकालीन विकास का आधार तभी हो सकता है जब यह संस्कृति के क्षरण की बजाय संरक्षण की सोच के साथ क्रियान्वित हो।

राजस्थान के संदर्भ में तो यह बात विशेष रूप से कही जा सकती है कि यहां 'पधारो म्हारे देसकृ' का नारा प्राचीन भारतीय परम्परा 'अतिथ देवो भव:' से जुड़ी हुई है। यहां की मेहमाननवाजी की शानदार परम्परा से पर्यटन को निरंतर बढावा दिया जा सकता है परन्तु इस दिशा में अभी भी बहुत कुछ विशेष नही किया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि पर्यटन को राज्य में सिद्धान्त में ही नहीं व्यवहार में एक उद्योग के रूप में क्रियान्वित किया जाए। तभी पर्यटन विकास के एक प्रभावी साधन के रूप में राज्य की अर्थव्यवस्था को कहीं गहरे तक प्रभावित कर सकेगा। इस इकाई में आपको पर्यटन विकास के साथ ही संस्कृति संरक्षण की सोच के साथ पर्यटन वातावरण निर्माण के बारे में विस्तार से जानकारी दी गयी है।

बोध प्रश्न :

1. 'पर्यटन विकास का पर्याय है।' इस कथन के परिप्रेक्ष्य में बताईए कि कैसे पर्यटन विकास की राह प्रशस्त करता है?

   .....

   .....

2. "घरेलू पर्यटन पारस्परिक सद्भाव एवं भाईचारे को बढावा देता है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अपने कथन के पक्ष या विपक्ष मे तर्क दीजिए।

.....

.....

3. पर्यटन से विकास के साथ साथ संस्कृति का क्षरण भी कैसे होता है?

.....

.....

4. 'पधारो म्हारे देसकृ' किस राज्य का पर्यटन लोगन है? इससे कैसे पर्यटन संस्कृति का विकास किया जा सकता है?

.....

.....

5. पर्यटन के सामाजिक सरोकारों पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें:

खंड 3 के अंतर्गत इकाई संख्या 8 से 12 तक आपने राजस्थान की परम्पराएं एवं रीति-रिवाज एवं हस्तकलाएं, मेले एवं लोकोत्सव आदि अप्रत्यक्ष पर्यटन उत्पादों के बारे में विस्तार से जाना हैं।

इस खंड के संदर्भ के लिए आपको निम्न पुस्तकें सुझायी जा रही है -

1. राजस्थानी लोकोत्सव – गेंदा राम वर्मा
2. हमारी संस्कृति – रमाकांत दिवेदी
3. राजस्थान के रीति-रिवाज – एस.एस. गेहलोत
4. हैण्डीक्राफ्ट्स ऑफ राजस्थान – एच. भीष्मपाल
5. सोशल लाइफ ऑफ राजस्थान – जी. एन. शर्मा
6. राजस्थान के लोकोत्सव – देवीलाल सामर